(सेंहुड़), दिक् (अपराजिता), युग (लाजवन्ती) और बाण (श्वेतार्क)—इन ओषधियोंके द्वारा बनायी हुई गुटिका (गोली) लोगोंको वशमें करनेवाली होती है। किसीको वशमें करना हो तो उसके लिये भक्ष्य, भोज्य और पेय पदार्थमें इसकी एक गोली मिला देनी चाहिये॥ ११-१२॥

ऋत्विक् (भँगरैया), ग्रह (मोहलता), नेत्र (पुत्रजीवक) तथा पर्वत (अधःपुष्पा)—इन ओषधियोंको मुखमें धारण किया जाय तो इनके प्रभावसे शत्रुओंके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रोंका स्तम्भन हो जाता है—वे घातक आघात नहीं कर पाते। पर्वत (अधःपुष्पा), इन्द्र (रुद्रदन्ती), वेद (लाजवन्ती) तथा रन्ध्र (मोहलता)—इन ओषधियोंका अपने शरीरमें लेप करके मनुष्य पानीके भीतर निवास कर सकता है। बाण (श्वेतार्क), नेत्र (पुत्रजीवक), मनु (रुद्रदन्ती) तथा रुद्र (घीकुआँरि)—इन ओषधियोंसे बनायी हुई बटी भूख, प्यास आदिका निवारण करनेवाली होती है। तीन (सहदेइया), सोलह (भँगरैया), दिशा (अपराजिता) तथा बाण (श्वेतार्क)—इन ओषधियोंका लेप करनेसे दुर्भगा स्त्री सुभगा बन जाती है। त्रिशद (काला धतूरा), अक्षि (पुत्रजीवक) तथा दिशा (विष्णुक्रान्ता) और नेत्र (सहदेइया)—इन दवाओंका अपने शरीरमें लेप करके मनुष्य सर्पोंके साथ क्रीडा कर सकता है। इसी प्रकार त्रिदश (काला धतूरा), अक्षि (पुत्रजीवक), शिव (घृतकुमारी) और सर्प (मयूरशिखा)-से उपलक्षित दवाओंका लेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव कर सकती है॥ १३—१५॥

सात (अधःपुष्पा), दिशा (अपराजिता), मुनि (अधःपुष्पा) तथा रन्ध्र (मोहलता)—इन दवाओंका वस्त्रमें लेपन करनेसे मनुष्यको जूएमें विजय प्राप्त होती है। काला धतूरा, नेत्र (पुत्रजीवक), अब्धि (अधःपुष्पा) तथा मनु (रुद्रदन्तिका)-से उपलक्षित ओषधियोंका लिङ्गमें लेप करके रति करनेपर जो गर्भाधान होता है, उससे पुत्रकी उत्पत्ति होती है। ग्रह (मोहलता), अब्धि (अधःपुष्पा), सूर्य (गोरक्षकर्कटी) और त्रिदश (काला धतूरा)—इन ओषधियोंद्वारा बनायी गयी बटी सबको वशमें करनेवाली होती है। इस प्रकार ऋत्विक् आदि सोलह पदोंमें स्थित ओषधियोंके प्रभावका वर्णन किया गया॥ १६-१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वश्य आदि योगोंका वर्णन' नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४०॥

एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय

छत्तीस कोष्ठोंमें निर्दिष्ट ओषधियोंके वैज्ञानिक प्रभावका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं छत्तीस पदों (कोष्ठकों)-में स्थापित की हुई ओषधियोंका फल बताता हूँ। इन ओषधियोंके सेवनसे मनुष्योंका अमरीकरण होता है। ये औषध ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्रके द्वारा उपयोगमें लाये गये हैं॥ १॥

हरीतकी (हर्रे), अक्षधात्री (आँवला), मरीच (गोलमिर्च), पिप्पली, शिफा (जटामांसी), वह्नि (भिलावा), शुण्ठी (सोंठ), पिप्पली, गुडुची (गिलोय), वच, निम्ब, वासक (अडूसा), शतमूली (शतावरी), सैंधव (सेंधानमक), सिन्धुवार, कण्टकारि (कटेरी), गोक्षुर (गोखरु), बिल्व (बेल), पुनर्नवा (गदहपूर्णा), बला (बरियारा), रेंड़, मुण्डी, रुचक (बिजौरा नीबू), भृङ्ग (दालचीनी), क्षार (खारा नमक या यवक्षार), पर्पट (पित्तपापड़ा), धन्याक (धनिया), जीरक (जीरा), शतपुष्पी (सौंफ), यवानी (अजवाइन), विडङ्ग (वायविडंग), खदिर (खैर), कृतमाल (अमलतास), हल्दी, वचा, सिद्धार्थ (सफेद सरसों)—ये छत्तीस

पदोंमें स्थापित औषध हैं॥ २—५॥

क्रमशः एक-दो आदि संख्यावाले ये महान् औषध समस्त रोगोंको दूर करनेवाले तथा अमर बनानेवाले हैं; इतना ही नहीं, पूर्वोक्त सभी कोष्ठोंके औषध शरीरमें झुर्रियाँ नहीं पड़ने देते और बालोंका पकना रोक देते हैं। इनका चूर्ण या इनके रससे भावित बटी, अवलेह, कषाय (काढ़ा), लड्डू या गुडखण्ड यदि घी या मधुके साथ खाया जाय, अथवा इनके रससे भावित घी या तेलका जिस किसी तरहसे भी उपयोग किया जाय, वह सर्वथा मृतसंजीवन (मुर्देको भी जिलानेवाला) होता है। आधे कर्ष या एक कर्षभर अथवा आधे पल या एक पलके तोलमें इसका उपयोग करनेवाला पुरुष यथेष्ट आहार-विहारमें तत्पर होकर तीन सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। मृतसंजीवनी-कल्पमें इससे बढ़कर दूसरा योग नहीं है॥ ६—१०॥

(नौ-नौ औषधोंके समुदायको एक 'नवक' कहते हैं। इस तरह उक्त छत्तीस औषधोंमें चार नवक होते हैं।) प्रथम नवकके योगसे बनी हुई ओषधिका सेवन करनेसे मनुष्य सब रोगोंसे छुटकारा पा जाता है, इसी तरह दूसरे, तीसरे और चौथे नवकके योगका सेवन करनेसे भी मनुष्य रोगमुक्त होता है। इसी प्रकार पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठें षट्कके[1] सेवनमात्रसे भी मनुष्य नीरोग हो जाता है। उक्त छत्तीस ओषधियोंमें नौ चतुष्क होते हैं। उनमेंसे किसी एक चतुष्कके[2] सेवनसे भी मनुष्यके सारे रोग दूर हो जाते हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम कोष्ठकी ओषधियोंके सेवनसे वात-दोषसे छुटकारा मिलता है। तीसरी, बारहवीं, छब्बीसवीं और सत्ताईसवीं ओषधियोंके सेवनसे पित्त-दोष दूर होता है तथा पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं और पंद्रहवीं ओषधियोंके सेवनसे कफ-दोषकी निवृत्ति होती है। चौंतीसवें, पैंतीसवें और छत्तीसवें कोष्ठकी औषधोंको धारण करनेसे वशीकरणकी सिद्धि होती है तथा ग्रहबाधा, भूतबाधा आदिसे लेकर निग्रहपर्यन्त सारे संकटोंसे छुटकारा मिल जाता है॥ ११—१४½॥

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, एकादश संख्यावाली ओषधियों तथा बत्तीसवीं, पंद्रहवीं एवं बारहवीं संख्यावाली ओषधियोंको धारण करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति (वशीकरणकी सिद्धि एवं भूतादि बाधाकी निवृत्ति) होती है। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। छत्तीस कोष्ठोंमें निर्दिष्ट की गयी इन ओषधियोंका ज्ञान जैसे-तैसे हर व्यक्तिको नहीं देना चाहिये॥ १५-१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'छत्तीस कोष्ठोंके भीतर स्थापित ओषधियोंके विज्ञानका वर्णन' नामक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४१॥

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय

चोर और जातकका निर्णय, शनि-दृष्टि, दिन-राहु, फणि-राहु, तिथि-राहु तथा विष्टि-राहुके फल और अपराजिता-मन्त्र एवं ओषधिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं मन्त्र-चक्र तथा औषध-चक्रोंका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाले हैं। जिन-जिन व्यक्तियोंके ऊपर चोरी करनेका संदेह हो, उनके लिये किसी वस्तु (वृक्ष, फूल या देवता आदि)-का नाम बोले। उस वस्तुके नामके अक्षरोंकी संख्याको दुगुनी करके एक स्थानपर रखे तथा उस नामकी मात्राओंकी संख्यामें चारसे गुणा

१-२. छः ओषधियोंके समुदायको 'षट्क' और चार ओषधियोंके समुदायको 'चतुष्क' कहते हैं।

करके गुणनफलको दूसरे स्थानपर रखे। पहली संख्यासे दूसरी संख्यामें भाग दे। यदि कुछ शेष बचे तो वह व्यक्ति चोर है। यदि भाजकसे भाज्य पूरा-पूरा कट जाय तो यह समझना चाहिये कि वह व्यक्ति चोर नहीं है॥ १ ½॥

अब यह बता रहा हूँ कि गर्भमें जो बालक है, वह पुत्र है या कन्या, इसका निश्चय किस प्रकार किया जाय? प्रश्न करनेवाले व्यक्तिके प्रश्न-वाक्यमें जो-जो अक्षर उच्चारित होते हैं, वे सब मिलकर यदि विषम संख्यावाले हैं तो गर्भमें पुत्रकी उत्पत्ति सूचित करते हैं। (इसके विपरीत सम संख्या होनेपर उस गर्भसे कन्याकी उत्पत्ति होनेकी सूचना मिलती है।) प्रश्न करनेवालेसे किसी वस्तुका नाम लेनेके लिये कहना चाहिये। वह जिस वस्तुके नामका उल्लेख करे, वह नाम यदि स्त्रीलिंग है तो उसके अक्षरोंके सम होनेपर पूछे गये गर्भसे उत्पन्न होनेवाला बालक बायीं आँखका काना होता है। यदि वह नाम पुँल्लिंग है और उसके अक्षर विषम हैं तो पैदा होनेवाला बालक दाहिनी आँखका काना होता है। इसके विपरीत होनेपर उक्त दोष नहीं होते हैं। स्त्री और पुरुषके नामोंकी मात्राओं तथा उनके अक्षरोंकी संख्यामें पृथक्-पृथक् चारसे गुणा करके गुणनफलको अलग-अलग रखे। पहली संख्या 'मात्रा-पिण्ड' है और दूसरी संख्या 'वर्ण-पिण्ड'। वर्ण-पिण्डमें तीनसे भाग दे। यदि सम शेष हो तो कन्याकी उत्पत्ति होती है, विषम शेष हो तो पुत्रकी उत्पत्ति होती है। यदि शून्य शेष हो तो पतिसे पहले स्त्रीकी मृत्यु होती है और यदि प्रथम 'मात्रा-पिण्ड' में तीनसे भाग देनेपर शून्य शेष रहे तो स्त्रीसे पहले पुरुषकी मृत्यु होती है। समस्त भागमें सूक्ष्म अक्षरवाले द्रव्योंद्वारा प्रश्नको ग्रहण करके विचार करनेसे अभीष्ट फलका ज्ञान होता है॥ २—५॥

अब मैं शनि-चक्रका वर्णन करूँगा। जहाँ शनिकी दृष्टि हो, उस लग्नका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। जिस राशिमें शनि स्थित होते हैं, उससे सातवीं राशिपर उनकी पूर्ण दृष्टि रहती है, चौथी और दसवींपर आधी दृष्टि रहती है तथा पहली, दूसरी, आठवीं और बारहवीं राशिपर चौथाई दृष्टि रहती है। शुभकर्ममें इन सबका त्याग करना चाहिये। जिस दिनका जो ग्रह अधिपति हो, उस दिनका प्रथम पहर उसी ग्रहका होता है और शेष ग्रह उस दिनके आधे-आधे पहरके अधिकारी होते हैं। दिनमें जो समय शनिके भागमें पड़ता है, उसे युद्धमें त्याग दे॥ ६-७ ½॥

अब मैं तुम्हें दिनमें राहुकी स्थितिका विषय बता रहा हूँ। राहु रविवारको पूर्वमें, शनिवारको वायव्यकोणमें, गुरुवारको दक्षिणमें, शुक्रवारको अग्निकोणमें, मङ्गलवारको भी अग्निकोणमें तथा बुधवारको सदा उत्तर दिशामें स्थित रहते हैं। फणि-राहु ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य एवं वायव्य-कोणमें एक-एक पहर रहते हैं और युद्धमें अपने सामने खड़े हुए शत्रुको आवेष्टित करके मार डालते हैं॥ ८-९ ½॥

अब मैं तिथि-राहुका वर्णन करूँगा। पूर्णिमाको अग्नि-कोणमें राहुकी स्थिति होती है और अमावास्याको वायव्यकोणमें। सम्मुख राहु शत्रुका नाश करनेवाले हैं। पश्चिमसे पूर्वकी ओर तीन खड़ी रेखाएँ खींचे और फिर इन मूलभूत रेखाओंका भेदन करते हुए दक्षिणसे उत्तरकी ओर तीन पड़ी रेखाएँ खींचे। इस तरह प्रत्येक दिशामें तीन-तीन रेखाग्र होंगे। सूर्य जिस राशिपर स्थित हों, उसे सामनेवाली दिशामें लिखकर क्रमशः बारहों राशियोंको प्रदक्षिण-क्रमसे उन रेखाग्रोंपर लिखे। तत्पश्चात् 'क' से लेकर 'ज' तकके अक्षरोंको सामनेकी दिशामें लिखे। 'झ' से लेकर 'द' तकके अक्षर दक्षिण दिशामें स्थित रहें, 'ध' से लेकर 'म' तकके अक्षर पूर्व दिशामें लिखे जायँ और 'य' से लेकर 'ह' तकके अक्षर उत्तर दिशामें अङ्कित हों। ये राहुके गुण या चिह्न बताये गये हैं। शुक्लपक्षमें इनका त्याग करे तथा तिथि-

राहुकी सम्मुख दृष्टिका भी त्याग करे। राहुकी दृष्टि सामने हो तो हानि होती है; अन्यथा विजय प्राप्त होती है॥ १०—१३॥

अब 'विष्टि-राहु' का वर्णन करता हूँ। निम्नाङ्कित रूपसे आठ रेखाएँ खींचे—ईशानकोणसे दक्षिण दिशातक, दक्षिण दिशासे वायव्यकोणतक, वायव्यकोणसे पूर्व दिशातक, वहाँसे नैर्ऋत्यकोणतक, नैर्ऋत्यकोणसे उत्तर दिशातक, उत्तर दिशासे अग्निकोणतक, अग्निकोणसे पश्चिम दिशातक तथा पश्चिम दिशासे ईशानकोणतक। इन रेखाओंपर विष्टि (भद्रा)-के साथ महाबली राहु विचरण करते हैं। कृष्णपक्षकी तृतीयादि तिथियोंमें विष्टि-राहुकी स्थिति ईशानकोणमें होती है और सप्तमी आदि तिथियोंमें दक्षिण दिशामें। (इसी प्रकार शुक्लपक्षकी अष्टमी आदिमें उनकी स्थिति नैर्ऋत्यकोणमें होती है और चतुर्थी आदिमें उत्तर दिशामें)। इस तरह कृष्ण एवं शुक्लपक्षमें वायुके आश्रित रहनेवाले सम्मुख राहु शत्रुओंका नाश करते हैं।* विष्टि-राहुचक्रकी पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र आदि आठ

* विष्टि-राहुचक्र इस प्रकार समझना चाहिये—

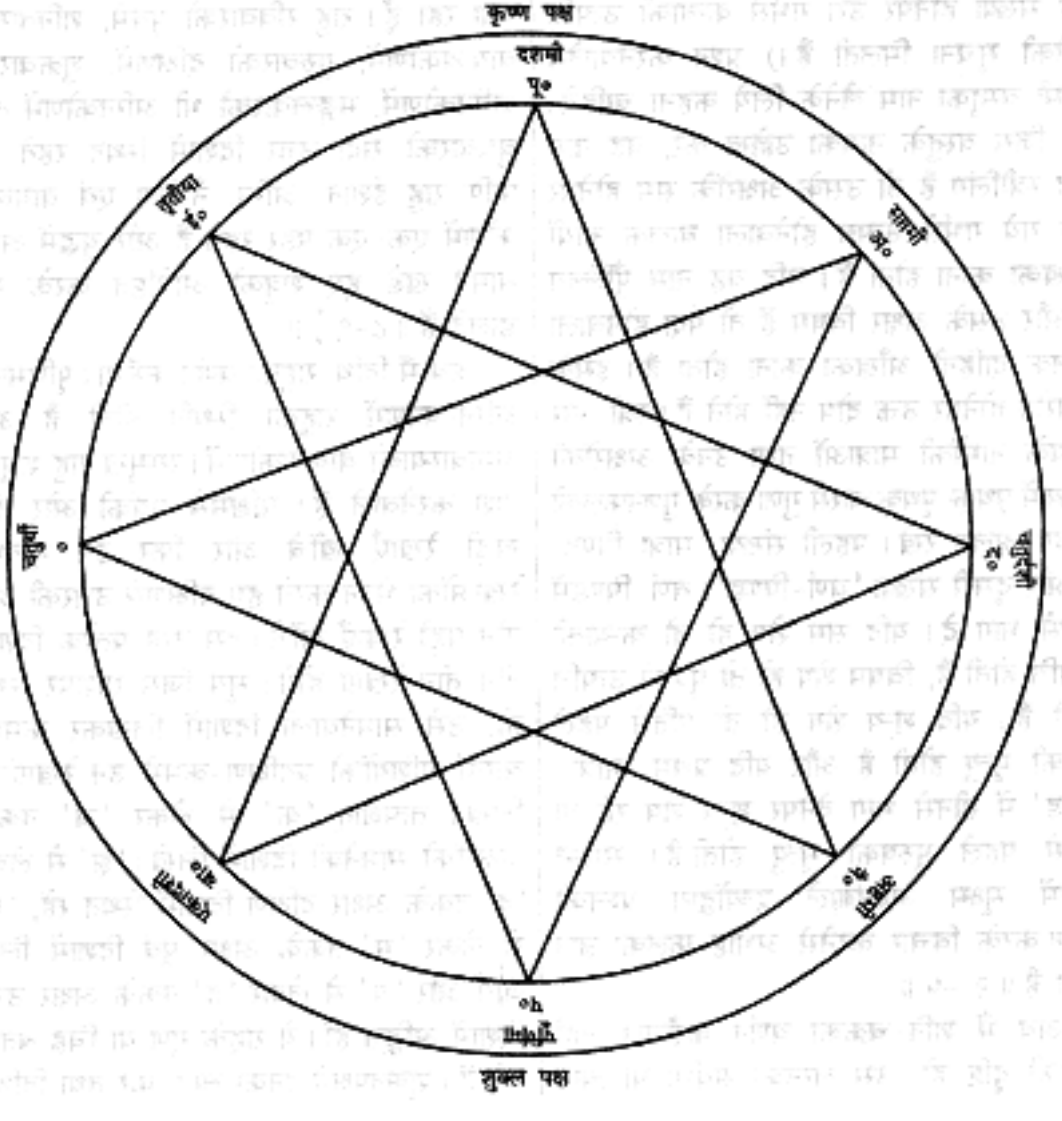

महाभैरवों[1], ब्रह्माणी आदि आठ[2] शक्तियों तथा सूर्य आदि आठ ग्रहोंको स्थापित करे। पूर्व आदि प्रत्येक दिशामें ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियोंके आठ अष्टकोंकी भी स्थापना करे। दक्षिण आदि दिशाओंमें वातयोगिनीका उल्लेख करे। वायु जिस दिशामें बहती है, उसी दिशामें इन सबके साथ रहकर राहु शत्रुओंका संहार करता है॥ १४—१७½॥

अब मैं अङ्गोंको सुदृढ़ करनेका उपाय बता रहा हूँ। पुष्यनक्षत्रमें उखाड़ी हुई तथा निम्नाङ्कित अपराजिता-मन्त्रका जप करके कण्ठ अथवा भुजा आदिमें धारण की हुई शरपुंखिका ('सरफोंका' नामक ओषधि) विपक्षीके बाणोंका लक्ष्य बननेसे बचाती है। इसी प्रकार पुष्यमें उखाड़ी 'अपराजिता' एवं 'पाठा' नामक ओषधिको भी यदि मन्त्रपाठपूर्वक कण्ठ और भुजाओंमें धारण किया जाय तो उन दोनोंके प्रभावसे मनुष्य तलवारके वारको बचा सकता है॥ १८-१९॥

(अपराजिता-मन्त्र इस प्रकार है—) **ॐ नमो भगवति वज्रशृङ्खले हन हन, ॐ भक्ष भक्ष, ॐ खाद, ॐ अरे रक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे भस्माङ्गि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधे वज्रप्राकारनिचिते पूर्वां दिशं बन्ध बन्ध, ॐ दक्षिणां दिशं बन्ध बन्ध, ॐ पश्चिमां दिशं बन्ध बन्ध, ॐ उत्तरां दिशं बन्ध बन्ध, नागान् बन्ध बन्ध, नागपत्नीर्बन्ध बन्ध, ॐ असुरान् बन्ध बन्ध, ॐ यक्षराक्षसपिशाचान् बन्ध बन्ध, ॐ प्रेतभूतगन्धर्वादयो ये केचिदुपद्रवास्तेभ्यो रक्ष रक्ष, ॐ ऊर्ध्वं रक्ष रक्ष, ॐ अधो रक्ष रक्ष, ॐ क्षुरिकं बन्ध बन्ध, ॐ ज्वल महाबले। घटि घटि, ॐ मोटि मोटि, सटावलिवज्राग्नि वज्रप्राकारे हुं फट्, ह्रीं हूं श्रीं फट् ह्रीं हः फूं फें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्वव्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीं अशेषेभ्यो रक्ष रक्ष॥ २०॥**

ग्रहपीड़ा, ज्वर आदिकी पीड़ा तथा भूतबाधा आदिके निवारण—इन सभी कर्मोंमें इस मन्त्रका उपयोग करना चाहिये॥ २१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मन्त्रौषधि आदिका वर्णन' नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४२॥

एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय

कुब्जिका-सम्बन्धी न्यास एवं पूजनकी विधि

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं कुब्जिकाकी क्रमिक पूजाका वर्णन करूँगा, जो समस्त मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली है। 'कुब्जिका' वह शक्ति है, जिसकी सहायतासे राज्यपर स्थित हुए देवताओंने अस्त्र-शस्त्रादिसे असुरोंपर विजय पायी है॥ १॥

मायाबीज 'ह्रीं' तथा हृदयादि छः मन्त्रोंका क्रमशः गुह्याङ्ग एवं हाथमें न्यास करे। '**काली-काली**'—यह हृदय मन्त्र है। '**दुष्ट चाण्डालिका**'—यह शिरोमन्त्र है। '**ह्रीं स्फेंह स ख क छ ड ओंकारो भैरवः।**'—यह शिखा-सम्बन्धी मन्त्र है। '**भेलखी दूती**'—यह कवच-सम्बन्धी मन्त्र है। '**रक्तचण्डिका**'—यह नेत्र-सम्बन्धी मन्त्र है तथा '**गुह्यकुब्जिका**'—यह अस्त्र-सम्बन्धी मन्त्र है। अङ्गों और हाथोंमें इनका न्यास करके मण्डलमें यथास्थान इनका

१. 'मन्त्र-महोदधि'१। ५४ में आठ भैरवोंके नाम इस प्रकार आये हैं—असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, चण्डभैरव (या कालभैरव), क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालिभैरव, भीषणभैरव तथा संहारभैरव।

२. अध्याय १४३ के छठे श्लोकमें ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियोंके नाम इस प्रकार आये हैं—ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा तथा चण्डिका। अध्याय १४४ के ३१वें श्लोकमें 'चण्डिका'की जगह 'महालक्ष्मी'का उल्लेख हुआ है।

पूजन करना चाहिये* ॥ २-३ ½ ॥

मण्डलके अग्निकोणमें कूर्च बीज (हूं), ईशानकोणमें शिरोमन्त्र (स्वाहा), नैर्ऋत्यकोणमें शिखामन्त्र (वषट्), वायव्यकोणमें कवचमन्त्र (हुम्), मध्यभागमें नेत्रमन्त्र (वौषट्) तथा मण्डलकी सम्पूर्ण दिशाओंमें अस्त्र-मन्त्र (फट्)-का उल्लेख एवं पूजन करे। बत्तीस अक्षरोंसे युक्त बत्तीस दलवाले कमलकी कर्णिकामें **'स्त्रौं ह स क्ष म ल न व ब ष ट स च'** तथा आत्मबीज-मन्त्र (आम्)-का न्यास एवं पूजन करे। कमलके सब ओर पूर्व दिशासे आरम्भ करके क्रमशः ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और चण्डिका (महालक्ष्मी)-का न्यास एवं पूजन करना चाहिये ॥ ४—६ ॥

तत्पश्चात् ईशान, पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य और पश्चिममें क्रमशः र, व, ल, क, स और ह—इनका न्यास और पूजन करे। फिर इन्हीं दिशाओंमें क्रमशः कुसुममाला एवं पाँच पर्वतोंका स्थापन एवं पूजन करे। पर्वतोंके नाम हैं—जालन्धर, पूर्णगिरि और कामरूप आदि। तत्पश्चात् वायव्य, ईशान, अग्नि और नैर्ऋत्यकोणमें तथा मध्यभागमें वज्रकुब्जिकाका पूजन करे। इसके बाद वायव्य, ईशान, नैर्ऋत्य, अग्नि तथा उत्तर शिखरपर क्रमशः अनादि विमल, सर्वज्ञ विमल, प्रसिद्ध विमल, संयोग विमल तथा समय विमल—इन पाँच विमलोंकी पूजा करे। इन्हीं शृङ्गोंपर कुब्जिकाकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः खिङ्गिनी, षष्ठी, सोपन्ना, सुस्थिरा तथा रत्नसुन्दरीका पूजन करना चाहिये। ईशानकोणवर्ती शिखरपर आठ आदिनाथोंकी आराधना करे ॥ ७—११ ॥

अग्निकोणवर्ती शिखरपर मित्रकी, पश्चिमवर्ती शिखरपर औडीश वर्षकी तथा वायव्यकोणवर्ती शिखरपर षष्टि नामक वर्षकी पूजा करनी चाहिये। पश्चिमदिशावर्ती शिखरपर गगनरत्न और कवचरत्नकी अर्चना की जानी चाहिये। वायव्य, ईशान और अग्निकोणमें 'ब्रुं' बीजसहित 'पञ्चनामा' संज्ञक मर्त्यकी पूजा करनी चाहिये। दक्षिण दिशा और अग्निकोणमें 'पञ्चरत्न' की अर्चना करे। ज्येष्ठा, रौद्री तथा अन्तिका—ये तीन संध्याओंकी अधिष्ठात्री देवियाँ भी उसी दिशामें पूजने योग्य हैं। इनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली पाँच महावृद्धाएँ हैं, उन सबकी प्रणवके उच्चारणपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इनका पूजन सत्ताईस अथवा अट्ठाईसके भेदसे दो प्रकारका बताया गया है ॥ १२—१४ ॥

चौकोर मण्डलमें दाहिनी ओर गणपतिका तथा बायीं ओर वटुकका पूजन करे। **'ॐ एं गूं क्रमगणपतये नमः।'** इस मन्त्रसे क्रमगणपतिकी तथा **'ॐ वटुकाय नमः।'** इस मन्त्रसे वटुककी पूजा करे। वायव्य आदि कोणोंमें चार गुरुओंका तथा अठारह षट्कोणोंमें सोलह नाथोंका पूजन करे। फिर मण्डलके चारों ओर ब्रह्मा आदि आठ देवताओंकी तथा मध्यभागमें नवमी कुब्जिका एवं कुलटा देवीकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार सदा इसी क्रमसे पूजा करे ॥ १५—१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुब्जिकाकी क्रम-पूजाका वर्णन' नामक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४३ ॥

---

* अङ्गन्यास-सम्बन्धी वाक्यकी योजना इस प्रकार है। ॐ ह्रीं काली काली हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं दुष्टचाण्डालिकायै शिरसे स्वाहा। ॐ ह्रीं स्फें ह स ख क छ ड ॐकाराय भैरवाय शिखायै वषट्। ॐ ह्रीं भेलखौं दूत्यै कवचाय हुम्। ॐ ह्रीं रक्तचण्डिकायै नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ गुह्यकुब्जिकायै अस्त्राय फट्। इन छः वाक्योंद्वारा क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं सम्पूर्ण दिशाओंमें न्यास किया जाता है। इन्हीं वाक्योंमें 'हृदयाय नमः' के स्थानमें 'अङ्गुष्ठाभ्यां नमः', 'शिरसे'के स्थानमें 'तर्जनीभ्यां नमः', 'शिखायै'के स्थानमें 'मध्यमाभ्यां नमः', 'कवचाय'की जगह 'अनामिकाभ्यां नमः', 'नेत्रत्रयाय'के स्थानमें 'कनिष्ठिकाभ्यां नमः' तथा 'अस्त्राय'के स्थानमें 'करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' कर दिया जाय तो ये करन्यास-सम्बन्धी वाक्य हो जायँगे तथा इनका क्रमशः हाथके दोनों अङ्गुष्ठों, तर्जनियों, मध्यमाओं, अनामिकाओं, कनिष्ठिकाओं तथा करतल-कर-पृष्ठ-भागोंमें न्यास किया जायगा।

कुब्जिकाकी पूजा-विधिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! अब मैं धर्म, अर्थ, काम तथा विजय प्रदान करनेवाली श्रीमती कुब्जिकादेवीके मन्त्रका वर्णन करूँगा। परिवारसहित मूलमन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये॥ १॥

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं खैं हें हसक्षमलवयं भगवति अम्बिके ह्रां ह्रीं क्ष्रीं क्ष्रीं क्ष्रूं क्रीं कुब्जिके ह्राम् ॐ ङञनणमेऽअघोरमुखि त्रां छ्रां छ्रीं किलि किलि क्ष्रौं विच्चे ख्यों श्रीं क्रोम्, ॐ ह्रोम्, ऐं वज्रकुब्जिनि स्त्रीं त्रैलोक्यकर्षिणि ह्रीं कामाङ्गद्राविणि ह्रीं स्त्रीं महाक्षोभकारिणि ऐं ह्रीं क्ष्रौं ऐं ह्रीं श्रीं फें क्ष्रौं नमो भगवति क्ष्रीं कुब्जिके ह्रों ह्रों क्रैं ङञणनमे अघोरमुखि छ्रां छां विच्चे, ॐ किलि किलि।'—यह कुब्जिकामन्त्र है॥ २॥

करन्यास और अङ्गन्यास करके संध्या-वन्दन करे। वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री—ये क्रमशः तीन संध्याएँ कही गयी हैं॥ ३॥

कौली गायत्री

'कुलवागीशि विद्महे, महाकौलीति धीमहि। तन्नः कौली प्रचोदयात्।' 'कुलवागीश्वरि! हम आपको जानें। महाकौलीके रूपमें आपका चिन्तन करें। कौली देवी हमें शुभ कर्मोंके लिये प्रेरित करे'॥ ४॥

इसके पाँच मन्त्र हैं, जिनके आदिमें 'प्रणव' और अन्तमें 'नमः' पदका प्रयोग होता है। बीचमें पाँच नाथोंके नाम हैं; अन्तमें **'श्रीपादुकां पूजयामि'**—इस पदको जोड़ना चाहिये। मध्यमें देवताका चतुर्थ्यन्त नाम जोड़ देना चाहिये। इस प्रकार ये पाँचों मन्त्र लगभग अठारह-अठारह अक्षरोंके होते हैं। इन सबके नामोंको षष्ठी विभक्तिके साथ संयुक्त करना चाहिये। इस तरह वाक्य-योजना करके इनके स्वरूप समझने चाहिये। मैं उन पाँचों नाथोंका वर्णन करता हूँ—कौलीशनाथ, श्रीकण्ठनाथ, कौलनाथ, गगनानन्दनाथ तथा तूर्णनाथ। इनकी पूजाका मन्त्र-वाक्य इस प्रकार होना चाहिये—**'ॐ कौलीशनाथाय नमस्तस्मै पादुकां पूजयामि।'** इनके साथ क्रमशः ये पाँच देवियाँ भी पूजनीय हैं—१—सुकला देवी, जो जन्मसे ही कुब्जा होनेके कारण 'कुब्जिका' कही गयी हैं; २—चटुला देवी, ३—मैत्रीशी देवी, जो विकराल रूपवाली हैं, ४—अतल देवी और ५—श्रीचन्द्रा देवी हैं। इन सबके नामके अन्तमें 'देवी' पद है। इनके पूजनका मन्त्र-वाक्य इस प्रकार होगा—

'ॐ सुकलादेव्यै नमस्तस्यै भगात्मपुङ्गण-देवमोहिनीं पादुकां पूजयामि।' दूसरी (चटुला) देवीकी पादुकाका यह विशेषण देना चाहिये—**'अतीतभुवनानन्दरत्नाढ्यां पादुकां पूजयामि।'** इसी तरह तीसरी देवीकी पादुकाका विशेषण **'ब्रह्मज्ञानाढ्यां'**, चौथीकी पादुकाका विशेषण **'कमलाढ्यां'** तथा पाँचवींकी पादुकाका विशेषण **'परमविद्याढ्यां'** देना चाहिये॥ ५—९॥

इस प्रकार विद्या, देवी और गुरु (उपर्युक्त पाँच नाथ)—इन तीनकी शुद्धि 'त्रिशुद्धि' कहलाती है। मैं तुमसे इसका वर्णन करता हूँ। गगनानन्द, चटुली, आत्मानन्द, पद्मानन्द, मणि, कला, कमल, माणिक्यकण्ठ, गगन, कुमुद, श्रीपद्म, भैरवानन्द, कमलदेव, शिव, भव तथा कृष्ण—ये सोलह नूतन सिद्ध हैं॥ १०-११ ½॥

चन्द्रपूर, गुल्म, शुभकाम, अतिमुक्तक, वीरकण्ठ, प्रयोग, कुशल, देवभोगक्र (अथवा भोगदायक), विश्वदेव, खड्गदेव, रुद्र, धाता, असि, मुद्रास्फोट, वंशपूर तथा भोज—ये सोलह सिद्ध हैं। इन

सिद्धोंका शरीर भी छः प्रकारके न्यासोंसे नियन्त्रित होनेके कारण इनके आत्माके समान जातिका ही (सच्चिदानन्दमय) हो गया है। मण्डलमें फूल बिखेरकर मण्डलोंकी पूजा करे। अनन्त, महान्, शिवपादुका, महाव्याप्ति, शून्य, पञ्चतत्त्वात्मक-मण्डल, श्रीकण्ठनाथ-पादुका, शंकर एवं अनन्तकी भी पूजा करे॥ १२—१६॥

सदाशिव, पिङ्गल, भृग्वानन्द, नाथ-समुदाय, लाङ्गूलानन्द और संवर्त—इन सबका मण्डल-स्थानमें पूजन करे। नैर्ऋत्यकोणमें श्रीमहाकाल, पिनाकी, महेन्द्र, खड्ग, नाग, बाण, अघासि (पापका छेदन करनेके लिये खड्गरूप), शब्द, वश, आज्ञारूप और नन्दरूप—इनको बलि अर्पित करके क्रमशः इनका पूजन करे। इसके बाद वटुकको अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप, गन्ध एवं बलि तथा क्षेत्रपालको गन्ध, पुष्प और बलि अर्पित करे। इसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—**'ह्रीं खं खं हूं सौं वटुकाय अरु अरु अर्घ्यं पुष्पं धूपं दीपं गन्धं बलिं पूजां गृह्ण गृह्ण नमस्तुभ्यम्। ॐ ह्रां ह्रीं हूं क्षेत्रपालायावतरावतर महाकपिलजटाभार भास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख एहोहि गन्धपुष्पबलिपूजां गृह्ण गृह्ण खः खः ॐ कः ॐ लः ॐ महाडामराधिपतये स्वाहा।'** बलिके अन्तमें दायें-बायें तथा सामने त्रिकूटका पूजन करे; इसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—**'ह्रीं हूं ह्रां श्रीं त्रिकूटाय नमः।'** फिर बायें निशानाथकी, दाहिने तमोऽरिनाथ (या सूर्यनाथ)-की तथा सामने कालानलकी पादुकाओंका यजन-पूजन करे। तदनन्तर उड्डियान, जालन्धर, पूर्णगिरि तथा कामरूपका पूजन करना चाहिये। फिर गगनानन्ददेव, वर्गसहित स्वर्गानन्ददेव, परमानन्ददेव, सत्यानन्ददेवकी पादुका तथा नागानन्ददेवकी पूजा करे। इस प्रकार 'वर्ग' नामक पञ्चरत्नका तुमसे वर्णन किया गया है॥ १७—२३½॥

उत्तर और ईशानकोणमें इन छःकी पूजा करे—सुरनाथकी पादुकाको, श्रीमान् समयकोटीश्वरकी, विद्याकोटीश्वरकी, कोटीश्वरकी, बिन्दुकोटीश्वरकी तथा सिद्धकोटीश्वरकी। अग्निकोणमें चार* सिद्ध-समुदायकी तथा अमरीशेश्वर, चक्रीशेश्वर, कुरङ्गेश्वर, वृत्रेश्वर और चन्द्रनाथ या चन्द्रेश्वरकी पूजा करे। इन सबकी गन्ध आदि पञ्चोपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। दक्षिण दिशामें अनादि विमल, सर्वज्ञ विमल, योगीश विमल, सिद्ध विमल और समय विमल—इन पाँच विमलोंका पूजन करे॥ २४—२७½॥

नैर्ऋत्यकोणमें चार वेदोंका, कंदर्पनाथका, पूर्वोक्त सम्पूर्ण शक्तियोंका तथा कुब्जिकाकी श्रीपादुकाका पूजन करे। इनमें कुब्जिकाकी पूजा **'ॐ ह्रां ह्रीं कुब्जिकायै नमः।'**—इस नवाक्षर मन्त्रसे अथवा केवल पाँच प्रणवरूप मन्त्रसे करे। पूर्व दिशासे लेकर ईशानकोण-पर्यन्त ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, अनन्त, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान—इन दस दिक्पालोंकी पूजा करे। सहस्रनेत्रधारी इन्द्र, अनवद्य विष्णु तथा शिवकी पूजा सदा ही करनी चाहिये। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी—इनकी पूजा पूर्व दिशासे लेकर ईशानकोण-पर्यन्त आठ दिशाओंमें क्रमशः करे॥ २८—३१॥

तदनन्तर वायव्यकोणसे छः उग्र दिशाओंमें क्रमशः डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा याकिनी—इनकी पूजा करे। तत्पश्चात् ध्यानपूर्वक कुब्जिकादेवीका पूजन करना चाहिये। बत्तीस व्यञ्जन अक्षर ही उनका शरीर है। उनके पूजनमें पाँच प्रणव अथवा 'ह्रीं' का बीजरूपसे

* मन्त्रमहोदधि १२। ३७ के अनुसार चार 'सिद्धौघ' गुरु हैं। यथा—योगक्रीड, समय, सहज और परावर। पूजाका मन्त्र—'योगक्रीडानन्दनाथाय नमः, समयानन्दनाथाय नमः' इत्यादि।

उच्चारण करना चाहिये। (यथा—'ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ कुब्जिकायै नमः।' अथवा 'ॐ ह्रीं कुब्जिकायै नमः।')॥ ३२-३३॥

देवीकी अङ्गकान्ति नील कमल-दलके समान श्याम है, उनके छः मुख हैं और उनकी मुखकान्ति भी छः प्रकारकी है। वे चैतन्य-शक्तिस्वरूपा हैं। अष्टादशाक्षर मन्त्रद्वारा उनका प्रतिपादन होता है। उनके बारह भुजाएँ हैं। वे सुखपूर्वक सिंहासनपर विराजमान हैं। प्रेतपद्मके ऊपर बैठी हैं। वे सहस्रों कोटि कुलोंसे सम्पन्न हैं। 'कर्कोटक' नामक नाग उनकी मेखला (करधनी) है। उनके मस्तकपर 'तक्षक' नाग विराजमान है। 'वासुकि' नाग उनके गलेका हार है। उनके दोनों कानोंमें स्थित 'कुलिक' और 'कूर्म' नामक नाग कुण्डल-मण्डल बने हुए हैं। दोनों भौंहोंमें 'पद्म' और 'महापद्म' नामक नागोंकी स्थिति है। बायें हाथोंमें नाग, कपाल, अक्षसूत्र, खट्वाङ्ग, शङ्ख और पुस्तक हैं। दाहिने हाथोंमें त्रिशूल, दर्पण, खड्ग, रत्नमयी माला, अङ्कुश तथा धनुष हैं। देवीके दो मुख ऊपरकी ओर हैं, जिनमें एक तो पूरा सफेद है और दूसरा आधा सफेद है। उनका पूर्ववर्ती मुख पाण्डुवर्णका है, दक्षिणवर्ती मुख क्रोधयुक्त जान पड़ता है, पश्चिमवाला मुख काला है और उत्तरवर्ती मुख हिम, कुन्द एवं चन्द्रमाके समान श्वेत है। ब्रह्मा उनके चरणतलमें स्थित हैं, भगवान् विष्णु जघनस्थलमें विराजमान हैं, रुद्र हृदयमें, ईश्वर कण्ठमें, सदाशिव ललाटमें तथा शिव उनके ऊपरी भागमें स्थित हैं। कुब्जिकादेवी झूमती हुई-सी दिखायी देती हैं। पूजा आदि कर्मोंमें कुब्जिकाका ऐसा ही ध्यान करना चाहिये॥ ३४—४०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कुब्जिकाकी पूजाका वर्णन' नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४४॥

एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

मालिनी आदि नाना प्रकारके मन्त्र और उनके षोढा-न्यास

भगवान् महेश्वर कहते हैं— स्कन्द! अब मैं छः प्रकारके न्यासपूर्वक नाना प्रकारके मन्त्रोंका वर्णन करूँगा। ये छहों प्रकारके न्यास 'शाम्भव', 'शाक्त' तथा 'यामल'के भेदसे तीन-तीन प्रकारके होते हैं। 'शाम्भव-न्यास' में षट्षोडश ग्रन्थिरूप शब्दराशि प्रथम है, तीन विद्याएँ और उनका ग्रहण द्वितीय न्यास है, त्रितत्त्वात्मक न्यास तीसरा है, वनमालान्यास चौथा है, यह बारह श्लोकोंका है। रत्नपञ्चकका न्यास पाँचवाँ है और नवाक्षरमन्त्रका न्यास छठा कहा गया है॥ १—३॥

शाक्तपक्षमें 'मालिनी'का न्यास प्रथम, 'त्रिविद्या'का न्यास द्वितीय, 'अघोर्यष्टक'का न्यास तृतीय, 'द्वादशाङ्गन्यास' चतुर्थ, 'षडङ्गन्यास' पञ्चम तथा 'अस्त्रचण्डिका' नामक शक्तिका न्यास छठा है। क्लीं (क्रीं), ह्रीं, क्लीं, श्रीं, क्रूं, फट्—इन छः बीजमन्त्रोंका जो छः प्रकारका न्यास है, यही तीसरा अर्थात् 'यामल न्यास' है। इन छहोंमेंसे चौथा 'श्रीं' बीजका न्यास है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है॥ ४-५॥

'न' से लेकर 'फ' तक जो न्यास बताया जाता है, वह सब मालिनीका ही न्यास है। 'न' से आरम्भ होनेवाली अथवा नाद करनेवाली शक्तिका न्यास शिखामें करना चाहिये। 'अ' ग्रसनी शक्ति तथा 'श' शिरोमाला-निवृत्ति शक्तिका स्थान सिरमें है; अतः वहीं उनका न्यास करे। 'ट' शान्तिका प्रतीक है, इसका न्यास भी सिरमें

ही होगा। 'च' चामुण्डाका प्रतीक है, इसका न्यास नेत्रत्रयमें करना चाहिये। 'ढ' प्रियदृष्टिस्वरूप है, इसका न्यास नेत्रद्वयमें होना चाहिये। गुह्यशक्तिका प्रतीक है—'नी', इसका न्यास नासिकाद्वयमें करे। 'न' नारायणीरूप है, इसका स्थान दोनों कानोंमें है। 'त' मोहिनीरूप है, इसका स्थान केवल दाहिने कानमें है। 'ज' प्रज्ञाका प्रतीक है, इसकी स्थिति बायें कानमें बतायी गयी है। वज्रिणी देवीका स्थान मुखमें है। 'क' कराली शक्तिका प्रतीक है, इसकी स्थिति दाहिनी दंष्ट्रा (दाढ़)-में है। 'ख' कपालिनीरूप है, 'व' बायें कंधेपर स्थापित होनेके योग्य है। 'ग' शिवाका प्रतीक है, इसका स्थान ऊपरी दाढ़ोंमें है। 'घ' घोरा शक्तिका सूचक है, इसकी स्थिति बायीं दाढ़में मानी गयी है। 'उ' शिखा शक्तिका सूचक है, इसका स्थान दाँतोंमें है। 'ई' मायाका प्रतीक है, जिसका स्थान जिह्वाके अन्तर्गत माना गया है। 'अ' नागेश्वरीरूप है, इसका न्यास वाक्-इन्द्रियमें होना चाहिये। 'व' शिखिवाहिनीका बोधक है, इसका स्थान कण्ठमें है॥ ६—१०॥

'भ' के साथ भीषणी शक्तिका न्यास दाहिने कंधेमें करे। 'म' के साथ वायुवेगका न्यास बायें कंधेमें करे। 'ड' अक्षर और नामा शक्तिका दाहिनी भुजामें तथा 'ढ' अक्षर एवं विनायका देवीका बायीं भुजामें न्यास करे। 'प' एवं पूर्णिमाका न्यास दोनों हाथोंमें करे। प्रणवसहित ओंकारा शक्तिका दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंमें तथा 'अं' सहित दर्शनीका बायें हाथकी अङ्गुलियोंमें न्यास करे। 'अः' एवं संजीवनी-शक्तिका हाथमें न्यास करे। 'ट' अक्षरसहित कपालिनी शक्तिका स्थान कपाल है। 'त' सहित दीपनीकी स्थिति शूलदण्डमें है। जयन्तीकी स्थिति त्रिशूलमें है। 'य' सहित साधनी देवीका स्थान ऋद्धि (वृद्धि) है॥ ११—१३॥

'श' अक्षरके साथ परमाख्या देवीकी स्थिति जीवमें है। 'ह' अक्षरसहित अम्बिका देवीका न्यास प्राणमें करना चाहिये। 'छ' अक्षरके साथ शरीरा देवीका स्थान दाहिने स्तनमें है। 'न' सहित पूतनाकी स्थिति बायें स्तनमें बतायी गयी है। 'अ' सहित आमोटीका स्तन-दुग्धमें, 'थ' सहित लम्बोदरीका उदरमें, 'क्ष' सहित संहारिकाका नाभिमें तथा 'म' सहित महाकालीका नितम्बमें न्यास करे। 'स' अक्षरसहित कुसुममालाका गुह्यदेशमें, 'प' सहित शुक्रदेविकाका शुक्रमें, 'त' सहित तारा देवीका दोनों ऊरुओंमें तथा 'द' सहित ज्ञानाशक्तिका दाहिने घुटनेमें न्यास करे। 'औ' सहित क्रियाशक्तिका बायें घुटनेमें, 'ओ' सहित गायत्री देवीका दाहिनी जङ्घा (पिण्डली)-में, 'ॐ' सहित सावित्रीका बायीं जङ्घामें तथा 'द' सहित दोहिनीका दाहिने पैरमें न्यास करे। 'फ' सहित 'फेत्कारी' का बायें पैरमें न्यास करना चाहिये॥ १४—१७॥

मालिनी-मन्त्र नौ अक्षरोंसे युक्त होता है। 'अ' सहित श्रीकण्ठका शिखामें, 'आ' सहित अनन्तका मुखमें, 'इ' सहित सूक्ष्मका दाहिने नेत्रमें, 'ई' सहित त्रिमूर्तिका बायें नेत्रमें, 'उ' सहित अमरीशका दाहिने कानमें तथा 'ऊ' सहित अर्धांशकका बायें कानमें न्यास करे। 'ऋ' सहित भावभूतिका दाहिने नासाग्रमें, 'ॠ' सहित तिथीशका वामनासाग्रमें, 'ऌ' सहित स्थाणुका दाहिने गालमें तथा 'ॡ' सहित हरका बायें गालमें न्यास करे। 'ए' अक्षरसहित कटीशका नीचेकी दन्तपङ्क्तिमें, 'ऐ' सहित भूतीशका ऊपरकी दन्तपङ्क्तिमें, 'ओ' सहित सद्योजातका नीचेके ओष्ठमें तथा 'औ' सहित अनुग्रहीश (या अनुग्रहेश)-का ऊपरके ओष्ठमें न्यास करे। 'अं' सहित क्रूरका गलेकी घाटीमें, 'अः' सहित महासेनका जिह्वामें, 'क' सहित क्रोधीशका दाहिने कंधेमें तथा 'ख' सहित

चण्डीशका बाहुओंमें न्यास करे। 'ग' सहित पञ्चान्तकका कूर्परमें, 'घ' सहित शिखीका दाहिने कङ्कणमें, 'ङ' सहित एकपादका दायीं अङ्गुलियोंमें तथा 'च' सहित कूर्मकका बायें कंधेमें न्यास करे॥ १८—२३॥

'छ' सहित एकनेत्रका बाहुमें, 'ज' सहित चतुर्मुखका कूर्पर या कोहनीमें, 'झ' सहित राजसका वामकङ्कणमें तथा 'ञ' सहित सर्वकामदका बायीं अङ्गुलियोंमें न्यास करे। 'ट' सहित सोमेश्वरका नितम्बमें, 'ठ' सहित लाङ्गलीका दक्षिण ऊरु (दाहिनी जाँघ)-में, 'ड' सहित दारुकका दाहिने घुटनेमें तथा 'ढ' सहित अर्द्धजलेश्वरका पिण्डलीमें न्यास करे। 'ण' सहित उमाकान्तका दाहिने पैरकी अङ्गुलियोंमें, 'त' सहित आषाढ़ीका नितम्बमें, 'थ' सहित दण्डीका वाम ऊरु (बायीं जाँघ)-में तथा 'द' सहित भिदका बायें घुटनेमें न्यास करे। 'ध' सहित मीनका बायीं पिण्डलीमें, 'न' सहित मेषका बायें पैरकी अङ्गुलियोंमें, 'प' सहित लोहितका दाहिनी कुक्षिमें तथा 'फ' सहित शिखीका बायीं कुक्षिमें न्यास करे। 'ब' सहित गलण्डका पृष्ठवंशमें, 'भ' सहित द्विरण्डका नाभिमें, 'म' सहित महाकालका हृदयमें तथा 'य' सहित वाणीशका त्वचामें न्यास बताया गया है॥ २४—२८॥

'र' सहित भुजङ्गेशका रक्तमें, 'ल' सहित पिनाकीका मांसमें, 'व' सहित खड्गीशका अपने आत्मा (शरीर)-में तथा 'श' सहित वकका हड्डीमें न्यास करे। 'ष' सहित श्वेतका मज्जामें, 'स' सहित भृगुका शुक्र एवं धातुमें, 'ह' सहित नकुलीशका प्राणमें तथा 'क्ष' सहित संवर्तका पञ्चकोशोंमें न्यास करना चाहिये। 'ह्रीं' बीजसे रुद्रशक्तियोंका पूजन करके उपासक सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ २९-३०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मालिनी-मन्त्र आदिके न्यासका वर्णन' नामक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४५॥

एक सौ छियालीसवाँ अध्याय

त्रिखण्डी-मन्त्रका वर्णन, पीठस्थानपर पूजनीय शक्तियों तथा आठ अष्टक देवियोंका कथन

भगवान् महेश्वर कहते हैं— स्कन्द! अब मैं ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरसे सम्बन्ध रखनेवाली त्रिखण्डीका वर्णन करूँगा॥ १॥

'ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः। नमश्चामुण्डे नमश्चाकाशमातृणां सर्वकामार्थसाधनीनाम-जरामरीणां सर्वत्राप्रतिहतगतीनां स्वरूपपरिवर्तिनीनां सर्वसत्त्ववशीकरणोत्सादनोन्मूलनसमस्तकर्म-प्रवृत्तानां सर्वमातृगुह्यं हृदयं परमसिद्धं परकर्मच्छेदनं परमसिद्धिकरं मातृणां वचनं शुभम्।' इस ब्रह्मखण्डपदमें रुद्रमन्त्र-सम्बन्धी एक सौ इक्कीस अक्षर हैं॥ २-३॥

(अब विष्णुखण्डपद बताया जाता है—) 'ॐ नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे माहेश्वरि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे कौमारि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे वैष्णवि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे वाराहि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे इन्द्राणि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे चण्डि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा। ॐ नमश्चामुण्डे ईशानि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा।' यह यथोचित अक्षरवाले पदोंका दूसरा मन्त्रखण्ड है, जो 'विष्णुखण्डपद' कहा

गया है॥ ४-५॥

(अब महेश्वरखण्डपद बताया जाता है—)

'ॐ नमश्चामुण्डे ऊर्ध्वकेशि ज्वलितशिखरे विद्युज्जिह्वे तारकाक्षि पिङ्गलभ्रुवे विकृतदंष्ट्रे क्रुद्धे, ॐ मांसशोणितसुरासवप्रिये हस हस ॐ नृत्य नृत्य ॐ विजृम्भय विजृम्भय ॐ मायात्रैलोक्यरूपसहस्रपरिवर्तिनीनामों बन्ध बन्ध, ॐ कुट्ट कुट्ट चिरि चिरि हिरि हिरि भिरि भिरि त्रासनि त्रासनि भ्रामणि भ्रामणि, ॐ द्रावणि द्रावणि क्षोभणि क्षोभणि मारणि मारणि संजीवनि संजीवनि हेरि हेरि गेरि गेरि घेरि घेरि, ॐ सुरि सुरि ॐ नमो मातृगणाय नमो नमो विच्चे'॥ ६॥

यह माहेश्वरखण्ड एकतीस पदोंका है। इसमें एक सौ एकहत्तर अक्षर हैं। इन तीनों खण्डोंको 'त्रिखण्डी' कहते हैं। इस त्रिखण्डी-मन्त्रके आदि और अन्तमें **'हें घों'** तथा पाँच प्रणव जोड़कर उसका जप एवं पूजन करना चाहिये। **'हें घों श्रीकुब्जिकायै नमः।'**—इस मन्त्रको त्रिखण्डीके पदोंकी संधियोंमें जोड़ना चाहिये। अकुलादि त्रिमध्यग, कुलादि त्रिमध्यग, मध्यमादि त्रिमध्यग तथा पाद-त्रिमध्यग—ये चार प्रकारके मन्त्र-पिण्ड हैं। साढ़े तीन मात्राओंसे युक्त प्रणवको आदिमें लगाकर इनका जप अथवा इनके द्वारा यजन करना चाहिये। तदनन्तर भैरवके शिखा-मन्त्रका जप एवं पूजन करे—**'ॐ क्ष्रौं शिखाभैरवाय नमः'**॥ ७—९ ½॥

'स्खां स्खीं स्खें'—ये तीन सबीज त्र्यक्षर हैं। **'ह्रां ह्रीं ह्रें'**—ये निर्बीज त्र्यक्षर हैं। विलोम-क्रमसे 'क्ष' से लेकर 'क' तकके बत्तीस अक्षरोंकी वर्णमाला 'अकुला' कही गयी है। अनुलोम-क्रमसे गणना होनेपर वह 'सकुला' कही जाती है। शशिनी, भानुनी, पावनी, शिव, गन्धारी, 'ण' पिण्डाक्षी, चपला, गजजिह्विका, 'म' मृषा, भयसारा, मध्यमा, 'फ' अजरा, 'य' कुमारी, 'न' कालरात्री, 'द' संकटा, 'ध' कालिका, 'फ' शिवा, 'ण' भवघोरा, 'ट' बीभत्सा, 'त' विद्युता, 'ठ' विश्वम्भरा और शंसिनी अथवा 'ड' विश्वम्भरा, 'आ' शंसिनी, 'द' ज्वालामालिनी, कराली, दुर्जया, रङ्की, वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री, 'ख' काली, 'क' कुलालम्बी, अनुलोमा, 'द' पिण्डिनी, 'आ' वेदिनी, 'इ' रूपी, 'वै' शान्तिमूर्ति एवं कलाकुला, 'ऋ' खड्गिनी, 'उ' वलिता, 'लृ' कुला, 'ॡ' सुभगा, वेदनादिनी और कराली, 'अं' मध्यमा तथा 'अः' अपेतरया—इन शक्तियोंका योगपीठपर क्रमशः पूजन करना चाहिये॥ १०—१७॥

'स्खां स्खीं स्खौं महाभैरवाय नमः।'—यह महाभैरवके पूजनका मन्त्र है। (ब्रह्माणी आदि आठ शक्तियोंके साथ पृथक् आठ-आठ शक्तियाँ और हैं, जिन्हें 'अष्टक' कहा गया है। उनका क्रमशः वर्णन किया जाता है।) अक्षोद्या, ऋक्षकर्णी, राक्षसी, क्षपणा, क्षया, पिङ्गाक्षी, अक्षया और क्षेमा—ये ब्रह्माणीके अष्टक-दलमें स्थित होती हैं। इला, लीलावती, नीला, लङ्का, लङ्केश्वरी, लालसा, विमला और माला—ये माहेश्वरी-अष्टकमें स्थित हैं। हुताशना, विशालाक्षी, हूंकारी, वडवामुखी, हाहारवा, क्रूरा, क्रोधा तथा खराननाबाला—ये आठ कौमारीके शरीरसे प्रकट हुई हैं। इनका पूजन करनेपर ये सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली होती हैं। सर्वज्ञा, तरला, तारा, ऋग्वेदा, हयानना, सारासारा, स्वयंग्राहा तथा शाश्वती—ये आठ शक्तियाँ वैष्णवीके कुलमें प्रकट हुई हैं॥ १८—२२ ½॥

तालुजिह्वा, रक्ताक्षी, विद्युज्जिह्वा, करङ्किणी, मेघनादा, प्रचण्डोग्रा, कालकर्णी तथा कलिप्रिया—ये वाराहीके कुलमें उत्पन्न हुई हैं। विजयकी इच्छावाले पुरुषको इनकी पूजा करनी चाहिये। चम्पा, चम्पावती, प्रचम्पा, ज्वलिताननाः, पिशाची, पिचुवक्त्रा तथा लोलुपा—ये इन्द्राणी शक्तिके कुलमें उत्पन्न

हुई हैं। पावनी, याचनी, वामनी, दमनी, विन्दुवेला, बृहत्कुक्षी, विद्युता तथा विश्वरूपिणी—ये चामुण्डाके कुलमें प्रकट हुई हैं और मण्डलमें पूजित होनेपर विजयदायिनी होती हैं॥ २३—२६ ½ ॥

यमजिह्वा, जयन्ती, दुर्जया, यमान्तिका, विडाली, रेवती, जया और विजया—ये महालक्ष्मीके कुलमें उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार आठ अष्टकोंका वर्णन किया गया॥ २७-२८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आठ अष्टक देवियोंका वर्णन' नामक एक सौ छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४६ ॥

एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय

गुह्यकुब्जिका, नवा त्वरिता तथा दूतियोंके मन्त्र एवं न्यास-पूजन आदिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! (अब मैं गुह्य-कुब्जिका, नवा त्वरिता, दूती तथा त्वरिताके गुह्याङ्ग एवं तत्त्वोंका वर्णन करूँगा—) '**ॐ गुह्यकुब्जिके हुं फट् मम सर्वोपद्रवान् यन्त्रमन्त्रतन्त्रचूर्णप्रयोगादिकं येन कृतं कारितं कुरुते करिष्यति कारयिष्यति तान् सर्वान् हन हन द्रंष्ट्रा-करालिनि हैं ह्रीं हुं गुह्यकुब्जिकायै स्वाहा ह्रौं, ॐ खें वों गुह्यकुब्जिकायै नमः।**' (इस मन्त्रसे गुह्यकुब्जिकाका पूजन एवं जप करना चाहिये।) '**ह्रीं सर्वजनक्षोभणी जनानुकर्षिणी ॐ खें ख्यां ख्यां सर्वजनवशंकरी जनमोहनी, ॐ ख्यौं सर्वजनस्तम्भनी, ऐं खं खां क्षोभणी, ऐं त्रितत्त्वं बीजं श्रेष्ठं कुले पञ्चाक्षरी, फं श्रीं क्षीं ह्रीं क्षें वच्छे क्षे क्षे हूं फट्, ह्रीं नमः। ॐ ह्रां वच्छे क्षे क्षें क्षों ह्रीं फट्**'॥ १—४॥

यह 'नवा त्वरिता' बतायी गयी है। इसे बारंबार जानना (जपना) चाहिये। इसकी पूजा की जाय तो यह विजयदायिनी होती है। '**ह्रीं सिंहाय नमः।**' इस मन्त्रसे आसनकी पूजा करके देवीको सिंहासन समर्पित करे। '**ह्रीं क्षे हृदयाय नमः।**' बोलकर हृदयका स्पर्श करे। '**वच्छे शिरसे स्वाहा।**' बोलकर सिरका स्पर्श करे—इस प्रकार यह 'त्वरितामन्त्र'का शिरोन्यास बताया गया है। '**क्षें ह्रीं शिखायै वषट्।**' ऐसा कहकर शिखाका स्पर्श करे। '**क्षें कवचाय हुम्।**' कहकर दोनों भुजाओंका स्पर्श करे। '**हूं नेत्रत्रयाय वौषट्।**' कहकर दोनों नेत्रोंका तथा ललाटके मध्यभागका स्पर्श करे। '**ह्रीं अस्त्राय फट्।**' कहकर ताली बजाये। हींकारी, खेचरी, चण्डा, छेदनी, क्षोभणी, क्रिया, क्षेमकारी, हुंकारी तथा फट्कारी—ये नौ शक्तियाँ हैं॥ ५—७ ½ ॥

अब दूतियोंका वर्णन करता हूँ। इन सबका पूर्व आदि दिशाओंमें पूजन करना चाहिये—'**ह्रीं नले बहुतुण्डे च खगे ह्रीं खेचरे ज्वालिनि ज्वल ख खे छ च्छे शवविभीषणे चच्छे चण्डे छेदनि करालि ख खे छे खे खरहाङ्गी ह्रीं क्षे वक्षे कपिले ह क्षे हूं कूं तेजोवति रौद्रि मातः ह्रीं फे वे फे फे वक्त्रे वरी फे पुटि पुटि घोरे हूं फट् ब्रह्मवेतालि मध्ये।**' (यह दूती-मन्त्र है)॥ ८-९॥

अब पुनः त्वरिताके गुह्याङ्गों तथा तत्त्वोंका वर्णन करता हूँ। '**ह्रीं हूं हः हृदयाय नमः।**' इसका हृदयमें न्यास करे। '**ह्रीं हः शिरसे स्वाहा।**' ऐसा कहकर सिरमें न्यास करे। '**फां ज्वल ज्वल शिखायै वषट्।**' कहकर शिखामें, '**इले हं हूं कवचाय हुम्।**' कहकर दोनों भुजाओंमें '**क्रों क्षुं श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्।**' बोलकर नेत्रोंमें तथा ललाटके मध्यभागमें न्यास करे। '**क्षीं अस्त्राय फट्।**' कहकर दोनों हाथोंसे ताली बजाये अथवा

'हुं खे वच्छे क्षे ह्रीं क्षें हुं अस्त्राय फट्।' कहकर ताली बजानी चाहिये॥ १०—१२॥

मध्यभागमें 'हुं स्वाहा।' लिखे तथा पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः 'खे सदाशिवे, व ईशः, छे मनोन्मनी, मक्षे तार्क्षः, ह्रीं माधवः, क्षें ब्रह्मा, हुम् आदित्यः, दारुणं फट्'का उल्लेख एवं पूजन करे। ये आठ दिशाओंमें पूजनीय देवता बताये गये हैं॥ १३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'त्वरिता-पूजा आदिकी विधिका वर्णन' नामक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४७॥

एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

संग्राम-विजयदायक सूर्य-पूजनका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द! (अब मैं संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके पूजनकी विधि बताता हूँ।) '**ॐ डे ख ख्यां सूर्याय संग्रामविजयाय नमः।**'—यह मन्त्र है। **ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रों ह्रः**—ये संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके छः अङ्ग हैं, अर्थात् इनके द्वारा षडङ्गन्यास करना चाहिये। यथा—'**ह्रां हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रूं शिखायै वषट्। ह्रें कवचाय हुम्। ह्रों नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः अस्त्राय फट्**'॥ १-२॥

'**ॐ हं खं खखोल्काय स्वाहा।**'—यह पूजाके लिये मन्त्र है। '**स्फूं हुं हुं फूं ॐ ह्रों क्रेम्**'—ये छः अङ्गन्यासके बीज-मन्त्र हैं। पीठस्थानमें प्रभूत, विमल, सार, आराध्य एवं परम सुखका पूजन करे। पीठके पायों तथा बीचकी चार दिशाओंमें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य—इन आठोंकी पूजा करे। तदनन्तर अनन्तासन, सिंहासन एवं पद्मासनकी पूजा करे। इसके बाद कमलकी कर्णिका एवं केसरोंकी, वहीं सूर्यमण्डल, सोममण्डल तथा अग्निमण्डलकी पूजा करे। फिर दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा नवीं सर्वतोमुखी—इन नौ शक्तियोंका पूजन करे॥ ३—६॥

तत्पश्चात् सत्त्व, रज और तमका, प्रकृति और पुरुषका, आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्माका पूजन करे। ये सभी अनुस्वारयुक्त आदि अक्षरसे युक्त होकर अन्तमें 'नमः' के साथ चतुर्थ्यन्त होनेपर पूजाके मन्त्र हो जाते हैं। यथा—'**सं सत्त्वाय नमः। अं अन्तरात्मने नमः।**' इत्यादि। इसी तरह उषा, प्रभा, संध्या, साया, माया, बला, बिन्दु, विष्णु तथा आठ द्वारपालोंकी पूजा करे। इसके बाद गन्ध आदिसे सूर्य, चण्ड और प्रचण्डका पूजन करे। इस प्रकार पूजा तथा जप, होम आदि करनेसे युद्ध आदिमें विजय प्राप्त होती है॥ ७—९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'संग्राम-विजयदायक सूर्यदेवकी पूजाका वर्णन' नामक एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४८॥

एक सौ उनचासवाँ अध्याय

होमके प्रकार-भेद एवं विविध फलोंका कथन

भगवान् महेश्वरने कहा—देवि! होमसे युद्धमें विजय, राज्यप्राप्ति और विघ्नोंका विनाश होता है। पहले 'कृच्छ्रव्रत' करके देहशुद्धि करे। तदनन्तर सौ प्राणायाम करके शरीरका शोधन करे। फिर जलके भीतर गायत्री-जप करके सोलह बार प्राणायाम करे। पूर्वाह्णकालमें अग्निमें

आहुति समर्पित करे। भिक्षाद्वारा प्राप्त यवनिर्मित भोज्यपदार्थ, फल, मूल, दुग्ध, सत्तू और घृतका आहार यज्ञकालमें विहित है॥ १—३॥

पार्वति! लक्ष-होमकी समाप्ति-पर्यन्त एक समय भोजन करे। लक्ष-होमकी पूर्णाहुतिके पश्चात् गौ, वस्त्र एवं सुवर्णकी दक्षिणा दे। सभी प्रकारके उत्पातोंके प्रकट होनेपर पाँच या दस ऋत्विजोंसे पूर्वोक्त यज्ञ करावे। इस लोकमें ऐसा कोई उत्पात नहीं है, जो इससे शान्त न हो जाय। इससे बढ़कर परम मङ्गलकारक कोई वस्तु नहीं है। जो नरेश पूर्वोक्त विधिसे ऋत्विजोंद्वारा कोटि-होम कराता है, युद्धमें उसके सम्मुख शत्रु कभी नहीं ठहर सकते हैं। उसके राज्यमें अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषकोपद्रव, टिड्डीदल, शुकोपद्रव एवं भूत-राक्षस तथा युद्धमें समस्त शत्रु शान्त हो जाते हैं। कोटि-होममें बीस, सौ अथवा सहस्र ब्राह्मणोंका वरण करे। इससे यजमान इच्छानुकूल धन-वैभवकी प्राप्ति करता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य इस कोटिहोमात्मक यज्ञका अनुष्ठान करता है, वह जिस पदार्थकी इच्छा करता है, उसको प्राप्त करता है। वह सशरीर स्वर्गलोकको जाता है॥ ४—९½॥

गायत्री-मन्त्र, ग्रह-सम्बन्धी मन्त्र, कूष्माण्ड-मन्त्र, जातवेदा—अग्नि-सम्बन्धी अथवा ऐन्द्र, वारुण, वायव्य, याम्य, आग्नेय, वैष्णव, शाक्त, शैव एवं सूर्यदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंसे होम-पूजन आदिका विधान है। अयुत-होमसे अल्प सिद्धि होती है। लक्ष-होम सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है। कोटि-होम समस्त क्लेशोंका नाश करनेवाला और सम्पूर्ण पदार्थोंको प्रदान करनेवाला है। यव, धान्य, तिल, दुग्ध, घृत, कुश, प्रसातिका (छोटे दानेका चावल), कमल, खस, बेल और आम्रपत्र होमके योग्य माने गये हैं। कोटि-होममें आठ हाथ और लक्ष-होममें चार हाथ गहरा कुण्ड बनावे। अयुत-होम, लक्ष-होम और कोटि-होममें घृतका हवन करना चाहिये॥ १०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णवके अन्तर्गत अयुत-लक्ष-कोटिहोम' नामक एक सौ उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४९॥

एक सौ पचासवाँ अध्याय

मन्वन्तरोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं मन्वन्तरोंका वर्णन करूँगा। सबसे प्रथम स्वायम्भुव मनु हुए हैं। उनके आग्नीध्र आदि पुत्र थे। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें यम नामक देवता, और्व आदि सप्तर्षि तथा शतक्रतु इन्द्र थे। दूसरे मन्वन्तरका नाम था—स्वारोचिष; उसमें पारावत और तुषित नामधारी देवता थे। स्वरोचिष मनुके चैत्र और किम्पुरुष आदि पुत्र थे। उस समय विपश्चित् नामक इन्द्र तथा उर्जस्वन्त आदि द्विज (सप्तर्षि) थे। तीसरे मनुका नाम उत्तम हुआ; उनके पुत्र अज आदि थे। उनके समयमें सुशान्ति नामक इन्द्र, सुधामा आदि देवता तथा वसिष्ठके पुत्र सप्तर्षि थे। चौथे मनु तामस नामसे विख्यात हुए; उस समय स्वरूप आदि देवता, शिखरी इन्द्र, ज्योतिर्होम आदि ब्राह्मण (सप्तर्षि) थे तथा उनके ख्याति आदि नौ पुत्र हुए॥ १—५॥

रैवत नामक पाँचवें मन्वन्तरमें वितथ इन्द्र, अमिताभ देवता, हिरण्यरोमा आदि मुनि तथा बलबन्ध आदि पुत्र थे। छठे चाक्षुष मन्वन्तरमें मनोजव नामक इन्द्र और स्वाति आदि देवता थे। सुमेधा आदि महर्षि और पुरु आदि मनु-पुत्र थे। तत्पश्चात् सातवें मन्वन्तरमें सूर्यपुत्र श्राद्धदेव मनु हुए। इनके समयमें आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देवता; पुरन्दर नामक इन्द्र; वसिष्ठ, काश्यप, अत्रि,

जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र तथा भरद्वाज सप्तर्षि हैं। यह वर्तमान मन्वन्तरका वर्णन है। वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु आदि पुत्र थे। इन सभी मन्वन्तरोंमें भगवान् श्रीहरिके अंशावतार हुए हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् 'मानस' के नामसे प्रकट हुए थे। तदनन्तर शेष छः मन्वन्तरोंमें क्रमशः अजित, सत्य, हरि, देववर, वैकुण्ठ और वामन रूपमें श्रीहरिका प्रादुर्भाव हुआ। छायाके गर्भसे उत्पन्न सूर्यनन्दन सावर्णि आठवें मनु होंगे॥ ६—११॥

वे अपने पूर्वज (ज्येष्ठ भ्राता) श्राद्धदेवके समान वर्णवाले हैं, इसलिये 'सावर्णि' नामसे विख्यात होंगे। उनके समयमें सुतपा आदि देवता, परम तेजस्वी अश्वत्थामा आदि सप्तर्षि, बलि इन्द्र और विरज आदि मनुपुत्र होंगे। नवें मनुका नाम दक्षसावर्णि होगा। उस समय पार आदि देवता होंगे। उन देवताओंके इन्द्रकी 'अद्भुत' संज्ञा होगी। उनके समयमें सवन आदि श्रेष्ठ ब्राह्मण सप्तर्षि होंगे और 'धृतकेतु' आदि मनुपुत्र। तत्पश्चात् दसवें मनु ब्रह्मसावर्णिके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उस समय सुख आदि देवगण, शान्ति इन्द्र, हविष्य आदि मुनि तथा सुक्षेत्र आदि मनुपुत्र होंगे॥ १२—१५॥

तदनन्तर धर्मसावर्णि नामक ग्यारहवें मनुका अधिकार होगा। उस समय विहङ्ग आदि देवता, गण इन्द्र, निश्चर आदि मुनि तथा सर्वत्रग आदि मनुपुत्र होंगे। इसके बाद बारहवें मनु रुद्रसावर्णिके नामसे विख्यात होंगे। उनके समयमें ऋतधामा नामक इन्द्र और हरित आदि देवता होंगे। तपस्य आदि सप्तर्षि और देववान् आदि मनुपुत्र होंगे। तेरहवें मनुका नाम होगा रौच्य। उस समय सूत्रामणि आदि देवता तथा दिवस्पति इन्द्र होंगे, जो दानव-दैत्य आदिका मर्दन करनेवाले होंगे। रौच्य मन्वन्तरमें निर्मोह आदि सप्तर्षि तथा चित्रसेन आदि मनुपुत्र होंगे। चौदहवें मनु भौत्यके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उनके समयमें शुचि इन्द्र, चाक्षुष आदि देवता तथा अग्निबाहु आदि सप्तर्षि होंगे। चौदहवें मनुके पुत्र ऊरु आदिके नामसे विख्यात होंगे॥ १६—२०½॥

सप्तर्षि द्विजगण भूमण्डलपर वेदोंका प्रचार करते हैं, देवगण यज्ञ-भागके भोक्ता होते हैं तथा मनुपुत्र इस पृथ्वीका पालन करते हैं। ब्रह्मन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। मनु, देवता तथा इन्द्र आदि भी उतनी ही बार होते हैं। प्रत्येक द्वापरके अन्तमें व्यासरूपधारी श्रीहरि वेदका विभाग करते हैं। आदि वेद एक ही था, जिसमें चार चरण और एक लाख ऋचाएँ थीं। पहले एक ही यजुर्वेद था, उसे मुनिवर व्यासजीने चार भागोंमें विभक्त कर दिया। उन्होंने अध्वर्युका काम यजुर्भागसे, होताका कार्य ऋग्वेदकी ऋचाओंसे, उद्गाताका कर्म साम-मन्त्रोंसे तथा ब्रह्माका कार्य अथर्ववेदके मन्त्रोंसे होना निश्चित किया। व्यासके प्रथम शिष्य पैल थे, जो ऋग्वेदके पारंगत पण्डित हुए॥ २१—२५॥

इन्द्रने प्रमति और बाष्कलको संहिता प्रदान की। बाष्कलने भी बौध्य आदिको चार भागोंमें विभक्त अपनी संहिता दी। व्यासजीके शिष्य परम बुद्धिमान् वैशम्पायनने यजुर्वेदरूप वृक्षकी सत्ताईस शाखाएँ निर्माण कीं। काण्व और वाजसनेय आदि शाखाओंको याज्ञवल्क्य आदिने सम्पादित किया है। व्यास-शिष्य जैमिनिने सामवेदरूपी वृक्षकी शाखाएँ बनायीं। फिर सुमन्तु और सुकर्माने एक-एक संहिता रची। सुकर्माने अपने गुरुसे एक हजार संहिताओंको ग्रहण किया। व्यास-शिष्य सुमन्तुने अथर्ववेदकी भी एक शाखा बनायी तथा उन्होंने पैप्पल आदि अपने सहस्रों शिष्योंको उसका अध्ययन कराया। भगवान् व्यासदेवजीकी कृपासे सूतने पुराण-संहिताका विस्तार किया॥ २६—३१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मन्वन्तरोंका वर्णन' नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५०॥

एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय

वर्ण और आश्रमके सामान्य धर्म, वर्णों तथा विलोमज जातियोंके विशेष धर्म

अग्निदेव कहते हैं—मनु आदि राजर्षि जिन धर्मोंका अनुष्ठान करके भोग और मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं, उनका वरुण देवताने पुष्करको उपदेश किया था और पुष्करने श्रीपरशुरामजीसे उनका वर्णन किया था॥ १॥

पुष्करने कहा—परशुरामजी! मैं वर्ण, आश्रम तथा इनसे भिन्न धर्मोंका आपसे वर्णन करूँगा। वे धर्म सब कामनाओंको देनेवाले हैं। मनु आदि धर्मात्माओंने भी उनका उपदेश किया है तथा वे भगवान् वासुदेव आदिको संतोष प्रदान करनेवाले हैं। भृगुश्रेष्ठ! अहिंसा, सत्य-भाषण, दया, सम्पूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह, तीर्थोंका अनुसरण, दान, ब्रह्मचर्य, मत्सरताका अभाव, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी सेवा, सब धर्मोंका श्रवण, पितरोंका पूजन, मनुष्योंके स्वामी श्रीभगवान्‌में सदा भक्ति रखना, उत्तम शास्त्रोंका अवलोकन करना, क्रूरताका अभाव, सहनशीलता तथा आस्तिकता (ईश्वर और परलोकपर विश्वास रखना)—ये वर्ण और आश्रम दोनोंके लिये 'सामान्य धर्म' बताये गये हैं। जो इसके विपरीत है, वही 'अधर्म' है। यज्ञ करना और कराना, दान देना, वेद पढ़ानेका कार्य करना, उत्तम प्रतिग्रह लेना तथा स्वाध्याय करना—ये ब्राह्मणके कर्म हैं। दान देना, वेदोंका अध्ययन करना और विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान करना—ये क्षत्रिय और वैश्यके सामान्य कर्म हैं। प्रजाका पालन करना और दुष्टोंको दण्ड देना—ये क्षत्रियके विशेष धर्म हैं। खेती, गोरक्षा और व्यापार—ये वैश्यके विशेष कर्म बताये गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन द्विजोंकी सेवा तथा सब प्रकारकी शिल्प-रचना—ये शूद्रके कर्म हैं॥ २—९॥

मौञ्जी-बन्धन (यज्ञोपवीत-संस्कार) होनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-बालकका द्वितीय जन्म होता है; इसलिये वे 'द्विज' कहलाते हैं। यदि अनुलोम-क्रमसे वर्णोंकी उत्पत्ति हो तो माताके समान बालककी जाति मानी गयी है॥ १०॥

विलोम-क्रमसे अर्थात् शूद्रके वीर्यसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मणीका पुत्र 'चाण्डाल' कहलाता है, क्षत्रियके वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला ब्राह्मणीका पुत्र 'सूत' कहा गया है और वैश्यके वीर्यसे उत्पन्न होनेपर उसकी 'वैदेहक' संज्ञा होती है। क्षत्रिय जातिकी स्त्रीके पेटसे शूद्रके द्वारा उत्पन्न हुआ विलोमज पुत्र 'पुक्कस' कहलाता है। वैश्य और शूद्रके वीर्यसे उत्पन्न होनेपर क्षत्रियाके पुत्रकी क्रमशः 'मागध' और 'अयोगव' संज्ञा होती है। वैश्य जातिकी स्त्रीके गर्भसे शूद्र एवं विलोमज जातियोंद्वारा उत्पन्न विलोमज संतानोंके हजारों भेद हैं। इन सबका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध समान जातिवालोंके साथ ही होना चाहिये; अपनेसे ऊँची और नीची जातिके लोगोंके साथ नहीं॥ ११—१३॥

वधके योग्य प्राणियोंका वध करना—यह चाण्डालका कर्म बताया गया है। स्त्रियोंके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंके निर्माणसे जीविका चलाना तथा स्त्रियोंकी रक्षा करना—यह 'वैदेहक' का कार्य है। सूतोंका कार्य है—घोड़ोंका सारथिपना, 'पुक्कस' व्याध-वृत्तिसे रहते हैं तथा 'मागध' का कार्य है—स्तुति करना, प्रशंसाके गीत गाना। 'अयोगव'का कर्म है—रङ्गभूमिमें उतरना और शिल्पके द्वारा जीविका चलाना। 'चाण्डाल'को गाँवके बाहर रहना और मुर्दोंसे उतारे हुए वस्त्रको धारण करना चाहिये। चाण्डालको दूसरे वर्णके लोगोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणों तथा गौओंकी रक्षाके लिये प्राण त्यागना अथवा स्त्रियों

एवं बालकोंकी रक्षाके लिये देह-त्याग करना वर्ण-बाह्य चाण्डाल आदि जातियोंकी सिद्धिका (उनकी आध्यात्मिक उन्नति)-का कारण माना गया है। वर्णसंकर व्यक्तियोंकी जाति उनके पिता-माता तथा जातिसिद्ध कर्मोंसे जाननी चाहिये॥ १४—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वर्णान्तर-धर्मोंका वर्णन' नामक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५१॥

एक सौ बावनवाँ अध्याय

गृहस्थकी जीविका

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! ब्राह्मण अपने शास्त्रोक्त कर्मसे ही जीविका चलावे; क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके धर्मसे जीवन-निर्वाह न करे। आपत्तिकालमें क्षत्रिय और वैश्यकी वृत्ति ग्रहण कर ले; किंतु शूद्र-वृत्तिसे कभी गुजारा न करे। द्विज खेती, व्यापार, गोपालन तथा कुसीद (सूद लेना)—इन वृत्तियोंका अनुष्ठान करे; परंतु वह गोरस, गुड़, नमक, लाक्षा और मांस न बेचे। किसान लोग धरतीको कोड़ने-जोतनेके द्वारा जो कीड़े और चींटी आदिकी हत्या कर डालते हैं और सोहनीके द्वारा जो पौधोंको नष्ट कर डालते हैं, उससे यज्ञ और देवपूजा करके मुक्त होते हैं॥ १—३॥

आठ बैलोंका हल धर्मानुकूल माना गया है। जीविका चलानेवालोंका हल छः बैलोंका, निर्दयी हत्यारोंका हल चार बैलोंका तथा धर्मका नाश करनेवाले मनुष्योंका हल दो बैलोंका माना गया है। ब्राह्मण ऋत[1] और अमृतसे[2] अथवा मृत[3] और प्रमृतसे[4] या सत्यानृत[5] वृत्तिसे जीविका चलावे। श्वान-वृत्तिसे[6] कभी जीवन-निर्वाह न करे॥ ४-५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गृहस्थ-जीविकाका वर्णन' नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५२॥

एक सौ तिरपनवाँ अध्याय

संस्कारोंका वर्णन और ब्रह्मचारीके धर्म

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! अब मैं आश्रमी पुरुषोंके धर्मका वर्णन करूँगा; सुनो! यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। स्त्रियोंके ऋतुधर्मकी सोलह रात्रियाँ होती हैं, उनमें पहलेकी तीन रातें निन्दित हैं। शेष रातोंमें जो युग्म अर्थात् चौथी, छठी, आठवीं और दसवीं आदि रात्रियाँ हैं, उनमें ही पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष स्त्री-समागम करे। यह 'गर्भाधान-संस्कार' कहलाता है। 'गर्भ' रह गया—इस बातका स्पष्टरूपसे ज्ञान हो जानेपर गर्भस्थ शिशुके हिलने-डुलनेसे पहले ही 'पुंसवन-संस्कार' होता है। तत्पश्चात् छठे या आठवें मासमें 'सीमन्तोन्नयन' किया जाता है। उस दिन पुंल्लिङ्ग नामवाले नक्षत्रका होना शुभ है। बालकका जन्म होनेपर नाल काटनेके पहले

---

१. खेत कट जानेपर बाल बीनना अथवा अनाजके एक-एक दानेको चुन-चुनकर लाना और उसीसे जीविका चलाना 'ऋत' कहलाता है। २. बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, वह 'अमृत' है। ३. माँगी हुई भीखको 'मृत' कहते हैं। ४. खेतीका नाम 'प्रमृत' है। ५. व्यापारको 'सत्यानृत' कहते हैं। ६. नौकरीका नाम 'श्वान-वृत्ति' है।

ही विद्वान् पुरुषोंको उसका 'जातकर्म-संस्कार' करना चाहिये। सूतक निवृत्त होनेपर 'नामकरण-संस्कार' का विधान है। ब्राह्मणके नामके अन्तमें 'शर्मा' और क्षत्रियके नामके अन्तमें 'वर्मा' होना चाहिये। वैश्य और शूद्रके नामोंके अन्तमें क्रमशः 'गुप्त' और 'दास' पदका होना उत्तम माना गया है। उक्त संस्कारके समय पत्नी स्वामीकी गोदमें पुत्रको दे और कहे—'यह आपका पुत्र है'॥ १—५॥

फिर कुलाचारके अनुरूप 'चूडाकरण' करे। ब्राह्मण-बालकका 'उपनयन-संस्कार' गर्भ अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें होना चाहिये। गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रिय बालकका तथा गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्य-बालकका उपनयन करना चाहिये। ब्राह्मण-बालकका उपनयन सोलहवें, क्षत्रिय-बालकका बाईसवें और वैश्य-बालकका चौबीसवें वर्षसे आगे नहीं जाना चाहिये। तीनों वर्णोंके लिये क्रमशः मूँज, प्रत्यञ्चा तथा वल्कलकी मेखला बतायी गयी है। इसी प्रकार तीनों वर्णोंके ब्रह्मचारियोंके लिये क्रमशः मृग, व्याघ्र तथा बकरेके चर्म और पलाश, पीपल तथा बेलके दण्ड धारण करने योग्य बताये गये हैं। ब्राह्मणका दण्ड उसके केशतक, क्षत्रियका ललाटतक और वैश्यका मुखतक लंबा होना चाहिये। इस प्रकार क्रमशः दण्डोंकी लंबाई बतायी गयी है। ये दण्ड टेढ़े-मेढ़े न हों। इनके छिलके मौजूद हों तथा ये आगमें जलाये न गये हों॥ ६—९॥

उक्त तीनों वर्णोंके लिये वस्त्र और यज्ञोपवीत क्रमशः कपास (रुई), रेशम तथा ऊनके होने चाहिये। ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षा माँगते समय वाक्यके आदिमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग करे। [जैसे माताके पास जाकर कहे—'**भवति भिक्षां मे देहि मातः।**' पूज्य माताजी! मुझे भिक्षा दें।] इसी प्रकार क्षत्रिय ब्रह्मचारी वाक्यके मध्यमें तथा वैश्य ब्रह्मचारी वाक्यके अन्तमें '**भवत्**' शब्दका प्रयोग करे। (यथा—**क्षत्रिय—भिक्षां भवति मे देहि।** वैश्य —**भिक्षां मे देहि भवति।**) पहले वहीं भिक्षा माँगे, जहाँ भिक्षा अवश्य प्राप्त होनेकी सम्भावना हो। स्त्रियोंके अन्य सभी संस्कार बिना मन्त्रके होने चाहिये; केवल विवाह-संस्कार ही मन्त्रोच्चारणपूर्वक होता है। गुरुको चाहिये कि वह शिष्यका उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार करके पहले शौचाचार, सदाचार, अग्निहोत्र तथा संध्योपासनाकी शिक्षा दे॥ १०—१२॥

जो पूर्वकी ओर मुँह करके भोजन करता है, वह आयुष्य भोगता है, दक्षिणकी ओर मुँह करके खानेवाला यशका, पश्चिमाभिमुख होकर भोजन करनेवाला लक्ष्मी (धन)-का तथा उत्तरकी ओर मुँह करके अन्न ग्रहण करनेवाला पुरुष सत्यका उपभोग करता है। ब्रह्मचारी प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल अग्निहोत्र करे। अपवित्र वस्तुका होम निषिद्ध है। होमके समय हाथकी अङ्गुलियोंको परस्पर सटाये रहे। मधु, मांस, मनुष्योंके साथ विवाद, गाना और नाचना आदि छोड़ दे। हिंसा, परायी निन्दा तथा विशेषतः अश्लील-चर्चा (गाली-गलौज आदि)-का त्याग करे। दण्ड आदि धारण किये रहे। यदि वह टूट जाय तो जलमें उसका विसर्जन कर दे और नवीन दण्ड धारण करे। वेदोंका अध्ययन पूरा करके गुरुको दक्षिणा देनेके पश्चात् व्रतान्त-स्नान करे; अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर जीवनभर गुरुकुलमें ही निवास करता रहे॥ १३—१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ब्रह्मचर्याश्रम-वर्णन' नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५३॥

एक सौ चौवनवाँ अध्याय

विवाहविषयक बातें

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! ब्राह्मण अपनी कामनाके अनुसार चारों वर्णोंकी कन्याओंसे विवाह कर सकता है, क्षत्रिय तीनसे, वैश्य दोसे तथा शूद्र एक ही स्त्रीसे विवाहका अधिकारी है। जो अपने समान वर्णकी न हो, ऐसी स्त्रीके साथ किसी भी धार्मिक कृत्यका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। अपने समान वर्णकी कन्याओंसे विवाह करते समय पतिको उनका हाथ पकड़ना चाहिये। यदि क्षत्रिय-कन्याका विवाह ब्राह्मणसे होता हो तो वह ब्राह्मणके हाथमें हाथ न देकर उसके द्वारा पकड़े हुए बाणका अग्रभाग अपने हाथसे पकड़े। इसी प्रकार वैश्य-कन्या यदि ब्राह्मण अथवा क्षत्रियसे ब्याही जाती हो तो वह वरके हाथमें रखा हुआ चाबुक पकड़े और शूद्र-कन्या वस्त्रका छोर ग्रहण करे। एक ही बार कन्याका दान देना चाहिये। जो उसका अपहरण करता है, वह चोरके समान दण्ड पानेका अधिकारी है॥ १—३॥

जो संतान बेचनेमें आसक्त हो जाता है, उसका पापसे कभी उद्धार नहीं होता। कन्यादान, शचीयोग (शचीकी पूजा), विवाह और चतुर्थीकर्म—इन चार कर्मोंका नाम 'विवाह' है। (मनोनीत) पतिके लापता होने, मरने तथा संन्यासी, नपुंसक और पतित होनेपर—इन पाँच प्रकारकी आपत्तियोंके समय (वाग्दत्ता) स्त्रियोंके लिये दूसरा पति करनेका विधान है। पतिके मरनेपर देवरको कन्या देनी चाहिये। वह न हो तो किसी दूसरेको इच्छानुसार देनी चाहिये। वर अथवा कन्याका वरण करनेके लिये तीनों पूर्वा, कृत्तिका, स्वाती, तीनों उत्तरा और रोहिणी—ये नक्षत्र सदा शुभ माने गये हैं॥ ४—७॥

परशुराम! अपने समान गोत्र तथा समान प्रवरमें उत्पन्न हुई कन्याका वरण न करे। पितासे ऊपरकी सात पीढ़ियोंके पहले तथा मातासे पाँच पीढ़ियोंके बादकी ही परम्परामें उसका जन्म होना चाहिये। उत्तम कुल तथा अच्छे स्वभावके सदाचारी वरको घरपर बुलाकर उसे कन्याका दान देना 'ब्राह्मविवाह' कहलाता है। उससे उत्पन्न हुआ बालक उक्त कन्यादानजनित पुण्यके प्रभावसे अपने पूर्वजोंका सदाके लिये उद्धार कर देता है। वरसे एक गाय और एक बैल लेकर जो कन्यादान किया जाता है, उसे 'आर्ष-विवाह' कहते हैं। जब किसीके माँगनेपर उसे कन्या दी जाती है तो वह 'प्राजापत्य-विवाह' कहलाता है; इससे धर्मकी सिद्धि होती है। कीमत लेकर कन्या देना 'आसुर-विवाह' है; यह नीच श्रेणीका कृत्य है। वर और कन्या जब स्वेच्छापूर्वक एक-दूसरेको स्वीकार करते हैं तो उसे 'गान्धर्व-विवाह' कहते हैं। युद्धके द्वारा कन्याके हर लेनेसे 'राक्षस-विवाह' कहलाता है तथा कन्याको धोखा देकर उड़ा लेना 'पैशाच-विवाह' माना गया है॥ ८—११॥

विवाहके दिन कुम्हारकी मिट्टीसे शचीकी प्रतिमा बनाये और जलाशयके तटपर उसकी गाजे-बाजेके साथ पूजा कराकर कन्याको घर ले जाना चाहिये। आषाढ़से कार्तिकतक, जब भगवान् विष्णु शयन करते हों, विवाह नहीं करना चाहिये। पौष और चैत्रमासमें भी विवाह निषिद्ध है। मङ्गलके दिन तथा रिक्ता एवं भद्रा तिथियोंमें भी विवाह मना है। जब बृहस्पति और शुक्र अस्त हों, चन्द्रमापर ग्रहण लगनेवाला हो, लग्न-स्थानमें सूर्य, शनैश्चर तथा मङ्गल हों और व्यतीपात दोष आ पड़ा हो तो उस समय भी विवाह नहीं करना चाहिये। मृगशिरा, मघा, स्वाती, हस्त, रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, अनुराधा तथा

रेवती—ये विवाहके नक्षत्र हैं॥ १२—१५॥

पुरुषवाची लग्न तथा उसका नवमांश शुभ होता है। लग्नसे तीसरे, छठे, दसवें, ग्यारहवें तथा आठवें स्थानमें सूर्य, शनैश्चर और बुध हों तो शुभ है। आठवें स्थानमें मङ्गलका होना अशुभ है। शेष ग्रह सातवें, बारहवें तथा आठवें घरमें हों तो शुभकारक होते हैं। इनमें भी छठे स्थानका शुक्र उत्तम नहीं होता। चतुर्थी-कर्म भी वैवाहिक नक्षत्रमें ही करना चाहिये। उसमें लग्न तथा चौथे आदि स्थानोंमें ग्रह न रहें तो उत्तम है। पर्वका दिन छोड़कर अन्य समयमें ही स्त्री-समागम करे। इससे सती (या शची) देवीके आशीर्वादसे सदा प्रसन्नता प्राप्त होती है॥ १६—१९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विवाहभेद-कथन' नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५४॥

एक सौ पचपनवाँ अध्याय

आचारका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! प्रतिदिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर श्रीविष्णु आदि देवताओंका स्मरण करे। दिनमें उत्तरकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये, रातमें दक्षिणाभिमुख होकर करना उचित है और दोनों संध्याओंमें दिनकी ही भाँति उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। मार्ग आदिपर, जलमें तथा गलीमें भी कभी मलादिका त्याग न करे। सदा तिनकोंसे पृथ्वीको ढककर उसके ऊपर मल-त्याग करे। मिट्टीसे हाथ-पैर आदिकी भलीभाँति शुद्धि करके, कुल्ला करनेके पश्चात्, दन्तधावन करे। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलकर्षण तथा क्रिया-स्नान—ये छः प्रकारके स्नान बताये गये हैं। जो स्नान नहीं करता, उसके सब कर्म निष्फल होते हैं; इसलिये प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करना चाहिये॥ १—४॥

कुएँसे निकाले हुए जलकी अपेक्षा भूमिपर स्थित जल पवित्र होता है। उससे पवित्र झरनेका जल, उससे भी पवित्र सरोवरका जल तथा उससे भी पवित्र नदीका जल बताया जाता है। तीर्थका जल उससे भी पवित्र होता है और गङ्गाका जल तो सबसे पवित्र माना गया है। पहले जलाशयमें गोता लगाकर शरीरका मैल धो डाले। फिर आचमन करके जलसे मार्जन करे। '**हिरण्यवर्णाः०**' आदि तीन ऋचाएँ, '**शं नो देवीरभिष्टये०**' (यजु० ३६। १२) यह मन्त्र, '**आपो हि ष्ठा०**' (यजु० ३६। १४—१६) आदि तीन ऋचाएँ तथा '**इदमापः०**' (यजु० ६। १७) यह मन्त्र—इन सबसे मार्जन किया जाता है। तत्पश्चात् जलाशयमें डुबकी लगाकर जलके भीतर ही जप करे। उसमें अघमर्षण सूक्त अथवा '**द्रुपदादिव०**' (यजु० २०। २०) मन्त्र, या '**युञ्जते मनः०**' (यजु० ५। १४) आदि सूक्त अथवा '**सहस्रशीर्षा०**' (यजु० अ० ३१) आदि पुरुष-सूक्तका जप करना चाहिये। विशेषतः गायत्रीका जप करना उचित है। अघमर्षणसूक्तमें भाववृत्त देवता और अघमर्षण ऋषि हैं। उसका छन्द अनुष्टुप् है। उसके द्वारा भाववृत्त (भक्तिपूर्वक वरण किये हुए) श्रीहरिका स्मरण होता है। तदनन्तर वस्त्र बदलकर भीगी धोती निचोड़नेके पहले ही देवता और पितरोंका तर्पण करे॥ ५—११॥

फिर पुरुषसूक्त (यजु० अ० ३१)-के द्वारा जलाञ्जलि दे। उसके बाद अग्निहोत्र करे। तत्पश्चात् अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर योगक्षेमकी

सिद्धिके लिये परमेश्वरकी शरण जाय। आसन, शय्या, सवारी, स्त्री, संतान और कमण्डलु—ये वस्तुएँ अपनी ही हों, तभी अपने लिये शुद्ध मानी गयी हैं; दूसरोंकी उपर्युक्त वस्तुएँ अपने लिये शुद्ध नहीं होतीं। राह चलते समय यदि सामनेसे कोई ऐसा पुरुष आ जाय, जो भारसे लदा हुआ कष्ट पा रहा हो, तो स्वयं हटकर उसे जानेके लिये मार्ग दे देना चाहिये। इसी प्रकार गर्भिणी स्त्री तथा गुरुजनोंको भी मार्ग देना चाहिये॥ १२—१४॥

उदय और अस्तके समय सूर्यकी ओर न देखे। जलमें भी उनके प्रतिबिम्बकी ओर दृष्टिपात न करे। नंगी स्त्री, कुआँ, हत्याके स्थान और पापियोंको न देखे। कपास (रुई), हड्डी, भस्म तथा घृणित वस्तुओंको न लाँघे। दूसरेके अन्तःपुर और खजानाघरमें प्रवेश न करे। दूसरेके दूतका काम न करे। टूटी-फूटी नाव, वृक्ष और पर्वतपर न चढ़े। अर्थ, गृह और शास्त्रोंके विषयमें कौतूहल रखे। ढेला फोड़ने, तिनके तोड़ने और नख चबानेवाला मनुष्य नष्ट हो जाता है। मुख आदि अङ्गोंको न बजावे। रातको दीपक लिये बिना कहीं न जाय। दरवाजेके सिवा और किसी मार्गसे घरमें प्रवेश न करे। मुँहका रंग न बिगाड़े। किसीकी बातचीतमें बाधा न डाले तथा अपने वस्त्रको दूसरेके वस्त्रसे न बदले। 'कल्याण हो, कल्याण हो'—यही बात मुँहसे निकाले; कभी किसीके अनिष्ट होनेकी बात न कहे। पलाशके आसनको व्यवहारमें न लावे। देवता आदिकी छायासे हटकर चले॥ १५—२०॥

दो पूज्य पुरुषोंके बीचसे होकर न निकले। जूठे मुँह रहकर तारा आदिकी ओर दृष्टि न डाले। एक नदीमें जाकर दूसरी नदीका नाम न ले। दोनों हाथोंसे शरीर न खुजलावे। किसी नदीपर पहुँचनेके बाद देवता और पितरोंका तर्पण किये बिना उसे पार न करे। जलमें मल आदि न फेंके। नंगा होकर न नहाये। योगक्षेमके लिये परमात्माकी शरणमें जाय। मालाको अपने हाथसे न हटाये। गदहे आदिकी धूलसे बचे। नीच पुरुषोंको कष्टमें देखकर कभी उनका उपहास न करे। उनके साथ अनुपयुक्त स्थानपर निवास न करे। वैद्य, राजा और नदीसे हीन देशमें न रहे। जहाँके स्वामी म्लेच्छ, स्त्री तथा बहुत-से मनुष्य हों, उस देशमें भी न निवास करे। रजस्वला आदि तथा पतितोंके साथ बात न करे। सदा भगवान् विष्णुका स्मरण करे। मुँहके ढके बिना न जोरसे हँसे, न जँभाई ले और न छींके ही॥ २१—२५॥

विद्वान् पुरुष स्वामीके तथा अपने अपमानकी बातको गुप्त रखे। इन्द्रियोंके सर्वथा अनुकूल न चले—उन्हें अपने वशमें किये रहे। मल-मूत्रके वेगको न रोके। परशुरामजी! छोटे-से भी रोग या शत्रुकी उपेक्षा न करे। सड़क लाँघकर आनेके बाद सदा आचमन करे। जल और अग्निको धारण न करे। कल्याणमय पूज्य पुरुषके प्रति कभी हुंकार न करे। पैरको पैरसे न दबावे। प्रत्यक्ष या परोक्षमें किसीकी निन्दा न करे। वेद, शास्त्र, राजा, ऋषि और देवताकी निन्दा करना छोड़ दे। स्त्रियोंके प्रति ईर्ष्या न रखे तथा उनका कभी विश्वास भी न करे। धर्मका श्रवण तथा देवताओंसे प्रेम करे। प्रतिदिन धर्म आदिका अनुष्ठान करे। जन्म-नक्षत्रके दिन चन्द्रमा, ब्राह्मण तथा देवता आदिकी पूजा करे। षष्ठी, अष्टमी और चतुर्दशीको तेल या उबटन न लगावे। घरसे दूर जाकर मल-मूत्रका त्याग करे। उत्तम पुरुषोंके साथ कभी वैर-विरोध न करे॥ २६—३१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आचारका वर्णन' नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५५॥

एक सौ छप्पनवाँ अध्याय

द्रव्य-शुद्धि

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! अब द्रव्योंकी शुद्धि बतलाऊँगा। मिट्टीका बर्तन पुनः पकानेसे शुद्ध होता है। किंतु मल-मूत्र आदिसे स्पर्श हो जानेपर वह पुनः पकानेसे भी शुद्ध नहीं होता। सोनेका पात्र यदि अपवित्र वस्तुओंसे छू जाय तो जलसे धोनेपर पवित्र होता है। ताँबेका बर्तन खटाई और जलसे शुद्ध होता है। काँसे और लोहेका बर्तन राखसे मलनेपर पवित्र होता है। मोती आदिकी शुद्धि केवल जलसे धोनेपर ही हो जाती है। जलसे उत्पन्न शङ्ख आदिके बने बर्तनोंकी, सब प्रकारके पत्थरके बने हुए पात्रकी तथा साग, रस्सी, फल एवं मूलकी और बाँस आदिके दलोंसे बनी हुई वस्तुओंकी शुद्धि भी इसी प्रकार जलसे धोनेमात्रसे हो जाती है। यज्ञकर्ममें यज्ञपात्रोंकी शुद्धि केवल दाहिने हाथसे कुशद्वारा मार्जन करनेपर ही हो जाती है। घी या तेलसे चिकने हुए पात्रोंकी शुद्धि गरम जलसे होती है। घरकी शुद्धि झाड़ने-बुहारने और लीपनेसे होती है। शोधन और प्रोक्षण करने (सींचने)-से वस्त्र शुद्ध होता है। रेहकी मिट्टी और जलसे उसका शोधन होता है। यदि बहुत-से वस्त्रोंकी ढेरी ही किसी अस्पृश्य वस्तुसे छू जाय तो उसपर जल छिड़क देनेमात्रसे उसकी शुद्धि मानी गयी है। काठके बने हुए पात्रोंकी शुद्धि काटकर छील देनेसे होती है॥ १—५॥

शय्या आदि संहत वस्तुओंके उच्छिष्ट आदिसे दूषित होनेपर प्रोक्षण (सींचने) मात्रसे उनकी शुद्धि होती है। घी-तेल आदिकी शुद्धि दो कुश-पत्रोंसे उत्पवन करने (उछालने) मात्रसे हो जाती है। शय्या, आसन, सवारी, सूप, छकड़ा, पुआल और लकड़ीकी शुद्धि भी सींचनेसे ही जाननी चाहिये। सींग और दाँतकी बनी हुई वस्तुओंकी शुद्धि पीली सरसों पीसकर लगानेसे होती है। नारियल और तूँबी आदि फलनिर्मित पात्रोंकी शुद्धि गोपुच्छके बालोंद्वारा रगड़नेसे होती है। शङ्ख आदि हड्डीके पात्रोंकी शुद्धि सींगके समान ही पीली सरसोंके लेपसे होती है। गोंद, गुड, नमक, कुसुम्भके फूल, ऊन और कपासकी शुद्धि धूपमें सुखानेसे होती है। नदीका जल सदा शुद्ध रहता है। बाजारमें बेचनेके लिये फैलायी हुई वस्तु भी शुद्ध मानी गयी है॥ ६—९॥

गौके मुँहको छोड़कर अन्य सभी अङ्ग शुद्ध हैं। घोड़े और बकरेके मुँह शुद्ध माने गये हैं। स्त्रियोंका मुख सदा शुद्ध है। दूध दुहनेके समय बछड़ोंका, पेड़से फल गिराते समय पक्षियोंका और शिकार खेलते समय कुत्तोंका मुँह भी शुद्ध माना गया है। भोजन करने, थूकने, सोने, पानी पीने, नहाने, सड़कपर घूमने और वस्त्र पहननेके बाद अवश्य आचमन करना चाहिये। बिलाव घूमने-फिरनेसे ही शुद्ध होता है। रजस्वला स्त्री चौथे दिन शुद्ध होती है। ऋतुस्नाता स्त्री पाँचवें दिन देवता और पितरोंके पूजनकार्यमें सम्मिलित होने योग्य होती है। शौचके बाद पाँच बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें, फिर सात बार दोनों हाथोंमें, एक बार लिङ्गमें तथा पुनः दो-तीन बार हाथोंमें मिट्टी लगाकर धोना चाहिये। यह गृहस्थोंके लिये शौचका विधान है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासियोंके लिये गृहस्थकी अपेक्षा चौगुने शौचका विधान किया गया है॥ १०—१४॥

टसरके कपड़ोंकी शुद्धि बेलके फलके गूदेसे होती है। अर्थात् उसे पानीमें घोलकर उसमें वस्त्रको डुबो दे और फिर साफ पानीसे धो दे। तीसी एवं सन आदिके सूतसे बने हुए कपड़ोंकी शुद्धिके लिये अर्थात् उनमें लगे हुए तेल आदिके

दागको छुड़ानेके लिये पीली सरसोंके चूर्ण या उबटनसे मिश्रित जलके द्वारा धोना चाहिये। मृगचर्म या मृगके रोमोंसे बने हुए आसन आदिकी शुद्धि उसपर जलका छींटा देने मात्रसे बतायी गयी है। फूलों और फलोंकी भी उनपर जल छिड़कने मात्रसे पूर्णतः शुद्धि हो जाती है॥ १५-१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्रव्य-शुद्धिका वर्णन' नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५६॥

एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय

मरणाशौच तथा पिण्डदान एवं दाह-संस्कारकालिक कर्तव्यका कथन

पुष्कर कहते हैं—अब मैं 'प्रेतशुद्धि' तथा 'सूतिकाशुद्धि'का वर्णन करूँगा। सपिण्डोंमें अर्थात् मूल पुरुषकी सातवीं पीढ़ीतककी संतानोंमें मरणाशौच दस दिनतक रहता है। जननाशौच भी इतने ही दिनतक रहता है। परशुरामजी! यह ब्राह्मणोंके लिये अशौचकी बात बतलायी गयी। क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें तथा शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। यहाँ उस शूद्रके लिये कहा गया है, जो अनुलोमज हो अर्थात् जिसका जन्म उच्च जातीय अथवा सजातीय पितासे हुआ हो। स्वामीको अपने घरमें जितने दिनका अशौच लगता है, सेवकको भी उतने ही दिनोंका लगता है। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंका भी जननाशौच दस दिनका ही होता है॥ १—३॥

परशुरामजी! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इसी क्रमसे शुद्ध होते हैं। (किसी-किसीके मतमें) वैश्य तथा शूद्रके जननाशौचकी निवृत्ति पंद्रह दिनोंमें होती है। यदि बालक दाँत निकलनेके पहले ही मर जाय तो उसके जननाशौचकी सद्यःशुद्धि मानी गयी है। दाँत निकलनेके बाद चूड़ाकरणसे पहलेतककी मृत्युमें एक रातका अशौच होता है, यज्ञोपवीतके पहलेतक तीन रातका तथा उसके बाद दस रातका अशौच बताया गया है। तीन वर्षसे कमका शूद्र-बालक यदि मृत्युको प्राप्त हो तो पाँच दिनोंके बाद उसके अशौचकी निवृत्ति होती है। तीन वर्षके बाद मृत्यु होनेपर बारह दिन बाद शुद्धि होती है तथा छः वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् उसके मरणका अशौच एक मासके बाद निवृत्त होता है। कन्याओंमें जिनका मुण्डन नहीं हुआ है, उनके मरणाशौचकी शुद्धि एक रातमें होनेवाली मानी गयी है और जिनका मुण्डन हो चुका है, उनकी मृत्यु होनेपर उनके बन्धु-बान्धव तीन दिन बाद शुद्ध होते हैं॥ ४—८॥

जिन कन्याओंका विवाह हो चुका है, उनकी मृत्युका अशौच पितृकुलको नहीं प्राप्त होता। जो स्त्रियाँ पिताके घरमें संतानको जन्म देती हैं, उनके उस जननाशौचकी शुद्धि एक रातमें होती है। किंतु स्वयं सूतिका दस रातमें ही शुद्ध होती है, इसके पहले नहीं। यदि विवाहित कन्या पिताके घरमें मृत्युको प्राप्त हो जाय तो उसके बन्धु-बान्धव निश्चय ही तीन रातमें शुद्ध हो जाते हैं। समान अशौचको पहले निवृत्त करना चाहिये और असमान अशौचको बादमें। ऐसा ही धर्मराजका वचन है। परदेशमें रहनेवाला पुरुष यदि अपने कुलमें किसीके जन्म या मरण होनेका समाचार सुने तो दस रातमें जितना समय शेष हो, उतने ही समयतक उसे अशौच लगता है। यदि दस दिन व्यतीत होनेपर उसे उक्त समाचारका ज्ञान हो, तो वह तीन राततक अशौचयुक्त रहता है तथा यदि एक वर्ष व्यतीत होनेके बाद उपर्युक्त बातोंकी जानकारी हो तो केवल स्नानमात्रसे

शुद्धि हो जाती है। नाना और आचार्यके मरनेपर भी तीन राततक अशौच रहता है॥ ९—१४॥

परशुरामजी! यदि स्त्रीका गर्भ गिर जाय तो जितने मासका गर्भ गिरा हो, उतनी रातें बीतनेपर उस स्त्रीकी शुद्धि होती है। सपिण्ड ब्राह्मण-कुलमें मरणाशौच होनेपर उस कुलके सभी लोग सामान्यरूपसे दस दिनमें शुद्ध हो जाते हैं। क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पंद्रह दिनमें और शूद्र एक मासमें शुद्ध होते हैं। (प्रेत या पितरोंके श्राद्धमें उन्हें आसन देनेसे लेकर अर्घ्यदानतकके कर्म करके उनके पूजनके पश्चात् जब परिवेषण होता है, तब सपात्रक कर्ममें वहाँ ब्राह्मण भोजन कराया जाता है। ये ब्राह्मण पितरोंके प्रतिनिधि होते हैं। अपात्रक कर्ममें ब्राह्मणोंका प्रत्यक्ष भोजन नहीं होता तो भी पितर सूक्ष्मरूपसे उस अन्नको ग्रहण करते हैं। उनके भोजनके बाद वह स्थान उच्छिष्ट समझा जाता है;) उस उच्छिष्टके निकट ही वेदी बनाकर, उसका संस्कार करके, उसके ऊपर कुश बिछाकर उन कुशोंपर ही पिण्ड निवेदन करे। उस समय एकाग्रचित्त हो, प्रेत अथवा पितरके नाम-गोत्रका उच्चारण करके ही उनके लिये पिण्ड अर्पित करे॥ १५—१७॥

जब ब्राह्मण लोग भोजन कर लें और धनसे उनका सत्कार या पूजन कर दिया जाय, तब नाम-गोत्रके उच्चारणपूर्वक उनके लिये अक्षत-जल छोड़े जायँ। तदनन्तर चार अङ्गुल चौड़ा, उतना ही गहरा तथा एक बित्तेका लंबा एक गड्ढा खोदा जाय। परशुराम! वहाँ तीन 'विकर्षु' (सूखे कंडोंके रखनेके स्थान) बनाये जायँ और उनके समीप तीन जगह अग्नि प्रज्वलित की जाय। उनमें क्रमशः **'सोमाय स्वाहा'**, **'वह्नये स्वाहा'** तथा **'यमाय स्वाहा'** मन्त्र बोलकर सोम, अग्नि तथा यमके लिये संक्षेपसे चार-चार या तीन-तीन आहुतियाँ दे। सभी वेदियोंपर सम्यग् विधिसे आहुति देनी चाहिये। फिर वहाँ पहलेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् पिण्ड-दान करे॥ १८—२१॥

अन्न, दही, मधु तथा उड़दसे पिण्डकी पूर्ति करनी चाहिये। यदि वर्षके भीतर अधिक मास हो जाय तो उसके लिये एक पिण्ड अधिक देना चाहिये। अथवा बारहों मासके सारे मासिक श्राद्ध द्वादशाहके दिन ही पूरे कर दिये जायँ। यदि वर्षके भीतर अधिक मासकी सम्भावना हो तो द्वादशाह श्राद्धके दिन ही उस अधिमासके निमित्त एक पिण्ड अधिक दे दिया जाय। संवत्सर पूर्ण हो जानेपर श्राद्धको सामान्य श्राद्धकी ही भाँति सम्पादित करे॥ २२—२४॥

सपिण्डीकरण श्राद्धमें प्रेतको अलग पिण्ड देकर बादमें उसीकी तीन पीढ़ियोंके पितरोंको तीन पिण्ड प्रदान करने चाहिये। इस तरह इन चारों पिण्डोंको बड़ी एकाग्रताके साथ अर्पित करना चाहिये। भृगुनन्दन! पिण्डोंका पूजन और दान करके **'पृथिवी ते पात्रम्०'**, **'ये समानाः०'** इत्यादि मन्त्रोंके पाठपूर्वक यथोचित कार्य सम्पादन करते हुए प्रेत-पिण्डके तीन टुकड़ोंको क्रमशः पिता, पितामह और प्रपितामहके पिण्डोंमें जोड़ दे। इससे पहले इसी तरह प्रेतके अर्घ्यपात्रका पिता आदिके अर्घ्यपात्रोंमें मेलन करना चाहिये। पिण्डमेलन और पात्रमेलनका यह कर्म पृथक्-पृथक् करना उचित है। शूद्रका यह श्राद्धकर्म मन्त्ररहित करनेका विधान है। स्त्रियोंका सपिण्डीकरण श्राद्ध भी उस समय इसी प्रकार (पूर्वोक्त रीतिसे) करना चाहिये॥ २५—२८॥

पितरोंका श्राद्ध प्रतिवर्ष करना चाहिये; किंतु प्रेतके लिये सान्नोदक कुम्भदान एक वर्षतक करे। वर्षाकालमें गङ्गाजीकी सिकताधाराकी सम्भव है गणना हो जाय, किंतु अतीत पितरोंकी गणना कदापि सम्भव नहीं है। काल निरन्तर गतिशील है, उसमें कभी स्थिरता नहीं आती; इसलिये कर्म

अवश्य करे। प्रेत पुरुष देवत्वको प्राप्त हुआ हो या यातनास्थान (नरक)-में पड़ा हो, वह किये गये श्राद्धको वहाँ अवश्य पाता है। इसलिये मनुष्य प्रेतके लिये अथवा अपने लिये शोक न करते हुए ही उपकार (श्राद्धादि कर्म) करे॥ २९—३१॥

जो लोग पर्वतसे कूदकर, आगमें जलकर, गलेमें फाँसी लगाकर या पानीमें डूबकर मरते हैं, ऐसे आत्मघाती और पतित मनुष्योंके मरनेका अशौच नहीं लगता है। जो बिजली गिरनेसे या युद्धमें अस्त्रोंके आघातसे मरते हैं, उनके लिये भी यही बात है। यति (संन्यासी), व्रती, ब्रह्मचारी, राजा, कारीगर और यज्ञदीक्षित पुरुष तथा जो राजाकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं; ऐसे लोगोंको भी अशौच नहीं प्राप्त होता है। ये यदि प्रेतकी शवयात्रामें गये हों तो भी स्नानमात्र कर लें। इतनेसे ही उनकी शुद्धि हो जाती है। मैथुन करनेपर और जलते हुए शवका धुआँ लग जानेपर तत्काल स्नानका विधान है। मरे हुए ब्राह्मणके शवको शूद्रद्वारा किसी तरह भी न उठवाया जाय। इसी तरह शूद्रके शवको भी ब्राह्मणद्वारा कदापि न उठवाये; क्योंकि वैसा करनेपर दोनोंको ही दोष लगता है। अनाथ ब्राह्मणके शवको ढोकर अन्त्येष्टिकर्मके लिये ले जानेपर मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है॥ ३२—३५॥

अनाथ प्रेतका दाह करनेके लिये काष्ठ या लकड़ी देनेवाला मानव संग्राममें विजय पाता है। अपने प्रेत-बन्धुको चितापर स्थापित एवं दग्ध कर उस चिताकी अपसव्य परिक्रमा करके समस्त भाई-बन्धु सवस्त्र स्नान करें और प्रेतके निमित्त तीन-तीन बार जलाञ्जलि दें। घरके दरवाजेपर जाकर पत्थरपर पैर रखकर (हाथ-पैर धो लें), अग्निमें अक्षत छोड़ें तथा नीमकी पत्ती चबाकर घरके भीतर प्रवेश करें। वहाँ उस दिन सबसे अलग पृथ्वीपर चटाई आदि बिछाकर सोवें। जिस घरका शव जलाया गया हो, उस घरके लोग उस दिन खरीदकर मँगाया हुआ या स्वतः प्राप्त हुआ आहार ग्रहण करें। दस दिनोंतक प्रतिदिन एक-एकके हिसाबसे पिण्डदान करे। दसवें दिन एक पिण्ड देकर बाल बनवाकर मनुष्य शुद्ध होता है। दसवें दिन विद्वान् पुरुष सरसों और तिलका अनुलेप लगाकर जलाशयमें गोता लगाये और स्नानके पश्चात् दूसरा नूतन वस्त्र-धारण करे। जिस बालकके दाँत न निकले हों, उसके मरनेपर या गर्भस्राव होनेपर उसके लिये न तो दाह-संस्कार करे और न जलाञ्जलि दे। शवदाहके पश्चात् चौथे दिन अस्थिसंचय करे। अस्थिसंचयके पश्चात् अङ्गस्पर्शका विधान है॥ ३६—४२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मरणाशौचका वर्णन' नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५७॥

एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय

गर्भस्राव आदि सम्बन्धी अशौच

पुष्कर कहते हैं— अब मैं मनु आदि महर्षियोंके मतके अनुसार गर्भस्राव-जनित अशौचका वर्णन करूँगा। चौथे मासके स्राव तथा पाँचवें, छठे मासके गर्भपाततक यह नियम है कि जितने महीनेपर गर्भस्खलन हो, उतनी ही रात्रियोंके द्वारा अथवा तीन रात्रियोंके द्वारा स्त्रियोंकी शुद्धि होती है*। सातवें मासमें दस दिनका अशौच होता है। (प्रथमसे तीसरे मासतकके गर्भस्रावमें ब्राह्मणके

* मनुस्मृतिमें लिखा है—'रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति।' (५। ६६) इसकी टीकामें कुल्लूकभट्टने कहा है—'तृतीयमासात्प्रभृति गर्भस्रावे गर्भमासतुल्याहोरात्रैश्चातुर्वर्ण्यस्त्री विशुद्ध्यति।—अर्थात् तीसरे महीनेसे लेकर गर्भस्राव होनेपर जितने महीनेका गर्भ हो, उतने

लिये तीन राततक अशुद्धि रहती है।[1]) क्षत्रियके लिये चार रात्रि, वैश्यके लिये पाँच दिन तथा शूद्रके लिये आठ दिनतक अशौचका समय है। सातवें माससे अधिक होनेपर सबके लिये बारह दिनोंकी अशुद्धि होती है। यह अशौच केवल स्त्रियोंके लिये कहा गया है। तात्पर्य यह कि माता ही इतने दिनोंतक अशुद्ध रहती है। पिताकी शुद्धि तो स्नानमात्रसे हो जाती है[1]॥ १—३॥

जो सपिण्ड पुरुष हैं, उन्हें छः मासतक सद्यः-शौच (तत्काल-शुद्धि) रहता है। उनके लिये स्नान भी आवश्यक नहीं है। किंतु सातवें और आठवें मासके गर्भपातमें सपिण्ड पुरुषोंको भी त्रिरात्र अशौच लगता है। जितने समयमें दाँत निकलते हैं, उतने मासतक यदि बालककी मृत्यु हो जाय तो सपिण्ड पुरुषोंको तत्काल शुद्धि प्राप्त होती है। चूडाकरणके पहले मृत्यु होनेपर उन्हें एक रातका अशौच लगता है। यज्ञोपवीतके पूर्व बालकका देहावसान होनेपर सपिण्डोंको तीन राततक अशौच प्राप्त होता है। इसके बाद मृत्यु होनेपर सपिण्ड पुरुषोंको दस रातका अशौच लगता है। दाँत निकलनेके पूर्व बालककी मृत्यु होनेपर माता-पिताको तीन रातका अशौच प्राप्त होता है। जिसका चूडाकरण न हुआ हो, उस बालककी मृत्यु होनेपर भी माता-पिताको उतने ही दिनोंका अशौच प्राप्त होता है। तीन वर्षसे कमकी आयुमें ब्राह्मण-बालककी मृत्यु हो (और चूडाकरण न हुआ हो) तो सपिण्डोंकी शुद्धि एक रातमें होती है[2]॥ ४—६॥

क्षत्रिय-बालकके मरनेपर उसके सपिण्डोंकी शुद्धि दो दिनपर, वैश्य-बालकके मरनेसे उसके सपिण्डोंकी तीन दिनपर और शूद्र-बालककी मृत्यु हो तो उसके सपिण्डोंकी पाँच दिनपर शुद्धि होती है। शूद्र बालक यदि विवाहके पहले मृत्युको प्राप्त हो तो उसे बारह दिनका अशौच लगता है। जिस अवस्थामें ब्राह्मणको तीन रातका अशौच देखा जाता है, उसीमें शूद्रके लिये बारह दिनका अशौच लगता है; क्षत्रियके लिये छः दिन और वैश्यके लिये नौ दिनोंका अशौच लगता है। दो वर्षके बालकका अग्निद्वारा दाहसंस्कार नहीं होता। उसकी मृत्यु होनेपर उसे धरतीमें गाड़ देना चाहिये। उसके लिये बान्धवोंको उदक-क्रिया (जलाञ्जलि-दान) नहीं करनी चाहिये। अथवा जिसका नामकरण हो गया हो या जिसके दाँत निकल आये हों; उसका दाह-संस्कार तथा उसके

दिन-रातमें चारों वर्णोंकी स्त्रियाँ शुद्ध होती हैं।' कुल्लूकभट्टने यह नियम छः महीनेतकके लिये बताया है और इसकी पुष्टिमें आदिपुराणका निम्नाङ्कित श्लोक उद्धृत किया है—'षण्मासाभ्यन्तरं यावद् गर्भस्रावो भवेद् यदि। तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते॥' मिताक्षराकारने स्मृतिवचनका उल्लेख करते हुए यह कहा है कि 'चौथे मासतक जो गर्भस्खलन होता है, वह 'स्राव' है और पाँचवें, छठे मासमें जो स्राव होता है, उसे 'पात' कहते हैं; इसके ऊपर 'प्रसव' कहलाता है। यथा—'आ चतुर्थाद् भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः। अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यात्।' गर्भस्रावे मासतुल्या निशाः' इत्यादि वचनद्वारा याज्ञवल्क्यजीने भी उपर्युक्त मतको ही व्यक्त किया है। त्रिरात्रका नियम तीन मासतक ही लागू होता है।

१. 'अत ऊर्ध्वं तु जात्युक्तमाशौचं तासु विद्यते।' (आदिपुराण) छठे मासके बादसे अर्थात् सातवें माससे स्त्रियोंको पूर्णजननाशौच (दस या बारह दिनका) लगता है। तीन मासके अंदर जो स्राव होता है, उसको 'अचिरस्राव' कहा गया है; उसमें मरीचिका मत इस प्रकार है—'गर्भसुत्वां यथामासमचिरे तूत्तमे त्रयः। राजन्ये तु चतू रात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव च। अष्टाहेन तु शूद्रस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता।' इन श्लोकोंका भाव मूलके अनुवादमें आ गया है।

२. मरीचिके मतमें माताको मास-संख्याके अनुसार और पिता आदिको तीन दिनका अशौच होता है। यह अशौच केवल गर्भपातको लक्ष्य करके कहा गया है। जन्मसम्बन्धी सूतक तो पूरा ही लगता है। इसमें 'जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम्।' यह 'हारीत-स्मृति'का वचन प्रमाण है।

३. 'नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैश्चिकी स्मृता।' (मनु० ५। ६७)

निमित्त जलाञ्जलि-दान करना चाहिये।[1] उपनयनके पश्चात् बालककी मृत्यु हो तो दस दिनका अशौच लगता है। जो प्रतिदिन अग्निहोत्र तथा तीनों वेदोंका स्वाध्याय करता है, ऐसा ब्राह्मण एक दिनमें ही शुद्ध हो जाता है[2]। जो उससे हीन और हीनतर है, अर्थात् जो दो अथवा एक वेदका स्वाध्याय करनेवाला है, उसके लिये तीन एवं चार दिनमें शुद्ध होनेका विधान है। जो अग्निहोत्रकर्मसे रहित है, वह पाँच दिनमें शुद्ध होता है। जो केवल 'ब्राह्मण' नामधारी है (वेदाध्ययन या अग्निहोत्र नहीं करता), वह दस दिनमें शुद्ध होता है॥ ७—११॥

गुणवान् ब्राह्मण सात दिनपर शुद्ध होता है, गुणवान् क्षत्रिय नौ दिनमें, गुणवान् वैश्य दस दिनमें और गुणवान् शूद्र बीस दिनमें शुद्ध होता है। साधारण ब्राह्मण दस दिनमें, साधारण क्षत्रिय बारह दिनमें, साधारण वैश्य पंद्रह दिनमें और साधारण शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। गुणोंकी अधिकता होनेपर, यदि दस दिनका अशौच प्राप्त हो तो वह तीन ही दिनतक रहता है, तीन दिनोंतकका अशौच प्राप्त हो तो वह एक ही दिन रहता है तथा एक दिनका अशौच प्राप्त हो तो उसमें तत्काल ही शुद्धिका विधान है। इसी प्रकार सर्वत्र ऊहा कर लेनी चाहिये। दास, छात्र, भृत्य और शिष्य—ये यदि अपने स्वामी अथवा गुरुके साथ रहते हों तो गुरु अथवा स्वामीकी मृत्यु होनेपर इन सबको स्वामी एवं गुरुके कुटुम्बी-जनोंके समान ही पृथक्-पृथक् अशौच लगता है। जिसका अग्निसे संयोग न हो अर्थात् जो अग्निहोत्र न करता हो, उसे सपिण्ड पुरुषोंकी मृत्यु होनेके बाद ही तुरंत अशौच लगता है; परंतु जिसके द्वारा नित्य अग्निहोत्रका अनुष्ठान होता हो, उस पुरुषको किसी कुटुम्बी या जाति-बन्धुकी मृत्यु होनेपर जब उसका दाह-संस्कार सम्पन्न हो जाता है, उसके बाद अशौच प्राप्त होता है॥ १२—१६॥

सभी वर्णके लोगोंको अशौचका एक तिहाई समय बीत जानेपर शारीरिक स्पर्शका अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस नियमके अनुसार ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमशः तीन, चार, पाँच तथा दस दिनके अनन्तर स्पर्श करनेके योग्य हो जाते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णोंका अस्थिसंचय क्रमशः चार, पाँच, सात तथा नौ दिनोंपर करना चाहिये॥ १७-१८॥

जिस कन्याका वाग्दान नहीं किया गया है (और चूडाकरण हो गया है), उसकी यदि वाग्दानसे पूर्व मृत्यु हो जाय तो बन्धु-बान्धवोंको एक दिनका अशौच लगता है। जिसका वाग्दान तो हो गया है, किंतु विवाह-संस्कार नहीं हुआ है, उस कन्याके मरनेपर तीन दिनका अशौच लगता है। यदि ब्याही हुई बहिन या पुत्री आदिकी मृत्यु हो तो दो दिन एक रातका अशौच लगता है। कुमारी कन्याओंका वही गोत्र है, जो पिताका है। जिनका विवाह हो गया है, उन कन्याओंका गोत्र वह है, जो उनके पतिका है। विवाह हो जानेपर कन्याकी मृत्यु हो तो उसके लिये जलाञ्जलि-दानका कर्तव्य पितापर भी लागू होता है; पतिपर तो है ही। तात्पर्य यह कि विवाह होनेपर पिता और पति—दोनों कुलोंमें जलदानकी क्रिया प्राप्त होती है। यदि दस दिनोंके

१. यहाँ दो वर्षकी आयुवाले बालकके दाहसंस्कार तथा उसके निमित्त जलाञ्जलि-दानका निषेध भी मिलता है और विधान भी। अतः यह समझना चाहिये कि किया जाय तो उससे मृत जीवका उपकार होता है और न किया जाय तो भी बान्धवोंको कोई दोष नहीं लगता। (मनु० ५।७० की 'मन्वर्थ-मुक्तावली' टीका देखें।)

२. मनुकी प्राचीन पोथियोंमें इसी आशयका श्लोक था, जिसका उल्लेख प्रायश्चित्ताध्यायके आशौच-प्रकरणमें २८-२९ श्लोकोंकी मिताक्षरामें किया गया है। यह विधान केवल स्वाध्याय और अग्निहोत्रकी सिद्धिके लिये है। संध्यावन्दन और अन्न-भोजन आदिके योग्य शुद्धि तो दस दिनके बाद ही होती है। जैसा कि यम आदिका वचन है—'उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्न न भुञ्जते।' इत्यादि।

बाद और चूडाकरणके पहले कन्याकी मृत्यु हो तो माता-पिताको तीन दिनका अशौच लगता है और सपिण्ड पुरुषोंकी तत्काल ही शुद्धि होती है। चूडाकरणके बाद वाग्दानके पहलेतक उसकी मृत्यु होनेपर बन्धु-बान्धवोंको एक दिनका अशौच लगता है। वाग्दानके बाद विवाहके पहलेतक उन्हें तीन दिनका अशौच प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उस कन्याके भतीजोंको दो दिन एक रातका अशौच लगता है; किंतु अन्य सपिण्ड पुरुषोंकी तत्काल शुद्धि हो जाती है। ब्राह्मण सजातीय पुरुषोंके यहाँ जन्म-मरणमें सम्मिलित हो तो दस दिनमें शुद्ध होता है और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके यहाँ जन्म-मृत्युमें सम्मिलित होनेपर क्रमशः छः, तीन तथा एक दिनमें शुद्ध होता है॥ १९—२३॥

यह जो अशौच-सम्बन्धी नियम निश्चित किया गया है, वह सपिण्ड पुरुषोंसे ही सम्बन्ध रखता है, ऐसा जानना चाहिये। अब जो औरस नहीं हैं, ऐसे पुत्र आदिके विषयमें बताऊँगा। औरस-भिन्न क्षेत्रज, दत्तक आदि पुत्रोंके मरनेपर तथा जिसने अपनेको छोड़कर दूसरे पुरुषसे सम्बन्ध जोड़ लिया हो अथवा जो दूसरे पतिको छोड़कर आयी हो और अपनी भार्या बनकर रहती रही हो, ऐसी स्त्रीके मरनेपर तीन रातमें अशौचकी निवृत्ति होती है। स्वधर्मका त्याग करनेके कारण जिनका जन्म व्यर्थ हो गया हो, जो वर्णसंकर संतान हो अर्थात् नीचवर्णके पुरुष और उच्चवर्णकी स्त्रीसे जिसका जन्म हुआ हो, जो संन्यासी बनकर इधर-उधर घूमते-फिरते रहे हों और जो अशास्त्रीय विधिसे विष-बन्धन आदिके द्वारा प्राणत्याग कर चुके हों, ऐसे लोगोंके निमित्त बान्धवोंको जलाञ्जलि-दान नहीं करना चाहिये; उनके लिये उदक-क्रिया निवृत्त हो जाती है। एक ही माताद्वारा दो पिताओंसे उत्पन्न जो दो भाई हों, उनके जन्ममें सपिण्ड पुरुषोंको एक दिनका अशौच लगता है और मरनेपर दो दिनका। यहाँतक सपिण्डोंका अशौच बताया गया। अब 'समानोदक'का बता रहा हूँ॥ २४—२७॥

दाँत निकलनेसे पहले बालककी मृत्यु हो जाय, कोई सपिण्ड पुरुष देशान्तरमें रहकर मरा हो और उसका समाचार सुना जाय तथा किसी असपिण्ड पुरुषकी मृत्यु हो जाय—तो इन सब अवस्थाओंमें (नियत अशौचका काल बिताकर) वस्त्रसहित जलमें डुबकी लगानेपर तत्काल ही शुद्धि हो जाती है। मृत्यु तथा जन्मके अवसरपर सपिण्ड पुरुष दस दिनोंमें शुद्ध होते हैं, एक कुलके असपिण्ड पुरुष तीन रातमें शुद्ध होते हैं और एक गोत्रवाले पुरुष स्नान करनेमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं। सातवीं पीढ़ीमें सपिण्डभावकी निवृत्ति हो जाती है और चौदहवीं पीढ़ीतक समानोदक सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है। किसीके मतमें जन्म और नामका स्मरण न रहनेपर अर्थात् हमारे कुलमें अमुक पुरुष हुए थे, इस प्रकार जन्म और नाम दोनोंका ज्ञान न रहनेपर—समानोदकभाव निवृत्त हो जाता है। इसके बाद केवल गोत्रका सम्बन्ध रह जाता है। जो दशाह बीतनेके पहले परदेशमें रहनेवाले किसी जाति-बन्धुकी मृत्युका समाचार सुन लेता है, उसे दशाहमें जितने दिन शेष रहते हैं, उतने ही दिनका अशौच लगता है। दशाह बीत जानेपर उक्त समाचार सुने तो तीन रातका अशौच प्राप्त होता है॥ २८—३२॥

वर्ष बीत जानेपर उक्त समाचार ज्ञात हो तो जलका स्पर्श करके ही मनुष्य शुद्ध हो जाता है। मामा, शिष्य, ऋत्विक् तथा बान्धवजनोंके मरनेपर एक दिन, एक रात और एक दिनका अशौच लगता है। मित्र, दामाद, पुत्रीके पुत्र, भानजे, साले और सालेके पुत्रके मरनेपर स्नानमात्र करनेका

विधान है। नानी, आचार्य तथा नानाकी मृत्यु होनेपर तीन दिनका अशौच लगता है। दुर्भिक्ष (अकाल) पड़नेपर, समूचे राष्ट्रके ऊपर संकट आनेपर, आपत्ति-विपत्ति पड़नेपर तत्काल शुद्धि कही गयी है। यज्ञकर्ता, व्रतपरायण, ब्रह्मचारी, दाता तथा ब्रह्मवेत्ताकी तत्काल ही शुद्धि होती है। दान, यज्ञ, विवाह, युद्ध तथा देशव्यापी विप्लवके समय भी सद्यःशुद्धि ही बतायी गयी है। महामारी आदि उपद्रवमें मरे हुएका अशौच भी तत्काल ही निवृत्त हो जाता है। राजा, गौ तथा ब्राह्मणद्वारा मारे गये मनुष्योंकी और आत्मघाती पुरुषोंकी मृत्यु होनेपर भी तत्काल ही शुद्धि कही गयी है॥ ३३—३७॥

जो असाध्य रोगसे युक्त एवं स्वाध्यायमें भी असमर्थ है, उसके लिये भी तत्काल शुद्धिका ही विधान है। जिन महापापियोंके लिये अग्नि और जलमें प्रवेश कर जाना प्रायश्चित्त बताया गया है (उनका वह मरण आत्मघात नहीं है)। जो स्त्री अथवा पुरुष अपमान, क्रोध, स्नेह, तिरस्कार या भयके कारण गलेमें बन्धन (फाँसी) लगाकर किसी तरह प्राण त्याग देते हैं, उन्हें 'आत्मघाती' कहते हैं। वह आत्मघाती मनुष्य एक लाख वर्षतक अपवित्र नरकमें निवास करता है। जो अत्यन्त वृद्ध है, जिसे शौचाशौचका भी ज्ञान नहीं रह गया है, वह यदि प्राण त्याग करता है तो उसका अशौच तीन दिनतक ही रहता है। उसमें (प्रथम दिन दाह), दूसरे दिन अस्थिसंचय, तीसरे दिन जलदान तथा चौथे दिन श्राद्ध करना चाहिये। जो बिजली अथवा अग्निसे मरते हैं, उनके अशौचसे सपिण्ड पुरुषोंकी तीन दिनमें शुद्धि होती है। जो स्त्रियाँ पाखण्डका आश्रय लेनेवाली तथा पतिघातिनी हैं, उनकी मृत्युपर अशौच नहीं लगता और न उन्हें जलाञ्जलि पानेका ही अधिकार होता है। पिता-माता आदिकी मृत्यु होनेका समाचार एक वर्ष बीत जानेपर भी प्राप्त हो तो सवस्त्र स्नान करके उपवास करे और विधिपूर्वक प्रेतकार्य (जलदान आदि) सम्पन्न करे॥ ३८—४३॥

जो कोई पुरुष जिस किसी तरह भी असपिण्ड शवको उठाकर ले जाय, वह वस्त्रसहित स्नान करके अग्निका स्पर्श करे और घी खा ले, इससे उसकी शुद्धि हो जाती है। यदि उस कुटुम्बका वह अन्न खाता है तो दस दिनमें ही उसकी शुद्धि होती है। यदि मृतकके घरवालोंका अन्न न खाकर उनके घरमें निवास भी न करे तो उसकी एक ही दिनमें शुद्धि हो जायगी। जो द्विज अनाथ ब्राह्मणके शवको ढोते हैं, उन्हें पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है और स्नान करनेमात्रसे उनकी शुद्धि हो जाती है। शूद्रके शवका अनुगमन करनेवाला ब्राह्मण तीन दिनपर शुद्ध होता है। मृतक व्यक्तिके बन्धु-बान्धवोंके साथ बैठकर शोक-प्रकाश या विलाप करनेवाला द्विज उस एक दिन और एक रातमें स्वेच्छासे दान और श्राद्ध आदिका त्याग करे। यदि अपने घरपर किसी शूद्रा स्त्रीके बालक पैदा हो या शूद्रका मरण हो जाय तो तीन दिनपर घरके बर्तन-भाँड़े निकाल फेंके और सारी भूमि लीप दे, तब शुद्धि होती है। सजातीय व्यक्तियोंके रहते हुए ब्राह्मण-शवको शूद्रके द्वारा न उठवाये। मुर्देको नहलाकर नूतन वस्त्रसे ढक दे और फूलोंसे उसका पूजन करके श्मशानकी ओर ले जाय। मुर्देको नंगे शरीर न जलाये। कफनका कुछ हिस्सा फाड़कर श्मशानवासीको दे देना चाहिये॥ ४४—५०॥

उस समय सगोत्र पुरुष शवको उठाकर चितापर चढ़ावे। जो अग्निहोत्री हो, उसे विधिपूर्वक तीन अग्नियों (आहवनीय, गार्हपत्य और दाक्षिणाग्नि) द्वारा दग्ध करना चाहिये। जिसने अग्निकी स्थापना नहीं की हो, परंतु उपनयन-

संस्कारसे युक्त हो, उसका एक अग्नि (आहवनीय) द्वारा दाह करना चाहिये तथा अन्य साधारण मनुष्योंका दाह लौकिक अग्निसे करना चाहिये।* **'अस्मात् त्वमभिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।'** इस मन्त्रको पढ़कर पुत्र अपने पिताके शवके मुखमें अग्नि प्रदान करे। फिर प्रेतके नाम और गोत्रका उच्चारण करके बान्धवजन एक-एक बार जल-दान करें। इसी प्रकार नाना तथा आचार्यके मरनेपर भी उनके उद्देश्यसे जलाञ्जलिदान करना अनिवार्य है। परंतु मित्र, ब्याही हुई बेटी-बहन आदि, भानजे, श्वशुर तथा ऋत्विज्‌के लिये भी जलदान करना अपनी इच्छापर निर्भर है। पुत्र अपने पिताके लिये दस दिनोंतक प्रतिदिन **'अपो नः शोशुचद् अयम्'** इत्यादि पढ़कर जलाञ्जलि दे। ब्राह्मणको दस पिण्ड, क्षत्रियको बारह पिण्ड, वैश्यको पंद्रह पिण्ड और शूद्रको तीस पिण्ड देनेका विधान है। पुत्र हो या पुत्री अथवा और कोई, वह पुत्रकी भाँति मृत व्यक्तिको पिण्ड दे॥ ५१—५६॥

शवका दाह-संस्कार करके जब घर लौटे तो मनको वशमें रखकर द्वारपर खड़ा हो दाँतसे नीमकी पत्तियाँ चबाये। फिर आचमन करके अग्नि, जल, गोबर और पीली सरसोंका स्पर्श करे। तत्पश्चात् पहले पत्थरपर पैर रखकर धीरे-धीरे घरमें प्रवेश करे। उस दिनसे बन्धु-बान्धवोंको क्षार नमक नहीं खाना चाहिये, मांस त्याग देना चाहिये। सबको भूमिपर शयन करना चाहिये। वे स्नान करके खरीदनेसे प्राप्त हुए अन्नको खाकर रहें। जो प्रारम्भमें दाह-संस्कार करे, उसे दस दिनोंतक सब कार्य करना चाहिये। अन्य अधिकारी पुरुषोंके अभावमें ब्रह्मचारी ही पिण्डदान और जलाञ्जलि-दान करे। जैसे सपिण्डोंके लिये यह मरणाशौचकी प्राप्ति बतायी गयी है, उसी प्रकार जन्मके समय भी पूर्ण शुद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको अशौचकी प्राप्ति होती है। मरणाशौच तो सभी सपिण्ड पुरुषोंको समानरूपसे प्राप्त होता है; किंतु जननाशौचकी अस्पृश्यता विशेषतः माता-पिताको ही लगती है। इनमें भी माताको ही जन्मका विशेष अशौच लगता है, वही स्पर्शके अधिकारसे वञ्चित होती है। पिता तो स्नान करनेमात्रसे शुद्ध (स्पर्श करने योग्य) हो जाता है॥ ५७—६१॥

पुत्रका जन्म होनेके दिन निश्चय ही श्राद्ध करना चाहिये। वह दिन श्राद्ध-दान तथा गौ, सुवर्ण आदि और वस्त्रका दान करनेके लिये उपयुक्त माना गया है। मरणका अशौच मरणके साथ और सूतकका सूतकके साथ निवृत्त होता है। दोनोंमें जो पहला अशौच है, उसीके साथ दूसरेकी भी शुद्धि होती है। जन्माशौचमें मरणाशौच हो अथवा मरणाशौचमें जन्माशौच हो जाय तो मरणाशौचके अधिकारमें जन्माशौचको भी निवृत्त मानकर अपनी शुद्धिका कार्य करना चाहिये। जन्माशौचके साथ मरणाशौचकी निवृत्ति नहीं होती। यदि एक समान दो अशौच हों (अर्थात् जन्म-सूतकमें जन्म-सूतक और मरणाशौचमें मरणाशौच पड़ जाय) तो प्रथम अशौचके साथ दूसरेको भी समाप्त कर देना चाहिये और यदि असमान अशौच हो (अर्थात् जन्माशौचमें मरणाशौच और मरणाशौचमें जन्माशौच हो) तो द्वितीय अशौचके साथ प्रथमको निवृत्त करना चाहिये—ऐसा धर्मराजका कथन है। मरणाशौचके भीतर

* देवल-स्मृतिमें लिखा है कि 'चाण्डालकी अग्नि, अपवित्र अग्नि, सूतिका-गृहकी अग्नि, पतितके घरकी अग्नि तथा चिताकी अग्नि—इन्हें शिष्ट पुरुषको नहीं ग्रहण करना चाहिये।' अतः लौकिक अग्नि लेते समय उपर्युक्त अग्नियोंको त्याग देना चाहिये। 'चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिचित्। पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचिताः॥'

दूसरा मरणाशौच आनेपर वह पहले अशौचके साथ निवृत्त हो जाता है। गुरु अशौचसे लघु अशौच बाधित होता है; लघुसे गुरु अशौचका बाध नहीं होता। मृतक अथवा सूतकमें यदि अन्तिम रात्रिके मध्यभागमें दूसरा अशौच आ पड़े तो उस शेष समयमें ही उसकी भी निवृत्ति हो जानेके कारण सभी सपिण्ड पुरुष शुद्ध हो जाते हैं। यदि रात्रिके अन्तिम भागमें दूसरा अशौच आवे तो दो दिन अधिक बीतनेपर अशौचकी निवृत्ति होती है तथा यदि अन्तिम रात्रि बिताकर अन्तिम दिनके प्रातःकाल अशौचान्तर प्राप्त हो तो तीन दिन और अधिक बीतनेपर सपिण्डोंकी शुद्धि होती है। दोनों ही प्रकारके अशौचोंमें दस दिनोंतक उस कुलका अन्न नहीं खाया जाता है। अशौचमें दान आदिका भी अधिकार नहीं रहता। अशौचमें किसीके यहाँ भोजन करनेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये। अनजानमें भोजन करनेपर पातक नहीं लगता, जान-बूझकर खानेवालेको एक दिनका अशौच प्राप्त होता है॥ ६२—६९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जनन-मरणके अशौचका वर्णन' नामक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५८॥

एक सौ उनसठवाँ अध्याय

असंस्कृत आदिकी शुद्धि

पुष्कर कहते हैं— मृतकका दाह-संस्कार हुआ हो या नहीं, यदि श्रीहरिका स्मरण किया जाय तो उससे उसको स्वर्ग और मोक्ष—दोनोंकी प्राप्ति हो सकती है।[1] मृतककी हड्डियोंको गङ्गाजीके जलमें डालनेसे उस प्रेत (मृत व्यक्ति)-का अभ्युदय होता है। मनुष्यकी हड्डी जबतक गङ्गाजीके जलमें स्थित रहती है, तबतक उसका स्वर्गलोकमें निवास होता है।[2] आत्मत्यागी तथा पतित मनुष्योंके लिये यद्यपि पिण्डोदक-क्रियाका विधान नहीं है तथापि गङ्गाजीके जलमें उनकी हड्डियोंका डालना भी उनके लिये हितकारक ही है। उनके उद्देश्यसे दिया हुआ अन्न और जल आकाशमें लीन हो जाता है। पतित प्रेतके प्रति महान् अनुग्रह करके उसके लिये 'नारायण-बलि' करनी चाहिये। इससे वह उस अनुग्रहका फल भोगता है। कमलके सदृश नेत्रवाले भगवान् नारायण अविनाशी हैं, अतः उन्हें जो कुछ अर्पण किया जाता है, उसका नाश नहीं होता। भगवान् जनार्दन जीवका पतनसे त्राण (उद्धार) करते हैं, इसलिये वे ही दानके सर्वोत्तम पात्र हैं॥ १—५॥

निश्चय ही नीचे गिरनेवाले जीवोंको भी भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले एकमात्र श्रीहरि ही हैं। 'सम्पूर्ण जगत्के लोग एक-न-एक दिन मरनेवाले हैं'—यह विचारकर सदा अपने सच्चे सहायक धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। पतिव्रता पत्नीको छोड़कर दूसरा कोई बन्धु-बान्धव मरकर भी मरे हुए मनुष्यके साथ नहीं जा सकता; क्योंकि यमलोकका मार्ग सबके लिये अलग-अलग है। जीव कहीं भी क्यों न जाय, एकमात्र धर्म ही उसके साथ जाता है। जो काम कल

---

१. 'संस्कृतस्यासंस्कृतस्य स्वर्गो मोक्षो हरिस्मृतेः।' (अग्नि० १५९। १)

'मरनेवाला मनुष्य मरनेके समय यदि भगवन्नामका उच्चारण या भगवत्स्मरण कर ले, तब तो उसे भगवत्प्राप्ति अवश्य होती है; परंतु यदि उसके उद्देश्यसे भगवत्स्मरण किया जाय तो उससे भी उसको स्वर्ग और मोक्ष सुलभ हो सकते हैं।'

२. 'गङ्गातोये नरस्यास्थि यावत्तावद् दिवि स्थितिः।' (अग्नि० १५९। २)

करना है, उसे आज ही कर ले; जिसे दोपहर बाद करना है, उसे पहले ही पहरमें कर ले; क्योंकि मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि इसका कार्य पूरा हो गया है या नहीं? मनुष्य खेत-बारी, बाजार-हाट तथा घर-द्वारमें फँसा होता है, उसका मन अन्यत्र लगा होता है; इसी दशामें जैसे असावधान भेड़को सहसा भेड़िया आकर उठा ले जाय, वैसे ही मृत्यु उसे लेकर चल देती है। कालके लिये न तो कोई प्रिय है, न द्वेषका पात्र*॥ ६—१०॥

आयुष्य तथा प्रारब्धकर्म क्षीण होनेपर वह हठात् जीवको हर ले जाता है। जिसका काल नहीं आया है, वह सैकड़ों बाणोंसे घायल होनेपर भी नहीं मरता तथा जिसका काल आ पहुँचा है, वह कुशके अग्रभागसे ही छू जाय तो भी जीवित नहीं रहता। जो मृत्युसे ग्रस्त है, उसे औषध और मन्त्र आदि नहीं बचा सकते। जैसे बछड़ा गौओंके झुंडमें भी अपनी माँके पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म जन्मान्तरमें भी कर्ताको अवश्य ही प्राप्त होता है। इस जगत्का आदि और अन्त अव्यक्त है, केवल मध्यकी अवस्था ही व्यक्त होती है। जैसे जीवके इस शरीरमें कुमार तथा यौवन आदि अवस्थाएँ क्रमशः आती रहती हैं, उसी प्रकार मृत्युके पश्चात् उसे दूसरे शरीरकी भी प्राप्ति होती है। जैसे मनुष्य (पुराने वस्त्रको त्यागकर) दूसरे नूतन वस्त्रको धारण करता है, उसी प्रकार जीव एक शरीरको छोड़कर दूसरेको ग्रहण करता है। देहधारी जीवात्मा सदा अवध्य है, वह कभी मरता नहीं; अतः मृत्युके लिये शोक त्याग देना चाहिये॥ ११—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'असंस्कृत आदिकी शुद्धिका वर्णन' नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५९॥

एक सौ साठवाँ अध्याय

वानप्रस्थ-आश्रम

पुष्कर कहते हैं—अब मैं वानप्रस्थ और संन्यासियोंके धर्मका जैसा वर्णन करता हूँ, सुनो। सिरपर जटा रखना, प्रतिदिन अग्निहोत्र करना, धरतीपर सोना और मृगचर्म धारण करना, वनमें रहना, फल, मूल, नीवार (तिन्नी) आदिसे जीवन-निर्वाह करना, कभी किसीसे कुछ भी दान न लेना, तीनों समय स्नान करना, ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर रहना तथा देवता और अतिथियोंकी पूजा करना—यह सब वानप्रस्थीका धर्म है। गृहस्थ पुरुषको उचित है कि अपनी संतानको संतान देखकर वनका आश्रय ले और आयुका तृतीय भाग वनवासमें ही बितावे। उस आश्रममें वह अकेला रहे या पत्नीके साथ भी रह सकता है। (परंतु दोनों ब्रह्मचर्यका पालन करें।) गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्निसेवन करे। वर्षाकालमें खुले आकाशके नीचे रहे। हेमन्त-ऋतुमें रातभर भीगे कपड़े ओढ़कर रहे। (अथवा जलमें रहे।) शक्ति रहते हुए वानप्रस्थीको इसी प्रकार उग्र तपस्या करनी

---

* पततां भुक्तिमुक्त्यादिप्रद एको हरिर्ध्रुवम्। दृष्ट्वा लोकान् म्रियमाणान् सहायं धर्ममाचरेत्॥
मृतोऽपि बान्धवः शक्तो नानुगन्तुं नरं मृतम्। जायावर्जं हि सर्वस्य याम्यः पन्था विभिद्यते॥
धर्म एको व्रजत्येनं यत्रक्वचनगामिनम्। यः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽपराह्णिकम्॥
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम्। क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम्॥
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति। न कालस्य प्रियः कश्चिद् द्वेष्यश्चास्य न विद्यते॥
(अग्नि० १५९।६—१०)

चाहिये। वानप्रस्थसे फिर गृहस्थ-आश्रममें न लौटे। विपरीत या कुटिल गतिका आश्रय न लेकर सामनेकी दिशाकी ओर जाय अर्थात् पीछे न लौटकर आगे बढ़ता रहे*॥ १—५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वानप्रस्थाश्रमका वर्णन' नामक एक सौ साठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६०॥

एक सौ इकसठवाँ अध्याय

संन्यासीके धर्म

पुष्कर कहते हैं— अब मैं ज्ञान और मोक्ष आदिका साक्षात्कार करानेवाले संन्यास-धर्मका वर्णन करूँगा। आयुके चौथे भागमें पहुँचकर, सब प्रकारके सङ्गसे दूर हो संन्यासी हो जाय। जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन घर छोड़कर चल दे—संन्यास ले ले। प्राजापत्य इष्टि (यज्ञ) करके सर्वस्वकी दक्षिणा दे दे तथा आहवनीयादि अग्नियोंको अपने-आपमें आरोपित करके ब्राह्मण घरसे निकल जाय। संन्यासी सदा अकेला ही विचरे। भोजनके लिये ही गाँवमें जाय। शरीरके प्रति उपेक्षाभाव रखे। अन्न आदिका संग्रह न करे। मननशील रहे। ज्ञान-सम्पन्न होवे। कपाल (मिट्टी आदिका खप्पर) ही भोजनपात्र हो, वृक्षकी जड़ ही निवास-स्थान हो, लँगोटीके लिये मैला-कुचैला वस्त्र हो, साथमें कोई सहायक न हो तथा सबके प्रति समताका भाव हो—यह जीवन्मुक्त पुरुषका लक्षण है। न तो मरनेकी इच्छा करे, न जीनेकी—जीवन और मृत्युमेंसे किसीका अभिनन्दन न करे॥ १—५॥

जैसे सेवक अपने स्वामीकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार वह प्रारब्धवश प्राप्त होनेवाले काल (अन्तसमय)-की प्रतीक्षा करता रहे। मार्गपर दृष्टिपात करके पाँव रखे अर्थात् रास्तेमें कोई कीड़ा-मकोड़ा, हड्डी, केश आदि तो नहीं है, यह भलीभाँति देखकर पैर रखे। पानीको कपड़ेसे छानकर पीये। सत्यसे पवित्र की हुई वाणी बोले। मनसे दोष-गुणका विचार करके कोई कार्य करे। लौकी, काठ, मिट्टी तथा बाँस—ये ही संन्यासीके पात्र हैं। जब गृहस्थके घरसे धूआँ निकलना बंद हो गया हो, मुसल रख दिया गया हो, आग बुझ गयी हो, घरके सब लोग भोजन कर चुके हों और जूँठे शराव (मिट्टीके प्याले) फेंक दिये गये हों, ऐसे समयमें संन्यासी प्रतिदिन भिक्षाके लिये जाय। भिक्षा पाँच प्रकारकी मानी गयी है—मधुकरी (अनेक घरोंसे थोड़ा-थोड़ा अन्न माँग लाना), असंक्लृप्त (जिसके विषयमें पहलेसे कोई संकल्प या निश्चय न हो, ऐसी भिक्षा), प्राक्प्रणीत (पहलेसे तैयार रखी हुई भिक्षा), अयाचित (बिना माँगे जो अन्न प्राप्त हो जाय, वह) और तत्काल उपलब्ध (भोजनके समय स्वतःप्राप्त)। अथवा करपात्री होकर रहे—अर्थात् हाथहीमें लेकर भोजन करे और हाथमें ही पानी पीये। दूसरे किसी पात्रका उपयोग न करे। पात्रसे अपने हाथरूपी पात्रमें भिक्षा लेकर उसका उपयोग करे। मनुष्योंकी कर्मदोषसे प्राप्त होनेवाली यमयातना और नरकपात आदि गतिका चिन्तन करे॥ ६—१०॥

जिस किसी भी आश्रममें स्थित रहकर मनुष्यको शुद्धभावसे आश्रमोचित धर्मका पालन करना चाहिये। सब भूतोंमें समान भाव रखे। केवल आश्रम-चिह्न धारण कर लेना ही धर्मका हेतु नहीं है (उस आश्रमके लिये विहित कर्तव्यका

* तात्पर्य यह कि पीछे गृहस्थकी ओर न लौटकर आगे संन्यासकी दिशामें बढ़ता चले।

पालन करनेसे ही धर्मका अनुष्ठान होता है)। निर्मलीका फल यद्यपि पानीमें पड़नेपर उसे स्वच्छ बनानेवाला है, तथापि केवल उसका नाम लेनेमात्रसे जल स्वच्छ नहीं हो जाता। इसी प्रकार आश्रमके लिङ्ग धारणमात्रसे लाभ नहीं होता, विहित धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। अज्ञानवश संसार-बन्धनमें बँधा हुआ द्विज लँगड़ा, लूला, अंधा और बहरा क्यों न हो, यदि कुटिलतारहित संन्यासी हो जाय तो वह सत् और असत्—सबसे मुक्त हो जाता है। संन्यासी दिन या रातमें बिना जाने जिन जीवोंकी हिंसा करता है, उनके वधरूप पापसे शुद्ध होनेके लिये वह स्नान करके छः बार प्राणायाम करे। यह शरीररूपी गृह हड्डीरूपी खंभोंसे युक्त है, नाडीरूप रस्सियोंसे बँधा हुआ है, मांस तथा रक्तसे लिपा हुआ और चमड़ेसे छाया गया है। यह मल और मूत्रसे भरा हुआ होनेके कारण अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण है। इसमें बुढ़ापा तथा शोक व्याप्त हैं। यह अनेक रोगोंका घर और भूख-प्याससे आतुर रहनेवाला है। इसमें रजोगुणका प्रभाव अधिक है। यह अनित्य—विनाशशील एवं पृथिवी आदि पाँच भूतोंका निवास-स्थान है; विद्वान् पुरुष इसे त्याग दे—अर्थात् ऐसा प्रयत्न करे, जिससे फिर देहके बन्धनमें न आना पड़े॥ ११—१६॥

धृति, क्षमा, दम (मनोनिग्रह), चोरी न करना, बाहर-भीतरसे पवित्र रहना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, लज्जा*, विद्या, सत्य तथा अक्रोध (क्रोध न करना)—ये धर्मके दस लक्षण हैं। संन्यासी चार प्रकारके होते हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। इनमें जो-जो पिछला है, वह पहलेकी अपेक्षा उत्तम है। योगयुक्त संन्यासी पुरुष एकदण्डी हो या त्रिदण्डी, वह बन्धनसे मुक्त हो जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरीका अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संग्रह न रखना)—ये पाँच 'यम' हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरकी आराधना—ये पाँच 'नियम' हैं। योगयुक्त संन्यासीके लिये इन सबका पालन आवश्यक है। पद्मासन आदि आसनोंसे उसको बैठना चाहिये॥ १७—२०॥

प्राणायाम दो प्रकारका है—एक 'सगर्भ' और दूसरा 'अगर्भ'। मन्त्रजप और ध्यानसे युक्त प्राणायाम 'सगर्भ' कहलाता है और इसके विपरीत जप-ध्यानरहित प्राणायामको 'अगर्भ' कहते हैं। पूरक, कुम्भक तथा रेचकके भेदसे प्राणायाम तीन प्रकारका होता है। वायुको भीतर भरनेसे 'पूरक' प्राणायाम होता है, उसे स्थिरतापूर्वक रोकनेसे 'कुम्भक' होता है और फिर उस वायुको बाहर निकालनेसे 'रेचक' प्राणायाम कहा गया है। मात्राभेदसे भी वह तीन प्रकारका है—बारह मात्राका, चौबीस मात्राका तथा छत्तीस मात्राका। इसमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। ताल या ह्रस्व अक्षरको 'मात्रा' कहते हैं। प्राणायाममें 'प्रणव' आदि मन्त्रका धीरे-धीरे जप करे। इन्द्रियोंके संयमको 'प्रत्याहार' कहा गया है। जप करनेवाले साधकोंद्वारा जो ईश्वरका चिन्तन किया जाता है, उसे 'ध्यान' कहते हैं; मनको धारण करनेका नाम 'धारणा' है; ब्रह्ममें स्थितिको 'समाधि' कहते हैं॥ २१—२४॥

'यह आत्मा परब्रह्म है; ब्रह्म—सत्य, ज्ञान और अनन्त है; ब्रह्म विज्ञानमय तथा आनन्दस्वरूप है; वह ब्रह्म तू है; वह ब्रह्म मैं हूँ; परब्रह्म परमात्मा प्रकाशस्वरूप है; वही आत्मा है, वासुदेव है, नित्यमुक्त है; वही 'ओ३म्' शब्दवाच्य सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे रहित तथा जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति आदिसे मुक्त जो तुरीय तत्त्व है, वही

* मनुस्मृतिमें 'ह्रीः' के स्थानमें 'धीः' पाठ है। 'धी' का अर्थ है—शास्त्र आदिके तत्त्वका ज्ञान।

ब्रह्म है; वह नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप है; सत्य, आनन्दमय तथा अद्वैतरूप है; सर्वत्र व्यापक, अविनाशी ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म ही श्रीहरि है और वह मैं हूँ; आदित्यमण्डलमें जो वह ज्योतिर्मय पुरुष है, वह अखण्ड प्रणववाच्य परमेश्वर मैं हूँ'—इस प्रकारका सहज बोध ही ब्रह्ममें स्थितिका सूचक है॥ २५—२८½॥

जो सब प्रकारके आरम्भका त्यागी है—अर्थात् जो फलासक्ति एवं अहंकारपूर्वक किसी कर्मका आरम्भ नहीं करता—कर्तृत्वाभिमानसे शून्य होता है, दुःख-सुखमें समान रहता है, सबके प्रति क्षमाभाव रखनेवाला एवं सहनशील होता है, वह भावशुद्ध ज्ञानी मनुष्य ब्रह्माण्डका भेदन करके साक्षात् ब्रह्म हो जाता है। यतिको चाहिये कि वह आषाढ़की पूर्णिमाको चातुर्मास्यव्रत प्रारम्भ करे। फिर कार्तिक शुक्ला नवमी आदि तिथियोंसे विचरण करे। ऋतुओंकी संधिके दिन मुण्डन करावे। संन्यासियोंके लिये ध्यान तथा प्राणायाम ही प्रायश्चित्त है॥ २९—३१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'यतिधर्मका वर्णन' नामक एक सौ इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६१॥

एक सौ बासठवाँ अध्याय

धर्मशास्त्रका उपदेश

पुष्कर कहते हैं—मनु, विष्णु, याज्ञवल्क्य, हारीत, अत्रि, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शङ्ख और लिखित—इन सबने धर्मका जैसा उपदेश किया है, वैसा ही मैं भी संक्षेपसे कहूँगा, सुनो। यह धर्म भोग और मोक्ष देनेवाला है। वैदिक कर्म दो प्रकारका है—एक 'प्रवृत्त' और दूसरा 'निवृत्त'। कामनायुक्त कर्मको 'प्रवृत्तकर्म' कहते हैं। ज्ञानपूर्वक निष्कामभावसे जो कर्म किया जाता है, उसका नाम 'निवृत्तकर्म' है। वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा तथा गुरुसेवा—ये परम उत्तम कर्म निःश्रेयस (मोक्षरूप कल्याण)-के साधक हैं। इन सबमें भी आत्मज्ञान सबसे उत्तम बताया गया है॥ १—५॥

वह सम्पूर्ण विद्याओंमें श्रेष्ठ है। उससे अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। सम्पूर्ण भूतोंमें आत्माको और आत्मामें सम्पूर्ण भूतोंको समानभावसे देखते हुए जो आत्माका ही यजन (आराधन) करता है, वह स्वाराज्य—अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है। आत्मज्ञान तथा शम (मनोनिग्रह)-के लिये सदा यत्नशील रहना चाहिये। यह सामर्थ्य या अधिकार द्विजमात्रको—विशेषतः ब्राह्मणको प्राप्त है। जो वेद-शास्त्रके अर्थका तत्त्वज्ञ होकर जिस-किसी भी आश्रममें निवास करता है, वह इसी लोकमें रहते हुए ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। (यदि नया अन्न तैयार हो गया हो तो) श्रावण मासकी पूर्णिमाको अथवा श्रवणनक्षत्रसे युक्त दिनको अथवा हस्तनक्षत्रसे युक्त श्रावण शुक्ला पञ्चमीको अपनी शाखाके अनुकूल प्रचलित गृह्यसूत्रकी विधिके अनुसार वेदोंका नियमपूर्वक अध्ययन प्रारम्भ करे। यदि श्रावणमासमें नयी फसल तैयार न हो तो जब वह तैयार हो जाय तभी भाद्रपदमासमें श्रवणनक्षत्रयुक्त दिनको वेदोंका उपाकर्म करे। (और उस समयसे लेकर लगातार साढ़े चार मासतक वेदोंका अध्ययन चालू

रखे*।) फिर पौषमासमें रोहिणीनक्षत्रके दिन अथवा अष्टका तिथिको नगर या गाँवके बाहर जलके समीप अपने गृह्योक्त विधानसे वेदाध्ययनका उत्सर्ग (त्याग) करे। (यदि भाद्रपदमासमें वेदाध्ययन प्रारम्भ किया गया हो तो माघ शुक्ला प्रतिपदाको उत्सर्जन करना चाहिये—ऐसा मनुका (४।९७) कथन है।)॥ ६—१०½॥

शिष्य, ऋत्विज्, गुरु और बन्धुजन—इनकी मृत्यु होनेपर तीन दिनतक अध्ययन बंद रखना चाहिये। उपाकर्म (वेदाध्ययनका प्रारम्भ) और उत्सर्जन (अध्ययनकी समाप्ति) जिस दिन हो, उससे तीन दिनतक अध्ययन बंद रखना चाहिये। अपनी शाखाका अध्ययन करनेवाले विद्वान्‌की मृत्यु होनेपर भी तीन दिनोंतक अनध्याय रखना उचित है। संध्याकालमें, मेघकी गर्जना होनेपर, आकाशमें उत्पात-सूचक शब्द होनेपर, भूकम्प और उल्कापात होनेपर, मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदकी समाप्ति होनेपर तथा आरण्यकका अध्ययन करनेपर एक दिन और एक रात अध्ययन बंद रखना चाहिये। पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी तथा चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहणके दिन भी एक दिन-रातका अनध्याय रखना उचित है। दो ऋतुओंकी संधिमें आयी हुई प्रतिपदा तिथिको तथा श्राद्ध-भोजन एवं श्राद्धका प्रतिग्रह स्वीकार करनेपर भी एक दिन-रात अध्ययन बंद रखे। यदि स्वाध्याय करनेवालोंके बीचमें कोई पशु, मेढक, नेवला, कुत्ता, सर्प, बिलाव और चूहा आ जाय तो एक दिन-रातका अनध्याय होता है॥ ११—१४॥

जब इन्द्रध्वजकी पताका उतारी जाय, उस दिन तथा जब इन्द्रध्वज फहराया जाय, उस दिन भी पूरे दिन-रातका अनध्याय होना चाहिये। कुत्ता, सियार, गदहा, उल्लू, सामगान, बाँस तथा आर्त प्राणीका शब्द सुनायी देनेपर, अपवित्र वस्तु, मुर्दा, शूद्र, अन्त्यज, श्मशान और पतित मनुष्य—इनका सांनिध्य होनेपर, अशुभ ताराओंमें, बारंबार बिजली चमकने तथा बारंबार मेघ-गर्जना होनेपर तात्कालिक अनध्याय होता है। भोजन करके तथा गीले हाथ अध्ययन न करे। जलके भीतर, आधी रातके समय, अधिक आँधी चलनेपर भी अध्ययन बंद कर देना चाहिये। धूलकी वर्षा होनेपर, दिशाओंमें दाह होनेपर, दोनों संध्याओंके समय कुहासा पड़नेपर, चोर या राजा आदिका भय प्राप्त होनेपर तत्काल स्वाध्याय बंद कर देना चाहिये। दौड़ते समय अध्ययन न करे। किसी प्राणीपर प्राणबाधा उपस्थित होनेपर और अपने घर किसी श्रेष्ठ पुरुषके पधारनेपर भी अनध्याय रखना उचित है। गदहा, ऊँट, रथ आदि सवारी, हाथी, घोड़ा, नौका तथा वृक्ष आदिपर चढ़नेके समय और ऊसर या मरुभूमिमें स्थित होकर भी अध्ययन बंद रखना चाहिये। इन सैंतीस प्रकारके अनध्यायोंको तात्कालिक (केवल उसी समयके लिये आवश्यक) माना गया है॥ १५—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'धर्मशास्त्रका वर्णन' नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६२॥

एक सौ तिरसठवाँ अध्याय

श्राद्धकल्पका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुराम! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले श्राद्धकल्पका वर्णन करता हूँ, सावधान होकर श्रवण कीजिये। श्राद्धकर्ता पुरुष मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर, पवित्र हो, श्राद्धसे एक दिन पहले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। उन ब्राह्मणोंको भी

* मनुजीका कथन है—'यूकश्छर्दिरथाधीयीत मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्।' (मनु० ४।९५)

उसी समयसे मन, वाणी, शरीर तथा क्रियाद्वारा पूर्ण संयमशील रहना चाहिये। श्राद्धके दिन अपराह्णकालमें आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागतपूर्वक पूजन करे। स्वयं हाथमें कुशकी पवित्री धारण किये रहे। जब ब्राह्मणलोग आचमन कर लें, तब उन्हें आसनपर बिठाये। देवकार्यमें अपनी शक्तिके अनुसार युग्म (दो, चार, छः आदि संख्यावाले) और श्राद्धमें अयुग्म (एक, तीन, पाँच आदि संख्यावाले) ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। सब ओरसे घिरे हुए गोबर आदिसे लिपे-पुते पवित्र स्थानमें, जहाँ दक्षिण दिशाकी ओर भूमि कुछ नीची हो, श्राद्ध करना चाहिये। वैश्वदेव-श्राद्धमें दो ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बिठाये और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख। अथवा दोनोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही सम्मिलित करे। मातामहोंके श्राद्धमें भी ऐसा ही करना चाहिये। अर्थात् दो वैश्वदेव-श्राद्धमें और तीन मातामहादि-श्राद्धमें अथवा उभय पक्षमें एक-ही-एक ब्राह्मण रखे। वैश्वदेव-श्राद्धके लिये ब्राह्मणका हाथ धुलानेके निमित्त उसके हाथमें जल दे और आसनके लिये कुश दे। फिर ब्राह्मणसे पूछे—'मैं विश्वेदेवोंका आवाहन करना चाहता हूँ।' तब ब्राह्मण आज्ञा दें—'आवाहन करो।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर **'विश्वेदेवास आगत०'** (यजु० ७।३४) इत्यादि ऋचा पढ़कर विश्वेदेवोंका आवाहन करे। तब ब्राह्मणके समीपकी भूमिपर जौ बिखेरे। फिर पवित्रीयुक्त अर्घ्यपात्रमें **'शं नो देवी०'** (यजु० ३६।१२)—इस मन्त्रसे जल छोड़े। **'यवोऽसि०'**—इत्यादिसे जौ डाले। फिर बिना मन्त्रके ही गन्ध और पुष्प भी छोड़ दे। तत्पश्चात् **'या दिव्या आपः०'**—इस मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणके हाथमें संकल्पपूर्वक अर्घ्य दे और कहे—**'अमुकश्राद्धे विश्वेदेवाः इदं वो हस्तार्घ्यं नमः।'**—यों कहकर वह अर्घ्यजल कुशयुक्त ब्राह्मणके हाथमें या कुशापर गिरा दे। तत्पश्चात् हाथ धोनेके लिये जल देकर क्रमशः गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा आच्छादन-वस्त्र अर्पण करे। पुनः हस्त-शुद्धिके लिये जल दे। (विश्वेदेवोंको जो कुछ भी देना हो, वह सव्यभावसे उत्तराभिमुख होकर दे और पितरोंको प्रत्येक वस्तु अपसव्यभावसे दक्षिणाभिमुख होकर देनी चाहिये।) ॥ १—५½ ॥

वैश्वदेव-काण्डके अनन्तर यज्ञोपवीत अपसव्य करके पिता आदि तीनों पितरोंके लिये तीन द्विगुणभुग्न कुशोंको उनके आसनके लिये अप्रदक्षिण-क्रमसे दे। फिर पूर्ववत् ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर **'उशन्तस्त्वा०'** (यजु० १९।७०) इत्यादि मन्त्रसे पितरोंका आवाहन करके, **'आयन्तु नः०'** (यजु० १९।५८) इत्यादिका जप करे। **'अपहता असुरा रक्षाःसि वेदिषदः०'**—(यजु० २।२।८)'—यह मन्त्र पढ़कर सब ओर तिल बिखेरे। वैश्वदेवश्राद्धमें जो कार्य जौसे किया जाता है, वही पितृ-श्राद्धमें तिलसे करना चाहिये। अर्घ्य आदि पूर्ववत् करे। संस्रव (ब्राह्मणके हाथसे चूये हुए जल) पितृपात्रमें ग्रहण करके, भूमिपर दक्षिणाग्र कुश रखकर, उसके ऊपर उस पात्रको अधोमुख करके ढुलका दे और कहे—**'पितृभ्यः स्थानमसि।'** फिर उसके ऊपर अर्घ्यपात्र और पवित्र आदि रखकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि पितरोंको निवेदित करे। इसके बाद **'अग्नौकरण'** कर्म करे। घीसे तर किया हुआ अन्न लेकर ब्राह्मणोंसे पूछे—**'अग्नौ करिष्ये।'** (मैं अग्निमें इसकी आहुति दूँगा।) तब ब्राह्मण इसके लिये आज्ञा दें। इस प्रकार आज्ञा लेकर पितृ-यज्ञकी भाँति उस अन्नकी दो आहुति दे। [उस समय ये दो मन्त्र क्रमशः पढ़े—**'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा नमः। सोमाय पितृमते स्वाहा नमः।'** (यजु० २।२९)] फिर होमशेष अन्नको एकाग्रचित्त होकर यथाप्राप्त पात्रोंमें—विशेषतः चाँदीके पात्रोंमें परोसे। इस

प्रकार अन्न परोसकर, '**पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे०**' इत्यादि मन्त्र पढ़कर पात्रको अभिमन्त्रित करे। फिर '**इदं विष्णुः०**' (यजु० ५। १५) इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके अन्नमें ब्राह्मणके अँगूठेका स्पर्श कराये। तदनन्तर तीनों व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्र तथा '**मधुवाता०**' (यजु० १३। २७—२९)—इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करे और ब्राह्मणोंसे कहे—'आप सुखपूर्वक अन्न ग्रहण करें।' फिर वे ब्राह्मण भी मौन होकर प्रसन्नतापूर्वक भोजन करें। (उस समय यजमान क्रोध और उतावलीको त्याग दे और) जबतक ब्राह्मणलोग पूर्णतया तृप्त न हो जायँ, तबतक पूछ-पूछकर प्रिय अन्न और हविष्य उन्हें परोसता रहे। उस समय पूर्वोक्त मन्त्रोंका तथा '**पावमानी**' आदि ऋचाओंका जप या पाठ करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् अन्न लेकर ब्राह्मणोंसे पूछे—'क्या आप पूर्ण तृप्त हो गये?' ब्राह्मण कहें—'हाँ, हम तृप्त हो गये।' यजमान फिर पूछे 'शेष अन्नका क्या किया जाय?' ब्राह्मण कहें—'इष्टजनोंके साथ भोजन करो।' उनकी इस आज्ञाको 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकार करे। फिर हाथमें लिये हुए अन्नको ब्राह्मणोंके आगे उनकी जूठनके पास ही दक्षिणाग्र-कुश भूमिपर रखकर उन कुशोंपर तिल-जल छोड़कर रख दे। उस समय '**अग्निदग्धाश्च ये०**' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। फिर ब्राह्मणोंके हाथमें कुल्ला करनेके लिये एक-एक बार जल दे। फिर पिण्डके लिये तैयार किया हुआ सारा अन्न लेकर, दक्षिणाभिमुख हो, पितृयज्ञ-कल्पके अनुसार तिलसहित पिण्डदान करे। इसी प्रकार मातामह आदिके लिये पिण्ड दे। फिर ब्राह्मणोंके आचमनार्थ जल दे। तदनन्तर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और उनके हाथमें जल देकर उनसे प्रार्थनापूर्वक कहे—"आपलोग '**अक्षय्यमस्तु**' कहें।" तब ब्राह्मण '**अक्षय्यम् अस्तु**' बोलें। इसके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर कहे—'अब मैं स्वधा-वाचन कराऊँगा।' ब्राह्मण कहें—'स्वधा-वाचन कराओ।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर 'पितरों और मातामहादिके लिये आप यह स्वधा-वाचन करें'—ऐसा कहे। तब ब्राह्मण बोलें—'**अस्तु स्वधा।**' इसके अनन्तर पृथ्वीपर जल सींचे और '**विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्।**'—यों कहे। ब्राह्मण भी इस वाक्यको दुहरायें—'**प्रीयन्तां विश्वेदेवाः**'। तदनन्तर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे श्राद्धकर्ता निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्त्विति॥

'मेरे दाता बढ़ें। वेद और संतति बढ़े। हमारी श्रद्धा कम न हो और हमारे पास दानके लिये बहुत धन हो।'

—यह कहकर ब्राह्मणोंसे नम्रतापूर्वक प्रियवचन बोले और उन्हें प्रणाम करके विसर्जन करे—'**वाजे वाजे०**' (यजु० ९। १८) इत्यादि ऋचाओंको पढ़कर प्रसन्नतापूर्वक पितरोंका विसर्जन करे। पहले पितरोंका, फिर विश्वेदेवोंका विसर्जन करना चाहिये। पहले जिस अर्घ्यपात्रमें संस्रवका जल डाला गया था, उस पितृ-पात्रको उतान करके ब्राह्मणोंको बिदा करना चाहिये। ग्रामकी सीमातक ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे जाकर, उनके कहनेपर उनकी परिक्रमा करके लौटे और पितृसेवित श्राद्धान्नको इष्टजनोंके साथ भोजन करे। उस रात्रिमें यजमान और ब्राह्मण—दोनोंको ब्रह्मचारी रहना चाहिये॥ ६—२२॥

इसी प्रकार पुत्रजन्म और विवाहादि वृद्धिके अवसरोंपर प्रदक्षिणावृत्तिसे नान्दीमुख-पितरोंका यजन करे। दही और बेर मिले हुए अन्नका पिण्ड दे और तिलसे किये जानेवाले सब कार्य जौसे करे। एकोद्दिष्टश्राद्ध बिना वैश्वदेवके होता है। उसमें एक ही अर्घ्यपात्र तथा एक ही पवित्रक

दिया जाता है। इसमें आवाहन और अग्नौकरणकी क्रिया नहीं होती। सब कार्य जनेऊको अपसव्य रखकर किये जाते हैं। '**अक्षय्यमस्तु**' के स्थानमें '**उपतिष्ठताम्**' का प्रयोग करे। '**वाजे वाजे०**' इस मन्त्रसे ब्राह्मणका विसर्जन करते समय '**अभिरम्यताम्।**' कहे और ब्राह्मणलोग '**अभिरताः स्मः।**'—ऐसा उत्तर दें। सपिण्डीकरण-श्राद्धमें पूर्वोक्त विधिसे अर्घ्यसिद्धिके लिये गन्ध, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र तैयार करे। (इनमेंसे तीन तो पितरोंके पात्र हैं और एक प्रेतका पात्र होता है।) इनमें प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रोंमें डाले। उस समय '**ये समाना०**' इत्यादि दो मन्त्रोंका उच्चारण करे। शेष क्रिया पूर्ववत् करे। यह सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्टश्राद्ध माताके लिये भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरण-श्राद्ध वर्ष पूर्ण होनेसे पहले हो जाता है, उसके लिये एक वर्षतक ब्राह्मणको सान्नोदक कुम्भदान देते रहना चाहिये। एक वर्षतक प्रतिमास मृत्यु-तिथिको एकोद्दिष्ट करना चाहिये। फिर प्रत्येक वर्षमें एक बार क्षयाहतिथिको एकोद्दिष्ट करना उचित है। प्रथम एकोद्दिष्ट तो मरनेके बाद ग्यारहवें दिन किया जाता है। सभी श्राद्धोंमें पिण्डोंको गाय, बकरे अथवा लेनेकी इच्छावाले ब्राह्मणको दे देना चाहिये। अथवा उन्हें अग्निमें या अगाध जलमें डाल देना चाहिये। जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करके वहाँसे उठ न जायँ, तबतक उच्छिष्ट स्थानपर झाड़ू न लगाये। श्राद्धमें हविष्यान्नके दानसे एक मासतक और खीर देनेसे एक वर्षतक पितरोंकी तृप्ति बनी रहती है। भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीको, विशेषतः मघा नक्षत्रका योग होनेपर जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अक्षय होता है। एक चतुर्दशीको छोड़कर प्रतिपदासे अमावास्यातककी चौदह तिथियोंमें श्राद्धदान करनेवाला पुरुष क्रमशः इन चौदह फलोंको पाता है—रूपशीलयुक्त कन्या, बुद्धिमान् तथा रूपवान् दामाद, पशु, श्रेष्ठ पुत्र, द्यूत-विजय, खेतीमें लाभ, व्यापारमें लाभ, दो खुर और एक खुरवाले पशु, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न पुत्र, सुवर्ण, रजत, कुप्यक (त्रपु-सीसा आदि), जातियोंमें श्रेष्ठता और सम्पूर्ण मनोरथ। जो लोग शस्त्रद्वारा मारे गये हों, उन्हींके लिये उस चतुर्दशी तिथिको श्राद्ध प्रदान किया जाता है। स्वर्ग, संतान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्र, श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रधानता, शुभ, प्रवृत्त-चक्रता (अप्रतिहत शासन), वाणिज्य आदि, नीरोगता, यश, शोकहीनता, परम गति, धन, विद्या, चिकित्सामें सफलता, कुप्य (त्रपु-सीसा आदि), गौ, बकरी, भेड़, अश्व तथा आयु—इन सत्ताईस प्रकारके काम्य पदार्थोंको क्रमशः वही पाता है, जो कृत्तिकासे लेकर भरणीपर्यन्त प्रत्येक नक्षत्रमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है तथा आस्तिक, श्रद्धालु एवं मद-मात्सर्य आदि दोषोंसे रहित होता है। वसु, रुद्र और आदित्य—ये तीन प्रकारके पितर श्राद्धके देवता हैं। ये श्राद्धसे संतुष्ट किये जानेपर मनुष्योंके पितरोंको तृप्त करते हैं। जब पितर तृप्त होते हैं, तब वे मनुष्योंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख तथा राज्य प्रदान करते हैं॥ २३—४२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्राद्धकल्पका वर्णन' नामक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६३॥

एक सौ पैंसठवाँ अध्याय

विभिन्न धर्मोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! हृदयमें जो सर्वसमर्थ परमात्मा दीपकके समान प्रकाशित होते हैं, मन, बुद्धि और स्मृतिसे अन्य समस्त विषयोंका अभाव करके उनका ध्यान करना चाहिये। उनका ध्यान करनेवाले ब्राह्मणको ही श्राद्धके निमित्त दही, घी और दूध आदि गव्य पदार्थ प्रदान करे। प्रियङ्गु, मसूर, बैंगन और कोदोका भोजन न करावे। जब पर्व-संधिके समय राहु सूर्यको ग्रसता है, उस समय 'हस्तिच्छाया-योग' होता है, जिसमें किये हुए श्राद्ध और दान आदि शुभकर्म अक्षय होते हैं। जब चन्द्रमा मघा, हंस अथवा हस्त नक्षत्रपर स्थित हो, उसे 'वैवस्वती तिथि' कहते हैं। यह भी 'हस्तिच्छाया-योग' है। बलिवैश्वदेवमें अग्निमें होम करनेसे बचा हुआ अन्न बलिवैश्वदेवके मण्डलमें न डाले। अग्निके अभावमें वह अन्न ब्राह्मणके दाहिने हाथमें रखे। ब्राह्मण वेदोक्त कर्मसे तथा स्त्री व्यभिचारी पुरुषसे कभी दूषित नहीं होती। बलात्कारसे उपभोग की हुई और शत्रुके हाथमें पड़कर दूषित हुई स्त्रीका (ऋतुकाल-पर्यन्त) परित्याग करे। नारी ऋतु-दर्शन होनेपर शुद्ध हो जाती है। जो सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त एक आत्माके व्यतिरेकसे विश्वमें अभेदका दर्शन करता है, वही योगी, ब्रह्मके साथ एकीभावको प्राप्त, आत्मामें रमण करनेवाला और निष्पाप है। कुछ लोग इन्द्रियोंके विषयोंसे संयोगको ही 'योग' कहते हैं। उन मूर्खोंने तो अधर्मको ही धर्म मानकर ग्रहण कर रखा है। दूसरे लोग मन और आत्माके संयोगको ही 'योग' मानते हैं। मनको संसारके सब विषयोंसे हटाकर, क्षेत्रज्ञ परमात्मामें एकाकार करके योगी संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। यह उत्तम 'योग' है। पाँच इन्द्रिय-रूपी कुटुम्बोंसे 'ग्राम' होता है। छठा मन उसका 'मुखिया' है। वह देवता, असुर और मनुष्योंसे नहीं जीता जा सकता। पाँचों इन्द्रियाँ बहिर्मुख हैं। उन्हें आभ्यन्तरमुखी बनाकर इन्द्रियोंको मनमें और मनको आत्मामें निरुद्ध करे। फिर समस्त भावनाओंसे शून्य क्षेत्रज्ञ आत्माको परब्रह्म परमात्मामें लगावे। यही ज्ञान और ध्यान है। इसके विषयमें और जो कुछ भी कहा गया है, वह तो ग्रन्थका विस्तार-मात्र है॥ १—१३॥

'जो सब लोगोंके अनुभवमें नहीं है, वह है'—यों कहनेपर विरुद्ध (असंगत)-सा प्रतीत होता है और कहनेपर वह अन्य मनुष्योंके हृदयमें नहीं बैठता। जिस प्रकार कुमारी स्त्री-सुखको स्वयं अनुभव करनेपर ही जान सकती है, उसी प्रकार वह ब्रह्म स्वतः अनुभव करनेयोग्य है। योगरहित पुरुष उसे उसी प्रकार नहीं जानता, जैसे जन्मान्ध मनुष्य घड़ेको। ब्राह्मणको संन्यास-ग्रहण करते देख सूर्य यह सोचकर अपने स्थानसे विचलित हो जाता है कि 'यह मेरे मण्डलका भेदन करके परब्रह्मको प्राप्त होगा।' उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थ और तप—ये फलप्रद होते हैं, परंतु ये ब्राह्मणके द्वारा सम्पादित होनेपर सम्पन्न होते हैं और विहित फलकी प्राप्ति कराते हैं। 'प्रणव' परब्रह्म परमात्मा है, 'प्राणायाम' ही परम तप है और 'सावित्री'से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। वह परम पावन माना गया है। पहले क्रमशः सोम, गन्धर्व और अग्नि—ये तीन देवता समस्त स्त्रियोंका उपभोग करते हैं। फिर मनुष्य उनका उपभोग करते हैं। इससे स्त्रियाँ किसीसे दूषित नहीं होती हैं। यदि असवर्ण पुरुष नारीकी योनिमें गर्भाधान करता है, तो जबतक नारी गर्भका प्रसव नहीं करती, तबतक अशुद्ध मानी जाती है।

गर्भका प्रसव होनेके बाद रजोदर्शन होनेपर नारी शुद्ध हो जाती है। श्रीहरिके ध्यानके समान पापियोंकी शुद्धि करनेवाला कोई प्रायश्चित्त नहीं है। चण्डालके यहाँ भोजन करके भी ध्यान करनेसे शुद्धि हो जाती है। जो ब्राह्मण ऐसी भावना करता है कि "आत्मा 'ध्याता' है, मन 'ध्यान' है, विष्णु 'ध्येय' हैं, श्रीहरि उससे प्राप्त होनेवाले 'फल' हैं और अक्षयत्वकी प्राप्तिके लिये उसका 'विसर्जन' है", वह श्राद्धमें पङ्क्ति-पावनोंको भी पवित्र करनेवाला है। जो द्विज नैष्ठिक धर्ममें आरूढ़ होकर उससे च्युत हो जाता है, उस आत्मघातीके लिये मैं ऐसा कोई प्रायश्चित्त नहीं देखता, जिससे कि वह शुद्ध हो सके। जो अपनी पत्नी और पुत्रोंका (असहायावस्थामें) परित्याग करके संन्यास ग्रहण करते हैं, वे दूसरे जन्ममें 'विदुर'-संज्ञक चण्डाल होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तदनन्तर वह क्रमशः सौ वर्षतक गीध, बारह वर्षतक कुत्ता, बीस वर्षतक जलपक्षी और दस वर्षतक शूकरयोनिका भोग करता है। फिर वह पुष्प और फलोंसे रहित कँटीला वृक्ष होता है और दावाग्निसे दग्ध होकर अपना अनुगमन करनेवालोंके साथ ठूँठ होता है और इस अवस्थामें एक हजार वर्षतक चेतनारहित होकर पड़ा रहता है। एक हजार वर्ष बीतनेके बाद वह ब्रह्मराक्षस होता है। तदनन्तर योगरूपी नौकाका आश्रय लेनेसे अथवा कुलके उत्सादनद्वारा उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये योगका ही सेवन करे; क्योंकि पापोंसे छुटकारा दिलानेके लिये दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है॥ १४—२८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विभिन्न धर्मोंका वर्णन' नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६५॥

एक सौ छाछठवाँ अध्याय

वर्णाश्रम-धर्म आदिका वर्णन

पुष्कर कहते हैं— अब मैं श्रौत और स्मार्त-धर्मका वर्णन करता हूँ। वह पाँच प्रकारका माना गया है। वर्णमात्रका आश्रय लेकर जो अधिकार प्रवृत्त होता है, उसे 'वर्ण-धर्म' जानना चाहिये। जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णोंके लिये उपनयन-संस्कार आवश्यक है। यह 'वर्ण-धर्म' कहलाता है। आश्रमका अवलम्बन लेकर जिस पदार्थका संविधान होता है, वह 'आश्रम-धर्म' कहा गया है। जैसे भिन्न-पिण्डादिकका विधान होता है। जो विधि दोनोंके निमित्तसे प्रवर्तित होती है, उसको 'नैमित्तिक' मानना चाहिये। जैसे प्रायश्चित्तका विधान होता है॥ १—३½॥

राजन्! ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—इनसे सम्बन्धित धर्म 'आश्रम-धर्म' माना गया है। दूसरे प्रकारसे भी धर्मके पाँच भेद होते हैं। षाड्गुण्य (संधि-विग्रह आदि)-के अभिधानमें जिसकी प्रवृत्ति होती है, वह 'दृष्टार्थ' बतलाया गया है। उसके तीन भेद होते हैं। मन्त्र-यश-प्रभृति 'अदृष्टार्थ' हैं, ऐसा मनु आदि कहते हैं। इसके सिवा 'उभयार्थक व्यवहार', 'दण्डधारण' और 'तुल्यार्थ-विकल्प'—ये भी यज्ञमूलक धर्मके अङ्ग कहे गये हैं। वेदमें धर्मका जिस प्रकार प्रतिपादन किया गया है, स्मृतिमें भी वैसे ही है। कार्यके लिये स्मृति वेदोक्त धर्मका अनुवाद करती है—ऐसा मनु आदिका मत है।

इसलिये स्मृतियोंमें उक्त धर्म वेदोक्त धर्मका गुणार्थ, परिसंख्या, विशेषतः अनुवाद, विशेष दृष्टार्थ अथवा फलार्थ है, यह राजर्षि मनुका सिद्धान्त है॥ ४—८ ½॥

निम्नलिखित अड़तालीस संस्कारोंसे सम्पन्न मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है—(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) अन्नप्राशन, (७) चूडाकर्म, (८) उपनयन-संस्कार, (९—१२) चार वेदव्रत (वेदाध्ययन), (१३) स्नान (समावर्तन), (१४) सहधर्मिणी-संयोग (विवाह), (१५—१९) पञ्चयज्ञ—देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ, (२०—२६) सात पाक-यज्ञ-संस्था, (२७—३४) अष्टका—अष्टकासहित तीन पार्वण श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री और आश्वयुजी, (३५—४१) सात हविर्यज्ञ-संस्था—अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रहायणेष्टि, निरूढपशुबन्ध एवं सौत्रामणि, (४२—४८) सात सोम-संस्था—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम। आठ आत्मगुण हैं—दया, क्षमा, अनसूया, अनायास, माङ्गल्य, अकार्पण्य, अस्पृहा तथा शौच। जो इन गुणोंसे युक्त होता है, वह परमधाम (स्वर्ग)-को प्राप्त करता है॥ ९—१७ ½॥

मार्गगमन, मैथुन, मल-मूत्रोत्सर्ग, दन्तधावन, स्नान और भोजन—इन छः कार्योंको करते समय मौन धारण करना चाहिये। दान की हुई वस्तुका पुनः दान, पृथक्पाक, घृतके साथ जल पीना, दूधके साथ जल पीना, रात्रिमें जल पीना, दाँतसे नख आदि काटना एवं बहुत गरम जल पीना—इन सात बातोंका परित्याग कर देना चाहिये। स्नानके पश्चात् पुष्पचयन न करे; क्योंकि वे पुष्प देवताके चढ़ानेयोग्य नहीं माने गये हैं। यदि कोई अन्यगोत्रीय असम्बन्धी पुरुष किसी मृतकका अग्नि-संस्कार करता है तो उसे दस दिनतक पिण्ड तथा उदक-दानका कार्य भी पूर्ण करना चाहिये। जल, तृण, भस्म, द्वार एवं मार्ग—इनको बीचमें रखकर जानेसे पङ्क्तिदोष नहीं माना जाता। भोजनके पूर्व अनामिका और अङ्गुष्ठके संयोगसे पञ्चप्राणोंको आहुतियाँ देनी चाहिये॥ १८—२२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वर्णाश्रमधर्म आदिका वर्णन' नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६६॥

एक सौ सड़सठवाँ अध्याय

ग्रहोंके अयुत-लक्ष-कोटि हवनोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं शान्ति, समृद्धि एवं विजय आदिकी प्राप्तिके निमित्त ग्रहयज्ञका पुनः वर्णन करता हूँ। ग्रहयज्ञ 'अयुतहोमात्मक', 'लक्षहोमात्मक' और 'कोटिहोमात्मक'के भेदसे तीन प्रकारका होता है। अग्निकुण्डसे ईशानकोणमें निर्मित वेदिकापर मण्डल (अष्टदलपद्म) बनाकर उसमें ग्रहोंका आवाहन करे। उत्तर दिशामें गुरु, ईशानकोणमें बुध, पूर्वदलमें शुक्र, आग्नेयमें चन्द्रमा, दक्षिणमें भौम, मध्यभागमें सूर्य, पश्चिममें शनि, नैर्ऋत्यमें राहु और वायव्यमें केतुको अङ्कित करे। शिव, पार्वती, कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, काल और चित्रगुप्त—ये 'अधिदेवता' कहे गये हैं। अग्नि, वरुण, भूमि, विष्णु, इन्द्र, शचीदेवी, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये क्रमशः 'प्रत्यधिदेवता' हैं।* गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश तथा अश्विनीकुमार—

* विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें शिव आदिको 'प्रत्यधिदेवता' और अरुण आदिको 'अधिदेवता' माना गया है। उक्त पुराणमें अग्निके स्थानपर अरुण 'अधिदेवता' माने गये हैं।

ये 'कर्म-सादगुण्य-देवता' हैं। इन सबका वैदिक बीज-मन्त्रोंसे यजन करे। आक, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा तथा कुशा—ये क्रमशः नवग्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनको मधु, घृत एवं दधिसे संयुक्त करके शतसंख्यामें आठ बार होम करना चाहिये। एक, आठ और चार कुम्भ पूर्ण करके पूर्णाहुति एवं वसुधारा दे। फिर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। यजमानका चार कलशोंके जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक अभिषेक करे। (अभिषेकके समय यों कहना चाहिये—) 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर आदि देवता तुम्हारा अभिषेक करें। वासुदेव, जगन्नाथ, भगवान् संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तुम्हें विजय प्रदान करें। देवराज इन्द्र, भगवान् अग्नि, यमराज, निर्ऋति, वरुण, पवन, धनाध्यक्ष कुबेर, शिव, ब्रह्मा, शेषनाग एवं समस्त दिक्पाल सदा तुम्हारी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, तुष्टि और कान्ति—ये लोक-जननी धर्मकी पत्नियाँ तुम्हारा अभिषेक करें। आदित्य, चन्द्रमा, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, सूर्यपुत्र शनि, राहु तथा केतु—ये ग्रह परितृप्त होकर तुम्हारा अभिषेक करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मनु, गौएँ, देवमाताएँ, देवाङ्गनाएँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराओंके समूह, अस्त्र-शस्त्र, राजा, वाहन, ओषधियाँ, रत्न, काल-विभाग, नदी-नद, समुद्र, पर्वत, तीर्थ और मेघ—ये सब सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धिके लिये तुम्हारा अभिषेक करें'॥ १—१७½॥

तदनन्तर यजमान अलंकृत होकर सुवर्ण, गौ, अन्न और भूमि आदिका निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे दान करे—'कपिले रोहिणि! तुम समस्त देवताओंकी पूजनीया, तीर्थमयी तथा देवमयी हो; अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।[1] शङ्ख! तुम पुण्यमय पदार्थोंमें पुण्यस्वरूप हो, मङ्गलोंके भी मङ्गल हो, तुम सदा विष्णुके द्वारा धारण किये जाते हो, अतएव मुझे शान्ति दो[2]। धर्म! आप वृषरूपसे स्थित होकर जगत्‌को आनन्द प्रदान करते हैं। आप अष्टमूर्ति शिवके अधिष्ठान हैं, अतः मुझे शान्ति दीजिये[3]॥ १८—२१॥

'सुवर्ण! हिरण्यगर्भके गर्भमें तुम्हारी स्थिति है। तुम अग्निदेवके वीर्यसे उत्पन्न तथा अनन्त पुण्यफल वितरण करनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो[4]। पीताम्बर-युगल भगवान् वासुदेवको अत्यन्त प्रिय है; अतः इसके प्रदानसे भगवान् श्रीहरि मुझे शान्ति दें[5]। अश्व! तुम स्वरूपसे विष्णु हो; क्योंकि तुम अमृतके साथ उत्पन्न हुए हो। तुम सूर्य-चन्द्रका सदा संवहन करते हो; अतः मुझे शान्ति दो[6]। पृथिवी! तुम समग्ररूपमें धेनुरूपिणी हो। तुम केशवके समान समस्त पापोंका सदा अपहरण करती हो। इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो[7]। लौह! हल और आयुध आदि कार्य सर्वदा तुम्हारे अधीन हैं, अतः मुझे शान्ति दो[8]॥ २२—२६॥

'छाग! तुम यज्ञोंके अङ्गरूप होकर स्थित हो। तुम अग्निदेवके नित्य वाहन हो; अतएव मुझे

---

१. कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणि। तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ १९॥
२. पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्। विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २०॥
३. धर्म त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः। अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २१॥
४. हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २२॥
५. पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभम्। प्रदानात्तस्य वै विष्णुरतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २३॥
६. विष्णुस्त्वं अश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः। चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २४॥
७. यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा। सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २५॥
८. यस्मादायस कर्माणि तवाधीनानि सर्वदा। लाङ्गलाद्यायुधादीनि अतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २६॥

शान्तिसे संयुक्त करो[1]। चौदहों भुवन गौओंके अङ्गोंमें अधिष्ठित हैं। इसलिये मेरा इहलोक और परलोकमें भी मङ्गल हो[2]। जैसे केशव और शिवकी शय्या अशून्य है, उसी प्रकार शय्यादानके प्रभावसे जन्म-जन्ममें मेरी शय्या भी अशून्य रहे[3]। जैसे सभी रत्नोंमें समस्त देवता प्रतिष्ठित हैं, उसी प्रकार वे देवता रत्नदानके उपलक्ष्यमें मुझे शान्ति प्रदान करें[4]। अन्य दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं हैं, इसलिये भूमिदानके प्रभावसे मेरे पाप शान्त हो जायँ[5]॥ २७—३१॥

दक्षिणायुक्त अयुतहोमात्मक ग्रहयज्ञ युद्धमें विजय प्राप्त करानेवाला है। विवाह, उत्सव, यज्ञ, प्रतिष्ठादि कर्ममें इसका प्रयोग होता है। लक्षहोमात्मक और कोटिहोमात्मक—ये दोनों ग्रहयज्ञ सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करानेवाले हैं। अयुतहोमात्मक यज्ञके लिये गृहदेशमें यज्ञमण्डपका निर्माण करके उसमें हाथभर गहरा मेखलायोनियुक्त कुण्ड बनावे और चार ऋत्विजोंका वरण करे अथवा स्वयं अकेला सम्पूर्ण कार्य करे। लक्षहोमात्मक यज्ञमें पूर्वकी अपेक्षा सभी दसगुना होता है। इसमें चार हाथ या दो हाथ प्रमाणका कुण्ड बनाये। इसमें तार्क्ष्यका पूजन विशेष होता है। (तार्क्ष्य-पूजनका मन्त्र यह है—) 'तार्क्ष्य! सामध्वनि तुम्हारा शरीर है। तुम श्रीहरिके वाहन हो। विष-रोगको सदा दूर करनेवाले हो। अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो'॥ ३२—३५½॥

तदनन्तर कलशोंको पूर्ववत् अभिमन्त्रित करके लक्षहोमका अनुष्ठान करे। फिर 'वसुधारा' देकर शय्या एवं आभूषण आदिका दान करे। लक्षहोममें दस या आठ ऋत्विज् होने चाहिये। दक्षिणायुक्त लक्षहोमसे साधक पुत्र, अन्न, राज्य, विजय, भोग एवं मोक्ष आदि प्राप्त करता है। कोटि-होमात्मक ग्रहयज्ञ पूर्वोक्त फलोंके अतिरिक्त शत्रुओंका विनाश करनेवाला है। इसके लिये चार हाथ या आठ हाथ गहरा कुण्ड बनाये और बारह ऋत्विजोंका वरण करे। पटपर पच्चीस या सोलह तथा द्वारपर चार कलशोंकी स्थापना करे। कोटिहोम करनेवाला सम्पूर्ण कामनाओंसे संयुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है। ग्रह-मन्त्र, वैष्णव-मन्त्र, गायत्री मन्त्र, आग्नेय-मन्त्र, शैव-मन्त्र एवं प्रसिद्ध वैदिक-मन्त्रोंसे हवन करे। तिल, यव, घृत और धान्यका हवन करनेवाला अश्वमेधयज्ञके फलको प्राप्त करता है। विद्वेषण आदि अभिचार-कर्मोंमें त्रिकोण कुण्ड विहित है। इनमें रक्तवस्त्रधारी और उन्मुक्तकेश मन्त्रसाधकको शत्रुके विनाशका चिन्तन करते हुए, बाँयें हाथसे श्येन पक्षीकी लक्ष अस्थियोंसे युक्त समिधाओंका हवन करना चाहिये[6]। (हवनका मन्त्र इस प्रकार है—)

'दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो द्वेष्टि हुं फट्।'

फिर छुरेसे शत्रुकी प्रतिमाको काट डाले और पिष्टमय शत्रुका अग्निमें हवन करे। इस प्रकार जो अत्याचारी शत्रुके विनाशके लिये यज्ञ करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है॥ ३६—४४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ग्रहोंके अयुत-लक्ष-कोटि हवनोंका वर्णन' नामक एक सौ सड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६७॥

---

१. यस्मात्त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः। योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २७॥
२. गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च॥ २८॥
३. यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च। शय्या ममाप्यशून्यास्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि॥ २९॥
४. यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः। तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः॥ ३०॥
५. यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद् भवत्विह॥ ३१॥
६. यह 'विद्वेषण' तामस अभिचार-कर्म है। इसे तामस लोग ही किया करते हैं।

एक सौ अड़सठवाँ अध्याय

महापातकोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—जो मनुष्य पापोंका प्रायश्चित्त न करें, राजा उन्हें दण्ड दे। मनुष्यको अपने पापोंका इच्छासे अथवा अनिच्छासे भी प्रायश्चित्त करना चाहिये। उन्मत्त, क्रोधी और दुःखसे आतुर मनुष्यका अन्न कभी भोजन नहीं करना चाहिये। जिस अन्नका महापातकी ने स्पर्श कर लिया हो, जो रजस्वला स्त्रीद्वारा छूआ गया हो, उस अन्नका भी परित्याग कर देना चाहिये। ज्यौतिषी, गणिका, अधिक मुनाफा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय, गायक, अभिशस्त, नपुंसक, घरमें उपपतिको रखनेवाली स्त्री, धोबी, नृशंस, भाट, जुआरी, तपका आडम्बर करनेवाले, चोर, जल्लाद, कुण्डगोलक, स्त्रियोंद्वारा पराजित, वेदोंका विक्रय करनेवाले, नट, जुलाहे, कृतघ्न, लोहार, निषाद, रँगरेज, ढोंगी संन्यासी, कुलटा स्त्री, तेली, आरूढ-पतित और शत्रुके अन्नका सदैव परित्याग करे। इसी प्रकार ब्राह्मणके बिना बुलाये ब्राह्मणका अन्न भोजन न करे। शूद्रको तो निमन्त्रित होनेपर भी ब्राह्मणके अन्नका भोजन नहीं करना चाहिये। इनमेंसे बिना जाने किसीका अन्न खानेपर तीन दिनतक उपवास करे। जान-बूझकर खा लेनेपर 'कृच्छ्रव्रत' करे। वीर्य, मल, मूत्र तथा श्वपाक चाण्डालका अन्न खाकर 'चान्द्रायणव्रत' करे। मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे प्रदत्त, गायका सूँघा हुआ, शूद्र अथवा कुत्तेके द्वारा उच्छिष्ट किया हुआ तथा पतितका अन्न भक्षण करके 'तप्तकृच्छ्र' करे। किसीके यहाँ सूतक होनेपर जो उसका अन्न खाता है, वह भी अशुद्ध हो जाता है। इसलिये अशौचयुक्त मनुष्यका अन्न भक्षण करनेपर 'कृच्छ्रव्रत' करे। जिस कुएँमें पाँच नखोंवाला पशु मरा पड़ा हो, जो एक बार अपवित्र वस्तुसे युक्त हो चुका हो, उसका जल पीनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको तीन दिनतक उपवास रखना चाहिये। शूद्रको सभी प्रायश्चित्त एक चौथाई, वैश्यको दो चौथाई और क्षत्रियको तीन चौथाई करने चाहिये। ग्रामसूकर, गर्दभ, उष्ट्र, शृगाल, वानर और काक—इनके मल-मूत्रका भक्षण करनेपर ब्राह्मण 'चान्द्रायण-व्रत' करे। सूखा मांस, मृतक व्यक्तिके उद्देश्यसे दिया हुआ अन्न, करक तथा कच्चा मांस खानेवाले जीव, शूकर, उष्ट्र, शृगाल, वानर, काक, गौ, मनुष्य, अश्व, गर्दभ, छत्ता शाक, मुर्गे और हाथीका मांस खानेपर 'तप्तकृच्छ्र'से शुद्धि होती है। ब्रह्मचारी अमाश्राद्धमें भोजन, मधुपान अथवा लहसुन और गाजरका भक्षण करनेपर 'प्राजापत्यकृच्छ्र' से पवित्र होता है। अपने लिये पकाया हुआ मांस, पेलुगव्य (अण्डकोषका मांस), पेयूष (ब्यायी हुई गौ आदि पशुओंका सात दिनके अंदरका दूध), श्लेष्मातक (बहुवार), मिट्टी एवं दूषित खिचड़ी, लप्सी, खीर, पूआ और पूरी, यज्ञ-सम्बन्धी संस्कार-रहित मांस, देवताके निमित्त रखा हुआ अन्न और हवि—इनका भक्षण करनेपर 'चान्द्रायण-व्रत' करनेसे शुद्धि होती है। गाय, भैंस और बकरीके दूधके सिवा अन्य पशुओंके दुग्धका परित्याग करना चाहिये। इनके भी ब्यानेके दस दिनके अंदरका दूध काममें नहीं लेना चाहिये। अग्निहोत्रकी प्रज्वलित अग्निमें हवन करनेवाला ब्राह्मण यदि स्वेच्छापूर्वक जौ और गेहूँसे तैयार की हुई वस्तुओं, दूधके विकारों, वागषाड्गवचक्र आदि तथा तैल-घी आदि चिकने पदार्थोंसे संस्कृत बासी अन्नको खा ले तो उसे एक मासतक 'चान्द्रायणव्रत' करना चाहिये; क्योंकि वह दोष वीरहत्याके समान माना जाता है॥ १—२३॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुतल्पगमन—ये

'महापातक' कहे गये हैं। इन पापोंके करनेवाले मनुष्योंका संसर्ग भी 'महापातक' माना गया है। झूठको बढ़ावा देना, राजाके समीप किसीकी चुगली करना, गुरुपर झूठा दोषारोपण—ये 'ब्रह्महत्या'के समान हैं। अध्ययन किये हुए वेदका विस्मरण, वेदनिन्दा, झूठी गवाही, सुहृद्‌का वध, निन्दित अन्न एवं घृतका भक्षण—ये छः पाप सुरापानके समान माने गये हैं। धरोहरका अपहरण, मनुष्य, घोड़े, चाँदी, भूमि और हीरे आदि रत्नोंकी चोरी सुवर्णकी चोरीके समान मानी गयी है। सगोत्रा स्त्री, कुमारी कन्या, चाण्डाली, मित्रपत्नी और पुत्रवधू—इनमें वीर्यपात करना 'गुरुपत्नीगमन'के समान माना गया है। गोवध, अयोग्य व्यक्तिसे यज्ञ कराना, परस्त्रीगमन, अपनेको बेचना तथा गुरु, माता, पिता, पुत्र, स्वाध्याय एवं अग्निका परित्याग, परिवेत्ता अथवा परिविति होना—इन दोनोंमेंसे किसीको कन्यादान करना और इनका यज्ञ कराना, कन्याको दूषित करना, ब्याजसे जीविका-निर्वाह, व्रतभङ्ग, सरोवर, उद्यान, स्त्री एवं पुत्रको बेचना, समयपर यज्ञोपवीत ग्रहण न करना, बान्धवोंका त्याग, वेतन लेकर अध्यापन-कार्य करना, वेतनभोगी गुरुसे पढ़ना, न बेचनेयोग्य वस्तुको बेचना, सुवर्ण आदिकी खानका काम करना, विशाल यन्त्र चलाना, लता, गुल्म आदि ओषधियोंका नाश, स्त्रियोंके द्वारा जीविका उपार्जित करना, नित्य-नैमित्तिक कर्मका उल्लङ्घन, लकड़ीके लिये हरे-भरे वृक्षको काटना, अनेक स्त्रियोंका संग्रह, स्त्री-निन्दकोंका संसर्ग, केवल अपने स्वार्थके लिये सम्पूर्ण-कर्मोंका आरम्भ करना, निन्दित अन्नका भोजन, अग्निहोत्रका परित्याग, देवता, ऋषि और पितरोंका ऋण न चुकाना, असत् शास्त्रोंको पढ़ना, दुःशीलपरायण होना, व्यसनमें आसक्ति, धान्य, धातु और पशुओंकी चोरी, मद्यपान करनेवाली नारीसे समागम, स्त्री, शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रियका वध करना एवं नास्तिकता—ये सब 'उपपातक' हैं। ब्राह्मणको प्रहार करके रोगी बनाना, लहसुन और मद्य आदिको सूँघना, भिक्षासे निर्वाह करना, गुदामैथुन—ये सब 'जाति-भ्रंशकर पातक' बतलाये गये हैं। गर्दभ, घोड़ा, ऊँट, मृग, हाथी, भेंड़, बकरी, मछली, सर्प और नेवला—इनमेंसे किसीका वध 'संकरीकरण' कहलाता है। निन्दित मनुष्योंसे धनग्रहण, वाणिज्यवृत्ति, शूद्रकी सेवा एवं असत्य-भाषण—ये 'अपात्रीकरण पातक' माने जाते हैं। कृमि और कीटोंका वध, मद्ययुक्त भोजन, फल, काष्ठ और पुष्पकी चोरी तथा धैर्यका परित्याग—ये 'मलिनीकरण पातक' कहलाते हैं॥ २४—४०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'महापातक आदिका वर्णन' नामक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६८॥

एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्महत्या आदि विविध पापोंके प्रायश्चित्त

पुष्कर कहते हैं—अब मैं आपको इन सब पापोंके प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। ब्रह्महत्या करनेवाला अपनी शुद्धिके लिये भिक्षाका अन्न भोजन करते हुए एवं मृतकके सिरकी ध्वजा धारण करके, वनमें कुटी बनाकर, बारह वर्षतक निवास करे। अथवा नीचे मुख करके धधकती हुई आगमें तीन बार गिरे। अथवा अश्वमेधयज्ञ या स्वर्गपर विजय प्राप्त करानेवाले गोमेध यज्ञका अनुष्ठान करे। अथवा किसी एक वेदका पाठ करता हुआ सौ योजनतक जाय या अपना सर्वस्व वेदवेत्ता ब्राह्मणको

दान कर दे। महापातकी मनुष्य इन व्रतोंसे अपना पाप नष्ट कर डालते हैं॥ १—४॥

गोवध करनेवाला एवं उपपातकी एक मासतक यवपान करके रहे। वह सिरका मुण्डन कराकर उस गौका चर्म ओढ़े हुए गोशालामें निवास करे। दिनके चतुर्थ प्रहरमें लवणहीन अन्नका नियमित भोजन करे। फिर दो महीनोंतक इन्द्रियोंको वशमें करके नित्य गोमूत्रसे स्नान करे। दिनमें गौओंके पीछे-पीछे चले और खड़े होकर उनके खुरोंसे उड़ती हुई धूलिका पान करे। व्रतका पूर्णरूपसे अनुष्ठान करके एक बैलके साथ दस गौओंका दान करे। यदि इतना न दे सके तो वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको अपना सर्वस्व-दान कर दे। यदि रोकनेसे गौ मर जाय तो एक चौथाई प्रायश्चित्त, बाँधनेके कारण मर जाय तो आधा प्रायश्चित्त, जोतनेके कारण मर जाय तो तीन पाद प्रायश्चित्त और मारनेपर मर जाय तो पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये। वन, दुर्गम स्थान, ऊबड़-खाबड़ भूमि और भयप्रद स्थानमें गौकी मृत्यु हो जाय तो चौथाई प्रायश्चित्तका विधान है। आभूषणके लिये गलेमें घण्टा बाँधनेसे गौकी मृत्यु हो तो आधा प्रायश्चित्त करे। दमन करने, बाँधने, रोकने, गाड़ीमें जोतने, खूँटे, रस्सी अथवा फंदेमें बाँधनेपर यदि गौकी मृत्यु हो जाय तो तीन चरण प्रायश्चित्त करे। यदि गौका सींग अथवा हड्डी टूट जाय या पूँछ कट जाय तो जबतक गौ स्वस्थ न हो जाय, तबतक जौकी लप्सी खाकर रहे और गोमती विद्याका जप करे, गौकी स्तुति एवं गोमतीका स्मरण करे। यदि बहुत-से मनुष्योंके द्वारा एक गौ मारी जाय तो वे सब लोग अलग-अलग गोहत्याका एक-एक पाद प्रायश्चित्त करें। उपकार करते हुए यदि गौ मर जाय तो पाप नहीं लगता है॥ ५—१४॥

उपपातक करनेवालोंको भी इसी व्रतका आचरण करना चाहिये। 'अवकीर्णी'* को अपनी शुद्धिके लिये चान्द्रायण-व्रत करना चाहिये। अथवा अवकीर्णी रातके समय चौराहेपर जाकर पाकयज्ञके विधानसे निर्ऋतिके उद्देश्यसे काले गदहेका पूजन करे। तदनन्तर वह बुद्धिमान् ब्रह्मचारी अग्नि-संचयन करके अन्तमें '**समासिञ्चन्तु मरुतः**'—इस ऋचासे चन्द्रमा, इन्द्र, बृहस्पति और अग्निके उद्देश्यसे घृतकी आहुति दे। अथवा गर्दभका चर्म धारण करके एक वर्षतक पृथ्वीपर विचरण करे॥ १५—१७ $\frac{१}{२}$॥

अज्ञानसे भ्रूण-हत्या करनेपर ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे। मोहवश सुरापान करनेवाला द्विज अग्निके समान जलती हुई सुराका पान करे। अथवा तपाकर अग्निके समान रंगवाले गोमूत्र या जलका पान करे। सुवर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण राजाके पास जाकर अपने चौर्य-कर्मके विषयमें बतलाता हुआ कहे—'आप मुझे दण्ड दीजिये।' तब राजा मूसल लेकर अपने-आप आये हुए उस ब्राह्मणको एक बार मारे। इस प्रकार वध होनेसे अथवा तपस्या करनेसे सुवर्णकी चोरी करनेवाले ब्राह्मणकी शुद्धि होती है। गुरु-पत्नी-गमन करनेवाला स्वयं अपने लिङ्ग और अण्डकोषको काटकर उसे अञ्जलिमें ले, मरनेतक नैर्ऋत्यकोणकी ओर चलता जाय। अथवा इन्द्रियोंको संयममें रखकर तीन मासतक 'चान्द्रायण' व्रत करे। जान-बूझकर कोई-सा भी जाति-भ्रंशकर पातक करके 'सांतपनकृच्छ्र' और अज्ञानवश हो जानेपर 'प्राजापत्यकृच्छ्र' करे। संकरीकरण अथवा

---

*कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः। अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः॥ (मनु० ११।१२१)

'ब्रह्मचारि-व्रतमें स्थित द्विजका इच्छापूर्वक किसी स्त्रीमें वीर्यपात करना धर्मको जाननेवाले ब्रह्मवादियोंद्वारा व्रतका अतिक्रमण बताया गया है। ऐसा करनेवाले ब्रह्मचारीको ही 'अवकीर्णी' कहते हैं।'

अपात्रीकरण पातक करनेपर एक मासतक चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्धि होती है। मलिनीकरण पातक होनेपर तीन दिनतक तप्तयावकका पान करे। क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त विहित है। वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश, सदाचारी शूद्रका वध करनेपर षोडशांश प्रायश्चित्त करे। बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ, मेढक, कुत्ता, गोह, उलूक, काक अथवा चारोंमेंसे किसी वर्णकी स्त्रीकी हत्या होनेपर शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। स्त्रीकी अज्ञानवश हत्या करके भी शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। सर्पादिका वध होनेपर 'नक्तव्रत' और अस्थिहीन जीवोंकी हत्या होनेपर 'प्राणायाम' करे॥ १८—२८॥

दूसरेके घरसे अल्पमूल्यवाली वस्तुकी चोरी करके 'सांतपनकृच्छ्र' करे। व्रतके पूर्ण होनेपर शुद्धि होती है। भक्ष्य और भोज्य वस्तु, यान, शय्या, आसन, पुष्प, मूल और फलोंकी चोरीमें पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि होती है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखे अनाज, गुड़, वस्त्र, चर्म और मांसकी चोरी करनेपर तीन दिनतक भोजनका परित्याग करे। मणि, मोती, मूँगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा अथवा पत्थरकी चोरी करनेवाला बारह दिनतक अन्नका कणमात्र खाकर रहे। कपास, रेशम, ऊन तथा दो खुरवाले बैल आदि, एक खुरवाले घोड़े आदि पशु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य, औषध अथवा रस्सी चुरानेवाला तीन दिनतक दूध पीकर रहे॥ २९—३३॥

मित्रपत्नी, पुत्रवधू, कुमारी और चाण्डालीमें वीर्यपात करके गुरुपत्नी-गमनका प्रायश्चित्त करे। फुफेरी बहन, मौसेरी बहन और सगी ममेरी बहनसे गमन करनेवाला चान्द्रायण-व्रत करे। मनुष्येतर योनिमें, रजस्वला स्त्रीमें, योनिके सिवा अन्य स्थानमें अथवा जलमें वीर्यपात करनेवाला मनुष्य 'कृच्छ्रसांतपन-व्रत' करे। पुरुष अथवा स्त्रीके साथ बैलगाड़ीपर, जलमें या दिनके समय मैथुन करके ब्राह्मण वस्त्रोंसहित स्नान करे। चाण्डाल और अन्त्यज जातिकी स्त्रियोंसे अज्ञानवश समागम करके, उनका अन्न खाकर या उनका प्रतिग्रह स्वीकार करके ब्राह्मण पतित हो जाता है। जान-बूझकर ऐसा करनेसे वह उन्हींके समान हो जाता है। व्यभिचारिणी स्त्रीका पति उसे एक घरमें बंद करके रखे और परस्त्रीगामी पुरुषके लिये जो प्रायश्चित्त विहित है, वह उससे करावे। यदि वह स्त्री अपने समान जातिवाले पुरुषके द्वारा पुनः दूषित हो तो उसकी शुद्धि 'कृच्छ्र' और 'चान्द्रायण-व्रत' से बतलायी गयी है। जो ब्राह्मण एक रात वृषलीका सेवन करता है, वह तीन वर्षतक नित्य भिक्षान्नका भोजन और गायत्री-जप करनेपर शुद्ध होता है॥ ३४—४१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रायश्चित्तोंका वर्णन' नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६९॥

एक सौ सत्तरवाँ अध्याय

विभिन्न प्रायश्चित्तोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं— अब मैं महापातकियोंका संसर्ग करनेवाले मनुष्योंके लिये प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। पतितके साथ एक सवारीमें चलने, एक आसनपर बैठने, एक साथ भोजन करनेसे मनुष्य एक वर्षके बाद पतित होता है, परंतु उनको यज्ञ कराने, पढ़ाने एवं उनसे यौन-सम्बन्ध स्थापित करनेवाला तो तत्काल ही पतित हो जाता है। जो मनुष्य जिस पतितका संसर्ग करता है, वह उसके

संसर्गजनित दोषकी शुद्धिके लिये, उस पतितके लिये विहित प्रायश्चित्त करे। पतितके सपिण्ड और बान्धवोंको एक साथ निन्दित दिनमें, संध्याके समय, जाति-भाई, ऋत्विक् और गुरुजनोंके निकट, पतित पुरुषकी जीवितावस्थामें ही उसकी उदक-क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर जलसे भरे हुए घड़ेको दासीद्वारा लातसे फेंकवा दे और पतितके सपिण्ड एवं बान्धव एक दिन-रात अशौच मानें। उसके बाद वे पतितके साथ सम्भाषण न करें और धनमें उसे ज्येष्ठांश भी न दें। पतितका छोटा भाई गुणोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण ज्येष्ठांशका अधिकारी होता है। यदि पतित बादमें प्रायश्चित्त कर ले, तो उसके सपिण्ड और बान्धव उसके साथ पवित्र जलाशयमें स्नान करके जलसे भरे हुए नवीन कुम्भको जलमें फेंके। पतित स्त्रियोंके सम्बन्धमें भी यही कार्य करे; परंतु उसको अन्न, वस्त्र और घरके समीप रहनेका स्थान देना चाहिये॥ १—७½॥

जिन ब्राह्मणोंको समयपर विधिके अनुसार गायत्रीका उपदेश प्राप्त नहीं हुआ है, उनसे तीन प्राजापत्य कराकर उनका विधिवत् उपनयन-संस्कार करावे। निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेसे जिन ब्राह्मणोंका परित्याग कर दिया गया हो, उनके लिये भी इसी प्रायश्चित्तका उपदेश करे। ब्राह्मण संयतचित्त होकर तीन सहस्र गायत्रीका जप करके गोशालामें एक मासतक दूध पीकर निन्दित प्रतिग्रहके पापसे छूट जाता है। संस्कारहीन मनुष्योंका यज्ञ कराकर, गुरुजनोंके सिवा दूसरोंका अन्त्येष्टिकर्म, अभिचारकर्म अथवा अहीन यज्ञ कराकर ब्राह्मण तीन प्राजापत्य-व्रत करनेपर शुद्ध होता है। जो द्विज शरणागतका परित्याग करता है और अनधिकारीको वेदका उपदेश करता है, वह एक वर्षतक नियमित आहार करके उस पापसे मुक्त होता है॥ ८—१२॥

कुत्ता, सियार, गर्दभ, बिल्ली, नेवला, मनुष्य, घोड़ा, ऊँट और सूअरके द्वारा काटे जानेपर प्राणायाम करनेसे शुद्धि होती है। स्नातकके व्रतका लोप और नित्यकर्मका उल्लङ्घन होनेपर निराहार रहना चाहिये। यदि ब्राह्मणके लिये 'हुं' कार और अपनेसे श्रेष्ठके लिये 'तूं' का प्रयोग हो जाय, तो स्नान करके दिनके शेष भागमें उपवास रखे और अभिवादन करके उन्हें प्रसन्न करे। ब्राह्मणपर प्रहार करनेके लिये डंडा उठानेपर 'प्राजापत्य-व्रत' करे। यदि डंडेसे प्रहार कर दिया हो तो 'अतिकृच्छ्र' और यदि प्रहारसे ब्राह्मणके खून निकल आया हो तो 'कृच्छ्र' एवं 'अतिकृच्छ्रव्रत' करे। जिसके घरमें अनजानमें चाण्डाल आकर टिक गया हो तो भलीभाँति जाननेपर यथासमय उसका प्रायश्चित्त करे। 'चान्द्रायण' अथवा 'पराकव्रत' करनेसे द्विजोंकी शुद्धि होती है। शूद्रोंकी शुद्धि 'प्राजापत्य-व्रत'से हो जाती है, शेष कर्म उन्हें द्विजोंकी भाँति करने चाहिये। घरमें जो गुड़, कुसुम्भ, लवण एवं धान्य आदि पदार्थ हों, उन्हें द्वारपर एकत्रित करके अग्निदेवको समर्पित करे। मिट्टीके पात्रोंका त्याग कर देना चाहिये। शेष द्रव्योंकी शास्त्रीय विधिके अनुसार द्रव्यशुद्धि विहित है॥ १३—१९½॥

चाण्डालके स्पर्शसे दूषित एक कूएँका जल पीनेवाले जो ब्राह्मण हैं, वे उपवास अथवा पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध हो जाते हैं। जो द्विज इच्छानुसार चाण्डालका स्पर्श करके भोजन कर लेता है, उसे 'चान्द्रायण' अथवा 'तप्तकृच्छ्र' करना चाहिये। चाण्डाल आदि घृणित जातियोंके स्पर्शसे जिनके पात्र अपवित्र हो गये हैं, वे द्विज (उन पात्रोंमें भोजन एवं पान करके) 'षड्रात्रव्रत' करनेसे शुद्ध होते हैं। अन्त्यजका उच्छिष्ट खाकर द्विज 'चान्द्रायणव्रत' करे और शूद्र 'त्रिरात्र-व्रत' करे। जो द्विज चाण्डालोंके कूएँ या पात्रका जल

बिना जाने पी लेता है, वह 'सांतपनकृच्छ्र' करे एवं शूद्र ऐसा करनेपर एक दिन उपवास करे। जो द्विज चाण्डालका स्पर्श करके जल पी लेता है, उसे 'त्रिरात्र-व्रत' करना चाहिये और ऐसा करनेवाले शूद्रको एक दिनका उपवास करना चाहिये॥ २०—२५ ½॥

ब्राह्मण यदि उच्छिष्ट, कुत्ता अथवा शूद्रका स्पर्श कर दे, तो एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। वैश्य अथवा क्षत्रियका स्पर्श होनेपर स्नान और 'नक्तव्रत' करे। मार्गमें चलता हुआ ब्राह्मण यदि वन अथवा जलरहित प्रदेशमें पक्वान्न हाथमें लिये मल-मूत्रका त्याग कर देता है, तो उस द्रव्यको अलग न रखकर अपने अङ्कमें रखे हुए ही आचमन आदिसे पवित्र होकर अन्नका प्रोक्षण करके उसे सूर्य एवं अग्निको प्रदर्शित करे॥ २६—२९॥

जो प्रवासी मनुष्य म्लेच्छों, चोरोंके निवासभूत देश अथवा वनमें भोजन कर लेते हैं, अब मैं वर्णक्रमसे उनकी भक्ष्याभक्ष्यविषयक शुद्धिका उपाय बतलाता हूँ। ऐसा करनेवाले ब्राह्मणको अपने गाँवमें आकर 'पूर्णकृच्छ्र', क्षत्रियको तीन चरण और वैश्यको आधा व्रत करके पुनः अपना संस्कार कराना चाहिये। एक चौथाई व्रत करके दान देनेसे शूद्रकी भी शुद्धि होती है॥ ३०—३२॥

यदि किसी स्त्रीका समान वर्णवाली रजस्वला स्त्रीसे स्पर्श हो जाय तो वह उसी दिन स्नान करके शुद्ध हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। अपनेसे निकृष्ट जातिवाली रजस्वलाका स्पर्श करके रजस्वला स्त्रीको तबतक भोजन नहीं करना चाहिये, जबतक कि वह शुद्ध नहीं हो जाती। उसकी शुद्धि चौथे दिनके शुद्ध स्नानसे ही होती है। यदि कोई द्विज मूत्रत्याग करके मार्गमें चलता हुआ भूलकर जल पी ले, तो वह एक दिन-रात उपवास रखकर पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध होता है। जो मूत्र त्याग करनेके पश्चात् आचमनादि शौच न करके मोहवश भोजन कर लेता है, वह तीन दिनतक यवपान करनेसे शुद्ध होता है॥ ३३—३६॥

जो ब्राह्मण संन्यास आदिकी दीक्षा लेकर गृहस्थाश्रमका परित्याग कर चुके हों और पुनः संन्यासाश्रमसे गृहस्थाश्रममें लौटना चाहते हों, अब मैं उनकी शुद्धिके विषयमें कहता हूँ। उनसे तीन 'प्राजापत्य' अथवा 'चान्द्रायण-व्रत' कराने चाहिये। फिर उनके जातकर्म आदि संस्कार पुनः कराने चाहिये॥ ३७-३८॥

जिसके मुखसे जूते या किसी अपवित्र वस्तुका स्पर्श हो जाय, उसकी मिट्टी और गोबरके लेपन तथा पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि होती है। नीलकी खेती, विक्रय और नीले वस्त्र आदिका धारण—ये ब्राह्मणका पतन करनेवाले हैं। इन दोषोंसे युक्त ब्राह्मणकी तीन 'प्राजापत्यव्रत' करनेसे शुद्धि होती है। यदि रजस्वला स्त्रीको अन्त्यज या चाण्डाल छू जाय तो 'त्रिरात्र-व्रत' करनेसे चौथे दिन उसकी शुद्धि होती है। चाण्डाल, श्वपाक, मज्जा, सूतिका स्त्री, शव और शवका स्पर्श करनेवाले मनुष्यको छूनेपर तत्काल स्नान करनेसे शुद्धि होती है। मनुष्यकी अस्थिका स्पर्श होनेपर तैल लगाकर स्नान करनेसे ब्राह्मण विशुद्ध हो जाता है। गलीके कीचड़के छींटे लग जानेपर नाभिके नीचेका भाग मिट्टी और जलसे धोकर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। वमन अथवा विरेचनके बाद स्नान करके घृतका प्राशन करनेसे शुद्धि होती है। स्नानके बाद क्षौरकर्म करनेवाला और ग्रहणके समय भोजन करनेवाला 'प्राजापत्यव्रत' करनेसे शुद्ध होता है। पङ्क्तिदूषक मनुष्योंके साथ पङ्क्तिमें बैठकर भोजन करनेवाला, कुत्ते अथवा कीटसे दंशित मनुष्य पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि

पूर्णिमा)-को उपवास रखे। फिर पञ्चगव्यपान करके हविष्यान्नका भोजन करे। यह 'ब्रह्मकूर्च-व्रत' होता है। इस व्रतको एक मासमें दो बार करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य धन, पुष्टि, स्वर्ग एवं पापनाशकी कामनासे देवताओंका आराधन और कृच्छ्रव्रत करता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ १—१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गुप्त पापोंके प्रायश्चित्तका वर्णन' नामक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७१॥

एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय

समस्त पापनाशक स्तोत्र

पुष्कर कहते हैं—जब मनुष्योंका चित्त परस्त्रीगमन, परस्वापहरण एवं जीवहिंसा आदि पापोंमें प्रवृत्त होता है, तो स्तुति करनेसे उसका प्रायश्चित्त होता है। (उस समय निम्नलिखित प्रकारसे भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करे—) "सर्वव्यापी विष्णुको सदा नमस्कार है। श्रीहरि विष्णुको नमस्कार है। मैं अपने चित्तमें स्थित सर्वव्यापी, अहंकारशून्य श्रीहरिको नमस्कार करता हूँ। मैं अपने मानसमें विराजमान अव्यक्त, अनन्त और अपराजित परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। सबके पूजनीय, जन्म और मरणसे रहित, प्रभावशाली श्रीविष्णुको नमस्कार है। विष्णु मेरे चित्तमें निवास करते हैं, विष्णु मेरी बुद्धिमें विराजमान हैं, विष्णु मेरे अहंकारमें प्रतिष्ठित हैं और विष्णु मुझमें भी स्थित हैं। वे श्रीविष्णु ही चराचर प्राणियोंके कर्मोंके रूपमें स्थित हैं, उनके चिन्तनसे मेरे पापका विनाश हो। जो ध्यान करनेपर पापोंका हरण करते हैं और भावना करनेसे स्वप्नमें दर्शन देते हैं, इन्द्रके अनुज, शरणागतजनोंका दुःख दूर करनेवाले उन पापापहारी श्रीविष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं इस निराधार जगत्‌में अज्ञानान्धकारमें डूबते हुएको हाथका सहारा देनेवाले परात्परस्वरूप श्रीविष्णुके सम्मुख प्रणत होता हूँ। सर्वेश्वरेश्वर प्रभो! कमलनयन परमात्मन्! हृषीकेश! आपको नमस्कार है। इन्द्रियोंके स्वामी श्रीविष्णो! आपको नमस्कार है। नृसिंह! अनन्तस्वरूप गोविन्द! समस्त भूत-प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले केशव! मेरे द्वारा जो दुर्वचन कहा गया हो अथवा पापपूर्ण चिन्तन किया गया हो, मेरे उस पापका प्रशमन कीजिये; आपको नमस्कार है। केशव! अपने मनके वशमें होकर मैंने जो न करनेयोग्य अत्यन्त उग्र पापपूर्ण चिन्तन किया है, उसे शान्त कीजिये। परमार्थपरायण ब्राह्मणप्रिय गोविन्द! अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले जगन्नाथ! जगत्‌का भरण-पोषण करनेवाले देवेश्वर! मेरे पापका विनाश कीजिये। मैंने मध्याह्न, अपराह्न, सायंकाल एवं रात्रिके समय, जानते हुए अथवा अनजाने, शरीर, मन एवं वाणीके द्वारा जो पाप किया हो; **'पुण्डरीकाक्ष'**, **'हृषीकेश'**, **'माधव'**— आपके इन तीन नामोंके उच्चारणसे मेरे वे सब पाप क्षीण हो जायँ। कमलनयन लक्ष्मीपते! इन्द्रियोंके स्वामी माधव! आज आप मेरे शरीर एवं वाणीद्वारा किये हुए पापोंका हनन कीजिये। आज मैंने खाते, सोते, खड़े, चलते अथवा जागते हुए मन, वाणी और शरीरसे जो भी नीच योनि एवं नरककी प्राप्ति करानेवाला सूक्ष्म अथवा स्थूल पाप किया हो, भगवान् वासुदेवके नामोच्चारणसे वे सब विनष्ट हो जायँ। जो परब्रह्म, परमधाम और परम पवित्र हैं, उन श्रीविष्णुके संकीर्तनसे मेरे पाप लुप्त हो जायँ। जिसको प्राप्त होकर ज्ञानीजन पुनः

लौटकर नहीं आते, जो गन्ध, स्पर्श आदि तन्मात्राओंसे रहित है; श्रीविष्णुका वह परमपद मेरे पापोंका शमन करे'[1] ॥ १—१८ ॥

जो मनुष्य पापोंका विनाश करनेवाले इस स्तोत्रका पठन अथवा श्रवण करता है, वह शरीर, मन और वाणीजनित समस्त पापोंसे छूट जाता है एवं समस्त पापग्रहोंसे मुक्त होकर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। इसलिये किसी भी पापके हो जानेपर इस स्तोत्रका जप करे। यह स्तोत्र पापसमूहोंके प्रायश्चित्तके समान है। कृच्छ्र आदि व्रत करनेवालेके लिये भी यह श्रेष्ठ है। स्तोत्र-जप और व्रतरूप प्रायश्चित्तसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये इनका अनुष्ठान करना चाहिये[2] ॥ १९—२१ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'समस्तपापनाशक स्तोत्रका वर्णन' नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७२ ॥

एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय

अनेकविध प्रायश्चित्तोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं ब्रह्माके द्वारा वर्णित पापोंका नाश करनेवाले प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। जिससे प्राणोंका शरीरसे वियोग हो जाय, उस कार्यको 'हनन' कहते हैं। जो राग, द्वेष अथवा प्रमादवश दूसरेके द्वारा या स्वयं ब्राह्मणका वध करता है, वह 'ब्रह्मघाती' होता है। यदि एक कार्यमें तत्पर बहुत-से शस्त्रधारी मनुष्योंमें कोई एक ब्राह्मणका वध करता है, तो वे सब-के-सब 'घातक' माने जाते हैं। ब्राह्मण किसीके द्वारा निन्दित होनेपर, मारा जानेपर या बन्धनसे पीड़ित

---

१. विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः । नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतिं हरिम् ॥
चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तामपराजितम् । विष्णुमीड्यमरूपेण अनादिनिधनं विभुम् ॥
विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत् । यच्चाहंकारगो विष्णुर्विष्णुर्मयि संस्थितः ॥
करोति कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च । तत् पापं नाशमायातु तस्मिन्नेव हि चिन्तिते ॥
ध्यातो हरति यत् पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात् । तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतार्तिहरं हरिम् ॥
जगत्यस्मिन्थिराधारे मज्जमाने तमस्यधः । हस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणमामि परात्परम् ॥
सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज । हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥
नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव । दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाशु नमोऽस्तु ते ॥
यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना । अकार्यं महदत्युग्रं तच्छमं नय केशव ॥
ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण । जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युत ॥
यथापराह्णे सायाह्णे मध्याह्ने च तथा निशि । कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव । नामत्रयोच्चारणतः पापं यातु मम क्षयम् ॥
शरीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव । पापं प्रशमयाद्य त्वं वाक्कृतं मम माधव ॥
यद् भुञ्जन् यत् स्वपंस्तिष्ठन् गच्छन् जाग्रद् यदास्थितः । कृतवान् पापमद्याहं कायेन मनसा गिरा ॥
यत् स्वल्पमपि यत् स्थूलं कुयोनिनरकावहम् । तद् यातु प्रशमं सर्वं वासुदेवानुकीर्तनात् ॥
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं च यत् । तस्मिन् प्रकीर्तिते विष्णौ यत् पापं तत् प्रणश्यतु ॥
यत् प्राप्य न निवर्तन्ते गन्धस्पर्शादिवर्जितम् । सूरयस्तत् पदं विष्णोस्तत् सर्वं शमयत्वघम् ॥

(अग्निपुराण १७२ । २—१८)

२. पापप्रणाशनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयादपि । शारीरैर्मानसैर्वाग्जैः कृतैः पापैः प्रमुच्यते ॥
सर्वपापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम् । तस्मात् पापे कृते जप्यं स्तोत्रं सर्वाघमर्दनम् ॥
प्रायश्चित्तमघौघानां स्तोत्रं व्रतकृते वरम् । प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्व्रतैर्नश्यति पातकम् ॥

(अग्निपुराण १७२ । १९—२१)

होनेपर जिसके उद्देश्यसे प्राणोंका परित्याग कर देता है, उसे 'ब्रह्महत्यारा' माना गया है। औषधोपचार आदि उपकार करनेपर किसीकी मृत्यु हो जाय तो उसे पाप नहीं होता। पुत्र, शिष्य अथवा पत्नीको दण्ड देनेपर उनकी मृत्यु हो जाय, उस दशामें भी दोष नहीं होता। जिन पापोंसे मुक्त होनेका उपाय नहीं बतलाया गया है, देश, काल, अवस्था, शक्ति और पापका विचार करके यत्नपूर्वक प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनी चाहिये। गौ अथवा ब्राह्मणके लिये तत्काल अपने प्राणोंका परित्याग कर दे, अथवा अग्निमें अपने शरीरकी आहुति दे डाले तो मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्महत्यारा मृतकके सिरका कपाल और ध्वज लेकर भिक्षान्नका भोजन करता हुआ 'मैंने ब्राह्मणका वध किया है'—इस प्रकार अपने पापकर्मको प्रकाशित करे। वह बारह वर्षतक नियमित भोजन करके शुद्ध होता है। अथवा शुद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाला ब्रह्मघाती मनुष्य छः वर्षोंमें ही पवित्र हो जाता है। अज्ञानवश पापकर्म करनेवालोंकी अपेक्षा जान-बूझकर पाप करनेवालेके लिये दुगुना प्रायश्चित्त विहित है। ब्राह्मणके वधमें प्रवृत्त होनेपर तीन वर्षतक प्रायश्चित्त करे। ब्रह्मघाती क्षत्रियको दुगुना तथा वैश्य एवं शूद्रको छःगुना प्रायश्चित्त करना चाहिये। अन्य पापोंका ब्राह्मणको सम्पूर्ण, क्षत्रियको तीन चरण, वैश्यको आधा और शूद्र, वृद्ध, स्त्री, बालक एवं रोगीको एक चरण प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ १—११॥

क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका एकपाद, वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश और सदाचारपरायण शूद्रका वध करनेपर षोडशांश प्रायश्चित्त माना गया है। सदाचारिणी स्त्रीकी हत्या करके शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। गोहत्यारा संयतचित्त होकर एक मासतक गोशालामें शयन करे, गौओंका अनुगमन करे और पञ्चगव्य पीकर रहे। फिर गोदान करनेसे वह शुद्ध हो जाता है। 'कृच्छ्र' अथवा 'अतिकृच्छ्र' कोई भी व्रत हो, क्षत्रियोंको उसके तीन चरणोंका अनुष्ठान करना चाहिये। अत्यन्त बूढ़ी, अत्यन्त कृश, बहुत छोटी उम्रवाली अथवा रोगिणी स्त्रीकी हत्या करके द्विज पूर्वोक्त विधिके अनुसार ब्रह्महत्याका आधा प्रायश्चित्त करे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और यथाशक्ति तिल एवं सुवर्णका दान करे। मुक्के या थप्पड़के प्रहारसे, सींग तोड़नेसे और लाठी आदिसे मारनेपर यदि गौ मर जाय तो उसे 'गोवध' कहा जाता है। मारने, बाँधने, गाड़ी आदिमें जोतने, रोकने अथवा रस्सीका फंदा लगानेसे गौकी मृत्यु हो जाय तो तीन चरण प्रायश्चित्त करे। काठसे गोवध करनेवाला 'सांतपनव्रत', ढेलेसे मारनेवाला 'प्राजापत्य', पत्थरसे हत्या करनेवाला 'तप्तकृच्छ्र' और शस्त्रसे वध करनेवाला 'अतिकृच्छ्र' करे। बिल्ली, गोह, नेवला, मेढक, कुत्ता अथवा पक्षीकी हत्या करके तीन दिन दूध पीकर रहे; अथवा 'प्राजापत्य' या 'चान्द्रायण' व्रत करे॥ १२—१९½॥

गुप्त पाप होनेपर गुप्त और प्रकट पाप होनेपर प्रकट प्रायश्चित्त करे। समस्त पापोंके विनाशके लिये सौ प्राणायाम करे। कटहल, द्राक्षा, महुआ, खजूर, ताड़, ईख और मुनक्केका रस तथा टंकमाध्वीक, मैरेय और नारियलका रस—ये मादक होते हुए भी मद्य नहीं हैं। पैटी ही मुख्य सुरा मानी गयी है। ये सब मदिराएँ द्विजोंके लिये निषिद्ध हैं। सुरापान करनेवाला खौलता हुआ जल पीकर शुद्ध होता है। अथवा सुरापानके पापसे मुक्त होनेके लिये एक वर्षतक जटा एवं ध्वजा धारण किये हुए वनमें निवास करे। नित्य रात्रिके समय एक बार चावलके कण या तिलकी खलीका भोजन करे। अज्ञानवश मल-मूत्र अथवा मदिरासे छूये हुए पदार्थका भक्षण करके ब्राह्मण,

श्रीलक्ष्मीजी [अग्नि० अ० ५०]

श्रीसरस्वतीजी [अग्नि० अ० ५०]

श्रीगङ्गाजी [अग्नि० अ० ५०]

श्रीयमुनाजी [अग्नि० अ० ५०]

क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्णोंके लोग पुनः संस्कारके योग्य हो जाते हैं। सुरापात्रमें रखा हुआ जल पीकर सात दिन व्रत करे। चाण्डालका जल पीकर छः दिन उपवास रखे तथा चाण्डालोंके कूएँ अथवा पात्रका पानी पीकर 'सांतपन-व्रत' करे। अन्त्यजका जल पीकर द्विज तीन रात उपवास रखकर पञ्चगव्यका पान करे। नवीन जल या जलके साथ मत्स्य, कण्टक, शम्बूक, शङ्ख, सीप और कौड़ी पीनेपर पञ्चगव्यका आचमन करनेसे शुद्धि होती है। शवयुक्त कूपका जल पीनेपर मनुष्य 'त्रिरात्रव्रत' करनेसे शुद्ध होता है। चाण्डालका अन्न खाकर 'चान्द्रायणव्रत' करे। आपत्कालमें शूद्रके घर भोजन करनेपर पश्चात्तापसे शुद्धि हो जाती है। शूद्रके पात्रमें भोजन करनेवाला ब्राह्मण उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। कन्दुपक्व (भूजा), स्नेहपक्व (घी-तैलमें पके पदार्थ), घी-तैल, दही, सत्तू, गुड़, दूध और रस आदि—ये वस्तुएँ शूद्रके घरसे ली जानेपर भी निन्दित नहीं हैं। बिना स्नान किये भोजन करनेवाला एक दिन उपवास रखकर दिनभर जप करनेसे पवित्र होता है। मूत्र-त्याग करके अशौचावस्थामें भोजन करनेपर 'त्रिरात्रव्रतसे' शुद्धि होती है। केश एवं कीटसे युक्त, जान-बूझकर पैरसे छूआ हुआ, भ्रूणघातीका देखा हुआ, रजस्वला स्त्रीका छूआ हुआ, कौए आदि पक्षियोंका जूठा किया हुआ, कुत्तेका स्पर्श किया हुआ अथवा गौका सूँघा हुआ अन्न खाकर तीन दिन उपवास करे। वीर्य, मल या मूत्रका भक्षण करनेपर 'प्राजापत्य-व्रत' करे। नवश्राद्धमें 'चान्द्रायण', मासिक श्राद्धमें 'पराकव्रत', त्रिपाक्षिक श्राद्धमें 'अतिकृच्छ्र', षाण्मासिक श्राद्धमें 'प्राजापत्य' और वार्षिक श्राद्धमें 'एकपाद प्राजापत्य-व्रत' करे। पहले और दूसरे दोनों दिन वार्षिक श्राद्ध हो तो दूसरे वार्षिक श्राद्धमें एक दिनका उपवास करे। निषिद्ध वस्तुका भक्षण करनेपर उपवास करके प्रायश्चित्त करे। भूतृण (छत्राक), लहसुन और शिग्रुक् (श्वेत मरिच) खा लेनेपर 'एकपाद प्राजापत्य' करे। अभोज्यान्न, शूद्रका अन्न, स्त्री एवं शूद्रका उच्छिष्ट या अभक्ष्य मांसका भक्षण करके सात दिन केवल दूध पीकर रहे। जो ब्रह्मचारी, संन्यासी अथवा व्रतस्थ द्विज मधु, मांस या जननाशौच एवं मरणाशौचका अन्न भोजन कर लेता है, वह 'प्राजापत्य-कृच्छ्र' करे॥ २०—३९॥

अन्यायपूर्वक दूसरेका धन हड़प लेनेको 'चोरी' कहते हैं। सुवर्णकी चोरी करनेवाला राजाके द्वारा मूसलसे मारे जानेपर शुद्ध होता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला, सुरापान करनेवाला, ब्रह्मघाती और गुरुपत्नीगामी बारह वर्षतक भूमिपर शयन और जटा धारण करे। वह एक समय केवल पत्ते और फल-मूलका भोजन करनेसे शुद्ध होता है। चोरी अथवा सुरापान करके एक वर्षतक 'प्राजापत्य-व्रत' करे। मणि, मोती, मूँगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा और पत्थरकी चोरी करनेवाला बारह दिन चावलके कण खाकर रहे। मनुष्य, स्त्री, क्षेत्र, गृह, बावली, कूप और तालाबका अपहरण करनेपर 'चान्द्रायण-व्रत'से शुद्धि मानी गयी है। भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ, सवारी, शय्या, आसन, पुष्प, मूल अथवा फलकी चोरी करनेवाला पञ्चगव्य पीकर शुद्ध होता है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड़, वस्त्र, चर्म या मांस चुरानेवाला तीन दिन निराहार रहे। सौतेली माँ, बहन, गुरुपुत्री, गुरुपत्नी और अपनी पुत्रीसे समागम करनेवाला 'गुरुपत्नीगामी' माना गया है। गुरुपत्नीगमन करनेपर अपने पापकी घोषणा करके जलते हुए लोहेकी शय्यापर तप्त-लौहमयी स्त्रीका आलिङ्गन करके प्राणत्याग करनेसे शुद्ध

होता है। अथवा गुरुपत्नीगामी तीन मासतक 'चान्द्रायण-व्रत' करे। पतित स्त्रियोंके लिये भी इसी प्रायश्चित्तका विधान करे। पुरुषको परस्त्रीगमन करेनपर जो प्रायश्चित्त बतलाया गया है, वही उनसे करावे। कुमारी कन्या, चाण्डाली, पुत्री और अपने सपिण्ड तथा पुत्रकी पत्नीमें वीर्यसेचन करनेवालेको प्राणत्याग कर देना चाहिये। द्विज एक रात शूद्राका सेवन करके जो पाप संचित करता है, वह तीन वर्षतक नित्य गायत्री-जप एवं भिक्षान्नका भोजन करनेसे नष्ट होता है। चाची, भाभी, चाण्डाली, पुक्कसी, पुत्रवधू, बहन, सखी, मौसी, बुआ, निक्षिप्ता (धरोहरके रूपमें रखी हुई), शरणागता, मामी, सगोत्रा बहिन, दूसरेको चाहनेवाली स्त्री, शिष्यपत्नी अथवा गुरुपत्नीसे गमन करके, 'चान्द्रायण-व्रत' करे॥ ४०—५४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अनेकविध प्रायश्चित्तोंका वर्णन' नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७३॥

एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

प्रायश्चित्तोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— देव-मन्दिरके पूजन आदिका लोप करनेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये। पूजाका लोप करनेपर एक सौ आठ बार जप करे और दुगुनी पूजाकी व्यवस्था करके पञ्चोपनिषद्-मन्त्रोंसे हवन कर ब्राह्मण-भोजन करावे। सूतिका स्त्री, अन्त्यज अथवा रजस्वलाके द्वारा देवमूर्तिका स्पर्श होनेपर सौ बार गायत्री-जप करे। दुगुना स्नान करके पञ्चोपनिषद्-मन्त्रोंसे पूजन एवं ब्राह्मण-भोजन कराये। होमका नियम भङ्ग होनेपर होम, स्नान और पूजन करे। होम-द्रव्यको चूहे आदि खा लें या वह कीटयुक्त हो जाय, तो उतना अंश छोड़कर तथा शेष द्रव्यका जलसे प्रोक्षण करके देवताओंका पूजन करे। भले ही अङ्कुरमात्र अर्पण करे, परंतु छिन्न-भिन्न द्रव्यका बहिष्कार कर दे। अस्पृश्य मनुष्योंका स्पर्श हो जानेपर पूजा-द्रव्यको दूसरे पात्रमें रख दे। पूजाके समय मन्त्र अथवा द्रव्यकी त्रुटि होनेपर दैव एवं मानुष विघ्नोंका विनाश करनेवाले गणपतिके बीज-मन्त्रका जप करके पुनः पूजन करे। देव-मन्दिरका कलश नष्ट हो जानेपर सौ बार मन्त्र-जप करे। देवमूर्तिके हाथसे गिरने एवं नष्ट हो जानेपर उपवासपूर्वक अग्निमें सौ आहुतियाँ देनेसे शुभ होता है। जिस पुरुषके मनमें पाप करनेपर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये श्रीहरिका स्मरण ही परम प्रायश्चित्त है। चान्द्रायण, पराक एवं प्राजापत्य-व्रत पापसमूहोंका विनाश करनेवाले हैं। सूर्य, शिव, शक्ति और विष्णुके मन्त्रका जप भी पापोंका प्रशमन करता है। गायत्री, प्रणव, पापप्रणाशनस्तोत्र एवं मन्त्रका जप पापोंका अन्त करनेवाला है। सूर्य, शिव, शक्ति और विष्णुके 'क' से प्रारम्भ होनेवाले, 'रा' बीजसे संयुक्त, रादि आदि और रान्त मन्त्र करोड़गुना फल देनेवाले हैं। इनके सिवा '**ॐ क्लीं**' से प्रारम्भ होनेवाले चतुर्थ्यन्त एवं अन्तमें '**नमः**' संयुक्त मन्त्र सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाले हैं। नृसिंह भगवान्‌के द्वादशाक्षर एवं अष्टाक्षर मन्त्रका जप पापसमूहोंका विनाश करता है। अग्निपुराणका पठन एवं श्रवण करनेसे भी मनुष्य समस्त पापसमूहोंसे छूट जाता है। इस पुराणमें अग्निदेवका माहात्म्य भी वर्णित है। परमात्मा श्रीविष्णु ही मुखस्वरूप अग्निदेव हैं, जिनका सम्पूर्ण वेदोंमें गान किया गया है। भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले उन परमेश्वरका

प्रवृत्ति और निवृत्ति-मार्गसे भी पूजन किया जाता है। अग्निरूपमें स्थित श्रीविष्णुके उद्देश्यसे हवन, जप, ध्यान, पूजन, स्तवन एवं नमस्कार शरीर-सम्बन्धी सभी पापोंका विध्वंस करनेवाला है। दस प्रकारके स्वर्णदान, बारह प्रकारके धान्यदान, तुलापुरुष आदि सोलह महादान एवं सर्वश्रेष्ठ अन्नदान—ये सब महापापोंका अपहरण करनेवाले हैं। तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग, मन्वन्तरारम्भ आदिके समय सूर्य, शिव, शक्ति तथा विष्णुके उद्देश्यसे किये जानेवाले व्रत आदि पापोंका प्रशमन करते हैं। गङ्गा, गया, प्रयाग, अयोध्या, उज्जैन, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, नैमिषारण्य, पुरुषोत्तमक्षेत्र, शालग्राम, प्रभासक्षेत्र आदि तीर्थ पापसमूहोंको विनष्ट करते हैं। 'मैं परम प्रकाशस्वरूप बल हूँ।'—इस प्रकारकी धारणा भी पापोंका विनाश करनेवाली है। ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भगवान्‌के अवतार, समस्त देवताओंकी प्रतिमा-प्रतिष्ठा एवं पूजन, ज्यौतिष, पुराण, स्मृतियाँ, तप, व्रत, अर्थशास्त्र, सृष्टिके आदितत्त्व, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिक्षा, छन्दः-शास्त्र, व्याकरण, निरुक्त, कोष, कल्प, न्याय, मीमांसा-शास्त्र एवं अन्य सब कुछ भी भगवान् श्रीविष्णुकी विभूतियाँ हैं। वे श्रीहरि एक होते हुए भी सगुण-निर्गुण दो रूपोंमें विभक्त एवं सम्पूर्ण संसारमें संनिहित हैं। जो ऐसा जानता है, श्रीहरि-स्वरूप उन महापुरुषका दर्शन करनेसे दूसरोंके पाप विनष्ट हो जाते हैं। भगवान् श्रीहरि ही अष्टादश विद्यारूप, सूक्ष्म, स्थूल, सच्चित्-स्वरूप, अविनाशी परब्रह्म एवं निष्पाप विष्णु हैं॥ १—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रायश्चित्त-वर्णन' नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७४॥

एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय

व्रतके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठजी! अब मैं तिथि, वार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष तथा सूर्य-संक्रान्तिके अवसरपर होनेवाले स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी व्रत आदिका क्रमशः वर्णन करूँगा, ध्यान देकर सुनिये—॥ १॥

शास्त्रोक्त नियमको ही 'व्रत' कहते हैं, वही 'तप' माना गया है। 'दम' (इन्द्रियसंयम) और 'शम' (मनोनिग्रह) आदि विशेष नियम भी व्रतके ही अङ्ग हैं। व्रत करनेवाले पुरुषको शारीरिक संताप सहन करना पड़ता है, इसलिये व्रतको 'तप' नाम दिया गया है। इसी प्रकार व्रतमें इन्द्रियसमुदायका नियमन (संयम) करना होता है, इसलिये उसे 'नियम' भी कहते हैं। जो ब्राह्मण या द्विज (क्षत्रिय-वैश्य) अग्निहोत्री नहीं हैं, उनके लिये व्रत, उपवास, नियम तथा नाना प्रकारके दानोंसे कल्याणकी प्राप्ति बतायी गयी है॥ २—४॥

उक्त व्रत-उपवास आदिके पालनसे प्रसन्न होकर देवता एवं भगवान् भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं। पापोंसे उपावृत (निवृत्त) होकर सब प्रकारके भोगोंका त्याग करते हुए जो सद्गुणोंके साथ वास करता है, उसीको 'उपवास' समझना चाहिये। उपवास करनेवाले पुरुषको काँसेके बर्तन, मांस, मसूर, चना, कोदो, साग, मधु, पराये अन्न तथा स्त्री-सम्भोगका त्याग करना चाहिये। उपवासकालमें फूल, अलंकार, सुन्दर

वस्त्र, धूप, सुगन्ध, अङ्गराग, दाँत धोनेके लिये मञ्जन तथा दाँतौन—इन सब वस्तुओंका सेवन अच्छा नहीं माना गया है। प्रातःकाल जलसे मुँह धो, कुल्ला करके, पञ्चगव्य लेकर व्रत प्रारम्भ कर देना चाहिये॥ ५—९॥

अनेक बार जल पीने, पान खाने, दिनमें सोने तथा मैथुन करनेसे उपवास (व्रत) दूषित हो जाता है। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा चोरीका अभाव—ये दस नियम सामान्यतः सम्पूर्ण व्रतोंमें आवश्यक माने गये हैं। व्रतमें पवित्र ऋचाओंको जपे और अपनी शक्तिके अनुसार हवन करे। व्रती पुरुष प्रतिदिन स्नान तथा परिमित भोजन करे। गुरु, देवता तथा ब्राह्मणोंका पूजन किया करे। क्षार, शहद, नमक, शराब और मांसको त्याग दे। तिल-मूँग आदिके अतिरिक्त धान्य भी त्याज्य हैं। धान्य (अन्न)-में उड़द, कोदो, चीना, देवधान्य, शमीधान्य, गुड़, शितधान्य, पय तथा मूली—ये क्षारगण माने गये हैं। व्रतमें इनका त्याग कर देना चाहिये। धान, साठीका चावल, मूँग, मटर, तिल, जौ, साँवाँ, तिन्नीका चावल और गेहूँ आदि अन्न व्रतमें उपयोगी हैं। कुम्हड़ा, लौकी, बैंगन, पालक तथा पूतिकाको त्याग दे। चरु, भिक्षामें प्राप्त अन्न, सत्तूके दाने, साग, दही, घी, दूध, साँवाँ, अगहनीका चावल, तिन्नीका चावल, जौका हलुवा तथा मूल तण्डुल—ये 'हविष्य' माने गये हैं। इन्हें व्रतमें, नक्तव्रतमें तथा अग्निहोत्रमें भी उपयोगी बताया गया है। अथवा मांस, मदिरा आदि अपवित्र वस्तुओंको छोड़कर सभी उत्तम वस्तुएँ व्रतमें हितकर हैं॥ १०—१७॥

'प्राजापत्यव्रत'का अनुष्ठान करनेवाला द्विज तीन दिन केवल प्रातःकाल और तीन दिन केवल संध्याकालमें भोजन करे। फिर तीन दिन केवल बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसीका दिनमें एक समय भोजन करे; उसके बाद तीन दिनोंतक उपवास करके रहे। (इस प्रकार यह बारह दिनोंका व्रत है।) इसी प्रकार 'अतिकृच्छ्र-व्रत'का अनुष्ठान करनेवाला द्विज पूर्ववत् तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल और तीन दिनोंतक बिना माँगे प्राप्त हुए अन्नका एक-एक ग्रास भोजन करे तथा अन्तिम दिनोंमें उपवास करे। गायका मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी तथा कुशका जल—इन सबको मिलाकर प्रथम दिन पीये। फिर दूसरे दिन उपवास करे—यह 'सांतपनकृच्छ्र' नामक व्रत है। उपर्युक्त द्रव्योंका पृथक्-पृथक् एक-एक दिनके क्रमसे छः दिनोंतक सेवन करके सातवें दिन उपवास करे—इस प्रकार यह एक सप्ताहका व्रत 'महासांतपन-कृच्छ्र' कहलाता है, जो पापोंका नाश करनेवाला है। लगातार बारह दिनोंके उपवासपसे सम्पन्न होनेवाले व्रतको 'पराक' कहते हैं। यह सब पापोंका नाश करनेवाला है। इससे तिगुने अर्थात् छत्तीस दिनोंतक उपवास करनेपर यही व्रत 'महापराक' कहलाता है। पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास घटाता रहे; अमावास्याको उपवास करे तथा प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन आरम्भ करके नित्य एक-एक ग्रास बढ़ाता रहे, इसे 'चान्द्रायण' कहते हैं। इसके विपरीतक्रमसे भी यह व्रत किया जाता है। (जैसे शुक्ल प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन करे; फिर एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करे। तत्पश्चात् कृष्ण प्रतिपदासे एक-एक ग्रास घटाकर अमावास्याको उपवास करे)॥ १८—२३॥

कपिला गायका मूत्र एक पल, गोबर अँगूठेके आधे हिस्सेके बराबर, दूध सात पल, दही दो पल, घी एक पल तथा कुशका जल एक पल एकमें मिला दे। इनका मिश्रण करते समय

गायत्री-मन्त्रसे गोमूत्र डाले। '**गन्धद्वारां दुराधर्षां०**' (श्रीसूक्त) इस मन्त्रसे गोबर मिलाये। '**आप्यायस्व०**' (यजु० १२।११२) इस मन्त्रसे दूध डाल दे। '**दधि क्राव्णो०**' (यजु० २३।३२) इस मन्त्रसे दही मिलाये। '**तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि०**' (यजु० २२।१) इस मन्त्रसे घी डाले तथा '**देवस्य०**' (यजु० २०।३) इस मन्त्रसे कुशोदक मिलाये। इस प्रकार जो वस्तु तैयार होती है, उसका नाम 'ब्रह्मकूर्च' है। ब्रह्मकूर्च तैयार होनेपर दिनभर भूखा रहकर सायंकालमें अघमर्षण-मन्त्र अथवा प्रणवके साथ '**आपो हि ष्ठा०**' (यजु० ११।५०) इत्यादि ऋचाओंका जप करके उसे पी डाले। ऐसा करनेवाला सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। दिनभर उपवास करके केवल सायंकालमें भोजन करनेवाला, दिनके आठ भागोंमेंसे केवल छठे भागमें आहार ग्रहण करनेवाला संन्यासी, मांसत्यागी, अश्वमेधयज्ञ करनेवाला तथा सत्यवादी पुरुष स्वर्गको जाते हैं। अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, देवव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडाकरण, मेखलाबन्ध (यज्ञोपवीत), विवाह आदि माङ्गलिक कार्य तथा अभिषेक—ये सब कार्य मलमासमें नहीं करने चाहिये॥ २४—३०॥

अमावास्यासे अमावास्यातकका समय 'चान्द्रमास' कहलाता है। तीस दिनोंका 'सावन मास' माना गया है। संक्रान्तिसे संक्रान्तिकालतक 'सौरमास' कहलाता है तथा क्रमशः सम्पूर्ण नक्षत्रोंके परिवर्तनसे 'नाक्षत्रमास' होता है। विवाह आदिमें 'सौरमास', यज्ञ आदिमें 'सावन मास' और वार्षिक श्राद्ध तथा पितृकार्यमें 'चान्द्रमास' उत्तम माना गया है। आषाढ़की पूर्णिमाके बाद जो पाँचवाँ पक्ष आता है, उसमें पितरोंका श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। उस समय सूर्य कन्याराशिपर गये हैं या नहीं, इसका विचार श्राद्धके लिये अनावश्यक है॥ ३१—३३॥

मासिक तथा वार्षिक व्रतमें जब कोई तिथि दो दिनकी हो जाय तो उसमें दूसरे दिनवाली तिथि उत्तम जाननी चाहिये और पहलीको मलिन। 'नक्षत्रव्रत'में उसी नक्षत्रको उपवास करना चाहिये, जिसमें सूर्य अस्त होते हों। 'दिवसव्रत'में दिनव्यापिनी तथा 'नक्तव्रत'में रात्रिव्यापिनी तिथियाँ पुण्य एवं शुभ मानी गयी हैं। द्वितीयाके साथ तृतीयाका, चतुर्थी-पञ्चमीका, षष्ठीके साथ सप्तमीका, अष्टमी-नवमीका, एकादशीके साथ द्वादशीका, चतुर्दशीके साथ पूर्णिमाका तथा अमावास्याके साथ प्रतिपदाका वेध उत्तम है। इसी प्रकार षष्ठी-सप्तमी आदिमें भी समझना चाहिये। इन तिथियोंका मेल महान् फल देनेवाला है। इसके विपरीत, अर्थात् प्रतिपदासे द्वितीयाका, तृतीयासे चतुर्थी आदिका जो युग्मभाव है, वह बड़ा भयानक होता है, वह पहलेके किये हुए समस्त पुण्यको नष्ट कर देता है॥ ३४—३७॥

राजा, मन्त्री तथा व्रतधारी पुरुषोंके लिये विवाहमें, उपद्रव आदिमें, दुर्गम स्थानोंमें, संकटके समय तथा युद्धके अवसरपर तत्काल शुद्धि बतायी गयी है। जिसने दीर्घकालमें समाप्त होनेवाले व्रतको आरम्भ किया है, वह स्त्री यदि बीचमें रजस्वला हो जाय तो वह रज उसके व्रतमें बाधक नहीं होता। गर्भवती स्त्री, प्रसव-गृहमें पड़ी हुई स्त्री अथवा रजस्वला कन्या जब अशुद्ध होकर व्रत करनेयोग्य न रह जाय तो सदा दूसरेसे उस शुभ कार्यका सम्पादन कराये। यदि क्रोधसे, प्रमादसे अथवा लोभसे व्रत-भङ्ग हो जाय तो तीन दिनोंतक भोजन न करे अथवा मूँड़ मुँड़ा ले। यदि व्रत करनेमें असमर्थता हो तो पत्नी या पुत्रसे उस व्रतको करावे। आरम्भ किये हुए व्रतका पालन जननाशौच तथा मरणाशौचमें भी करना चाहिये। केवल पूजनका कार्य बंद कर देना चाहिये। यदि व्रती पुरुष उपवासके कारण मूर्च्छित हो जाय तो गुरु दूध पिलाकर या और किसी उत्तम उपायसे उसे होशमें लाये। जल, फल, मूल, दूध, हविष्य (घी), ब्राह्मणकी इच्छापूर्ति, गुरुका वचन तथा औषध—ये आठ व्रतके नाशक नहीं

हैं*॥ ३८—४३॥

(व्रती मनुष्य व्रतके स्वामी देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—) 'व्रतपते! मैं कीर्ति, संतान विद्या आदि, सौभाग्य, आरोग्य, अभिवृद्धि, निर्मलता तथा भोग एवं मोक्षके लिये इस व्रतका अनुष्ठान करता हूँ। यह श्रेष्ठ व्रत मैंने आपके समक्ष ग्रहण किया है। जगत्पते! आपके प्रसादसे इसमें निर्विघ्न सिद्धि प्राप्त हो। संतोंके पालक! इस श्रेष्ठ व्रतको ग्रहण करनेके पश्चात् यदि इसकी पूर्ति हुए बिना ही मेरी मृत्यु हो जाय तो भी आपके प्रसन्न होनेसे वह अवश्य ही पूर्ण हो जाय। केशव! आप व्रतस्वरूप हैं, संसारकी उत्पत्तिके स्थान एवं जगत्को कल्याण प्रदान करनेवाले हैं; मैं सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस मण्डलमें आपका आवाहन करता हूँ। आप मेरे समीप उपस्थित हों। मनके द्वारा प्रस्तुत किये हुए पञ्चगव्य, पञ्चामृत तथा उत्तम जलके द्वारा मैं भक्तिपूर्वक आपको स्नान कराता हूँ। आप मेरे पापोंके नाशक हों। अर्घ्यपते! गन्ध, पुष्प और जलसे युक्त उत्तम अर्घ्य एवं पाद्य ग्रहण कीजिये, आचमन कीजिये तथा मुझे सदा अर्घ (सम्मान) पानेके योग्य बनाइये। वस्त्रपते! व्रतोंके स्वामी! यह पवित्र वस्त्र ग्रहण कीजिये और मुझे सदा सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों आदिसे आच्छादित किये रहिये। गन्धस्वरूप परमात्मन्! यह परम निर्मल उत्तम सुगन्धसे युक्त चन्दन लीजिये तथा मुझे पापकी दुर्गन्धसे रहित और पुण्यकी सुगन्धसे युक्त कीजिये। भगवन्! यह पुष्प लीजिये और मुझे सदा फल-फूल आदिसे परिपूर्ण बनाइये। यह फूलकी निर्मल सुगन्ध आयु तथा आरोग्यकी वृद्धि करनेवाली हो। संतोंके स्वामी! गुग्गुल और घी मिलाये हुए इस दशाङ्ग धूपको ग्रहण कीजिये। धूपद्वारा पूजित परमेश्वर! आप मुझे उत्तम धूपकी सुगन्धसे सम्पन्न कीजिये। दीपस्वरूप देव! सबको प्रकाशित करनेवाले इस प्रकाशपूर्ण दीपको, जिसकी शिखा ऊपरकी ओर उठ रही है, ग्रहण कीजिये और मुझे भी प्रकाशयुक्त एवं ऊर्ध्वगति (उन्नतिशील एवं ऊपरके लोकोंमें जानेवाला) बनाइये। अन्न आदि उत्तम वस्तुओंके अधीश्वर! इस अन्न आदि नैवेद्यको ग्रहण कीजिये और मुझे ऐसा बनाइये, जिससे मैं अन्न आदि वैभवसे सम्पन्न, अन्नदाता एवं सर्वस्वदान करनेवाला हो सकूँ। प्रभो! व्रतके द्वारा आराध्य देव! मैंने मन्त्र, विधि तथा भक्तिके बिना ही जो आपका पूजन किया है, वह आपकी कृपासे परिपूर्ण—सफल हो जाय। आप मुझे धर्म, धन, सौभाग्य, गुण, संतति, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करें। व्रतपते! प्रभो! आप इस समय मेरे द्वारा की हुई इस पूजाको स्वीकार करके पुनः यहाँ पधारने और वरदान देनेके लिये अपने स्थानको जायँ'॥ ४४—५८॥

सब प्रकारके व्रतोंमें व्रतधारी पुरुषको उचित है कि वह स्नान करके व्रत-सम्बन्धी देवताकी स्वर्णमयी प्रतिमाका यथाशक्ति पूजन करे तथा रातको भूमिपर सोये। व्रतके अन्तमें जप, होम और दान सामान्य कर्तव्य है। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार चौबीस, बारह, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मणकी एवं गुरुजनोंकी पूजा करके उन्हें भोजन करावे और यथाशक्ति सबको पृथक्-पृथक् गौ, सुवर्ण आदि; खड़ाऊँ, जूता, जलपात्र, अन्नपात्र, मृत्तिका, छत्र, आसन, शय्या, दो वस्त्र और कलश आदि वस्तुएँ दक्षिणामें दे। इस प्रकार यहाँ 'व्रत'की परिभाषा बतायी गयी है॥ ५९—६२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'व्रत-परिभाषाका वर्णन' नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७५॥

* अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ (अग्नि० १७५। ४३)

एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

प्रतिपदा तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं आपसे प्रतिपद् आदि तिथियोंके व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाले हैं। कार्तिक, आश्विन और चैत्र मासमें कृष्णपक्षकी प्रतिपद् ब्रह्माजीकी तिथि है। पूर्णिमाको उपवास करके प्रतिपद्को ब्रह्माजीका पूजन करे। पूजा '**ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः।**'—इस मन्त्रसे अथवा गायत्री-मन्त्रसे करनी चाहिये। यह व्रत एक वर्षतक करे। ब्रह्माजीके सुवर्णमय विग्रहका पूजन करे, जिसके दाहिने हाथोंमें स्फटिकाक्षकी माला और स्रुवा हों तथा बायें हाथोंमें स्रुक् एवं कमण्डलु हों। साथ ही लंबी दाढ़ी और सिरपर जटा भी हो। यथाशक्ति दूध चढ़ावे और मनमें यह उद्देश्य रखे कि 'ब्रह्माजी मुझपर प्रसन्न हों।' यों करनेवाला मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गमें उत्तम भोग भोगता है और पृथ्वीपर धनवान् ब्राह्मणके रूपमें जन्म लेता है॥ १—४॥

अब 'धन्यव्रत'का वर्णन करता हूँ। इसका अनुष्ठान करनेसे अधन्य भी धन्य हो जाता है। पहले मार्गशीर्ष-मासकी प्रतिपद्को उपवास करके रातमें '**अग्नये नमः।**'—इस मन्त्रसे होम और अग्निकी पूजा करे। इसी प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासकी प्रतिपद्को अग्निकी आराधना करनेसे मनुष्य सब सुखोंका भागी होता है।

प्रत्येक प्रतिपदाको एकभुक्त (दिनमें एक समय भोजन करके) रहे। सालभरमें व्रतकी समाप्ति होनेपर ब्राह्मण कपिला गौ दान करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य 'वैश्वानर'-पदको प्राप्त होता है। यह 'शिखिव्रत' कहलाता है॥ ५—७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिपद्-व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७६॥

एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

द्वितीया तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं द्वितीयाके व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष आदि देनेवाले हैं। प्रत्येक मासकी द्वितीयाको फूल खाकर रहे और दोनों अश्विनीकुमार नामक देवताओंकी पूजा करे। एक वर्षतक इस व्रतके अनुष्ठानसे सुन्दर स्वरूप एवं सौभाग्यकी प्राप्ति होती है और अन्तमें व्रती पुरुष स्वर्गलोकका भागी होता है। कार्तिकमें शुक्लपक्षकी द्वितीयाको यमकी पूजा करे। फिर एक वर्षतक प्रत्येक शुक्ल-द्वितीयाको उपवासपूर्वक व्रत रखे। ऐसा करनेवाला पुरुष स्वर्गमें जाता है, नरकमें नहीं पड़ता॥ १-२½॥

अब 'अशून्य-शयन' नामक व्रत बतलाता हूँ, जो स्त्रियोंको अवैधव्य (सदा सुहाग) और पुरुषोंको पत्नी-सुख आदि देनेवाला है। श्रावण मासके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। (इस व्रतमें भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना की जाती है—) 'वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न धारण करनेवाले श्रीकान्त! आप लक्ष्मीजीके धाम और स्वामी हैं; अविनाशी एवं सनातन परमेश्वर हैं। आपकी कृपासे धर्म, अर्थ और काम प्रदान करनेवाला मेरा गार्हस्थ्य-आश्रम नष्ट न हो। मेरे घरके अग्निहोत्रकी आग कभी न बुझे, गृहदेवता कभी अदृश्य न हों। मेरे पितर नाशसे बचे रहें

और मुझसे दाम्पत्य-भेद न हो। जैसे आप कभी लक्ष्मीजीसे विलग नहीं होते, उसी प्रकार मेरा भी पत्नीके साथका सम्बन्ध कभी टूटने या छूटने न पावे। वरदानी प्रभो! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मीजीसे सूनी नहीं होती, मधुसूदन! उसी प्रकार मेरी शय्या भी पत्नीसे सूनी न हो।' इस प्रकार व्रत आरम्भ करके एक वर्षतक प्रतिमासकी द्वितीयाको श्रीलक्ष्मी और विष्णुका विधिवत् पूजन करे। शय्या और फलका दान भी करे। साथ ही प्रत्येक मासमें उसी तिथिको चन्द्रमाके लिये मन्त्रोच्चारणपूर्वक अर्घ्य दे। (अर्घ्यका मन्त्र—) 'भगवान् चन्द्रदेव! आप गगन-प्राङ्गणके दीपक हैं। क्षीरसागरके मन्थनसे आपका आविर्भाव हुआ है। आप अपनी प्रभासे सम्पूर्ण दिङ्मण्डलको प्रकाशित करते हैं। भगवती लक्ष्मीके छोटे भाई! आपको नमस्कार है।'* तत्पश्चात् '**ॐ श्रं श्रीधराय नमः।**'—इस मन्त्रसे सोमस्वरूप श्रीहरिका पूजन करे। '**घं टं हं सं श्रियै नमः।**'—इस मन्त्रसे लक्ष्मीजीकी तथा '**दशरूपमहात्मने नमः।**'—इस मन्त्रसे श्रीविष्णुकी पूजा करे। रातमें घीसे हवन करके ब्राह्मणको शय्या-दान करे। उसके साथ दीप, अन्नसे भरे हुए पात्र, छाता, जूता, आसन, जलसे भरा कलश, श्रीहरिकी प्रतिमा तथा पात्र भी ब्राह्मणको दे। जो इस प्रकार उक्त व्रतका पालन करता है, वह भोग और मोक्षका भागी होता है॥ ३—१२½॥

अब 'कान्तिव्रत' का वर्णन करता हूँ। इसका प्रारम्भ कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको करना चाहिये। दिनमें उपवास और रातमें भोजन करे। इसमें बलराम तथा भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे। एक वर्षतक ऐसा करनेसे व्रती पुरुष कान्ति, आयु और आरोग्य आदि प्राप्त करता है॥ १३-१४॥

अब मैं 'विष्णुव्रत' का वर्णन करूँगा, जो मनोवाञ्छित फलको देनेवाला है। पौष मासके शुक्लपक्षकी द्वितीयासे आरम्भ करके लगातार चार दिनोंतक इस व्रतका अनुष्ठान किया जाता है। पहले दिन सरसों-मिश्रित जलसे स्नानका विधान है। दूसरे दिन काले तिल मिलाये हुए जलसे स्नान बताया गया है। तीसरे दिन वचा या वच नामक ओषधिसे युक्त जलके द्वारा तथा चौथे दिन सर्वौषधि-मिश्रित जलके द्वारा स्नान करना चाहिये। मुरा (कपूर-कचरी), वचा (वच), कुष्ठ (कूठ), शैलेय (शिलाजीत या भूरिछरीला), दो प्रकारकी हल्दी (गाँठ हल्दी और दारुहल्दी), कचूर, चम्पा और मोथा—यह 'सर्वौषधि-समुदाय' कहा गया है। पहले दिन '**श्रीकृष्णाय नमः।**', दूसरे दिन '**अच्युताय नमः।**', तीसरे दिन '**अनन्ताय नमः।**' और चौथे दिन '**हृषीकेशाय नमः।**' इस नाम-मन्त्रसे क्रमशः भगवान्‌के चरण, नाभि, नेत्र एवं मस्तकपर पुष्प समर्पित करते हुए पूजन करना चाहिये। प्रतिदिन प्रदोषकालमें चन्द्रमाको अर्घ्य देना चाहिये। पहले दिनके अर्घ्यमें '**शशिने नमः।**', दूसरे दिनके अर्घ्यमें '**चन्द्राय नमः।**', तीसरे दिन '**शशाङ्काय नमः।**' और चौथे दिन '**इन्दवे नमः।**' का उच्चारण करना चाहिये। रातमें जबतक चन्द्रमा दिखायी देते हों, तभीतक मनुष्यको भोजन कर लेना चाहिये। व्रती पुरुष छः मास या एक सालतक इस व्रतका पालन करके सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलको प्राप्त कर लेता है। पूर्वकालमें राजाओंने, स्त्रियोंने और देवता आदिने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया था॥ १५—२०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्वितीया-सम्बन्धी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७७॥

* गगनाङ्गणसंदीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव॥ भाभासितदिगाभोग रमाबन्धो नमोऽस्तु ते। (अग्नि० १७७। ९-१०)

एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

तृतीया तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं आपके सम्मुख तृतीया तिथिको किये जानेवाले व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। ललिततृतीयाको किये जानेवाले मूलगौरी-सम्बन्धी (सौभाग्यशयन) व्रतको सुनिये॥ १॥

चैत्रके शुक्लपक्षकी तृतीयाको ही पार्वतीका भगवान् शिवके साथ विवाह हुआ था। इसलिये इस दिन तिलमिश्रित जलसे स्नान करके पार्वतीसहित भगवान् शंकरकी स्वर्णाभूषण और फल आदिसे पूजा करनी चाहिये॥ २॥

'नमोऽस्तु पाटलायै' (पाटला देवीको नमस्कार)—यह कहकर पार्वतीदेवी और भगवान् शंकरके चरणोंका पूजन करे। **'शिवाय नमः'** (भगवान् शिवको नमस्कार)—यह कहकर शिवकी और **'जयायै नमः'** (जयाको नमस्कार)—यों कहकर गौरी देवीकी अर्चना करे। **'त्रिपुरघ्नाय रुद्राय नमः'** (त्रिपुरविनाशक रुद्रदेवको नमस्कार) तथा **'भवान्यै नमः'** (भवानीको नमस्कार)—यह कहकर क्रमशः शिव-पार्वतीकी दोनों जङ्घाओंका और **'रुद्रायेश्वराय नमः'** (सबके ईश्वर रुद्रदेवको नमस्कार है) एवं **'विजयायै नमः'** (विजयाको नमस्कार)—यह कहकर क्रमशः शंकर और पार्वतीके घुटनोंका पूजन करे। **'ईशायै नमः'** (सर्वेश्वरीको नमस्कार)—यह कहकर देवीके और **'शंकराय नमः'**—ऐसा कहकर शंकरके कटिभागकी पूजा करे। **'कोटव्यै नमः'** (कोटवीदेवीको नमस्कार) और **'शूलपाणये नमः'** (त्रिशूलधारीको नमस्कार)—यों कहकर क्रमशः गौरीशंकरके कुक्षिदेशका पूजन करे। **'मङ्गलायै नमः'** (मङ्गलादेवीको नमस्कार) कहकर भवानीके और **'तुभ्यं नमः'** (आपको नमस्कार)—यह कहकर शंकरके उदरका पूजन करे। **'सर्वात्मने नमः'** (सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मभूत शिवको नमस्कार)—यों कहकर रुद्रके और **'ईशान्यै नमः'** (ईशानीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके स्तनयुगलका पूजन करे। **'देवात्मने नमः'** (देवताओंके आत्मभूत शंकरको नमस्कार)—कहकर शिवके और उसी प्रकार **'ह्लादिन्यै नमः'** (सबको आह्लाद प्रदान करनेवाली गौरीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके कण्ठप्रदेशकी अर्चना करे। **'महादेवाय नमः'** (महादेवको नमस्कार) और **'अनन्तायै नमः'** (अनन्ताको नमस्कार) कहकर क्रमशः शिव-पार्वतीके दोनों हाथोंका पूजन करे। **'त्रिलोचनाय नमः'** (त्रिलोचनको नमस्कार) और **'कालानलप्रियायै नमः'** (कालाग्निस्वरूप शिवकी प्रियतमाको नमस्कार) कहकर भुजाओंका तथा **'महेशाय नमः'** (महेश्वरको नमस्कार) एवं **'सौभाग्यायै नमः'** (सौभाग्यवतीको नमस्कार) कहकर शिव-पार्वतीके आभूषणोंकी पूजा करे। तदनन्तर **'अशोकमधुवासिन्यै नमः'** (अशोक-पुष्पके मधुसे सुवासित पार्वतीको नमस्कार) और **'ईश्वराय नमः'** (ईश्वरको नमस्कार) कहकर दोनोंके ओष्ठभागका तथा **'चतुर्मुखप्रियायै नमः'** (चतुर्मुख ब्रह्माकी प्रिय पुत्रवधूको नमस्कार) और **'हराय स्थाणवे नमः'** (पापहारी स्थाणुस्वरूप शिवको नमस्कार) कहकर क्रमशः गौरीशंकरके मुखका पूजन करे। **'अर्धनारीशाय नमः'** (अर्धनारीश्वरको नमस्कार) कहकर शिवकी और **'अमिताङ्गायै नमः'** (अपरिमित अङ्गोंवाली देवीको नमस्कार) कहकर पार्वतीकी नासिकाका पूजन करे। **'उग्राय नमः'** (उग्रस्वरूप शिवको नमस्कार) कहकर लोकेश्वर शिवका और **'ललितायै नमः'** (ललिताको नमस्कार) कहकर पार्वतीकी भौंहोंका पूजन करे। **'शर्वाय नमः'** (शर्वको नमस्कार)

कहकर त्रिपुरारि शिवके और '**वासन्त्यै नमः**' (वासन्तीदेवीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके तालुप्रदेशका पूजन करे। '**श्रीकण्ठनाथायै नमः**' (श्रीकण्ठ शिवकी पत्नी उमाको नमस्कार) और '**शितिकण्ठाय नमः**' (नीलकण्ठको नमस्कार) कहकर गौरी-शंकरके केशपाशका पूजन करे। '**भीमोग्राय नमः**' (भयंकर एवं उग्रस्वरूप धारण करनेवाले शिवको नमस्कार) कहकर शंकरके और '**सुरूपिण्यै नमः**' (सुन्दर रूपवतीको नमस्कार) कहकर भगवती उमाके शिरोभागकी अर्चना करे। '**सर्वात्मने नमः**' (सर्वात्मा शिवको नमस्कार) कहकर पूजाका उपसंहार करे॥ ३—११½॥

शिवकी पूजाके लिये ये पुष्प क्रमशः चैत्रादि मासोंमें ग्रहण करनेयोग्य बताये गये हैं—मल्लिका, अशोक, कमल, कुन्द, तगर, मालती, कदम्ब, कनेर, नीले रंगका सदाबहार, अम्लान (आँ बोली), कुङ्कुम और सेंधुवार॥ १२-१३॥

उमा-महेश्वरका पूजन करके उनके सम्मुख अष्ट सौभाग्य-द्रव्य रख दे। घृतमिश्रित निष्पाव (एक द्विदल), कुसुम्भ (केसर), दुग्ध, जीवक (एक ओषधिविशेष), दूर्वा, ईख, नमक और कुस्तुम्बुरु (धनियाँ)—ये अष्ट सौभाग्य-द्रव्य हैं। चैत्रमासमें पहाड़ोंके शिखरोंका (गङ्गा आदिका) जल पान करके रुद्रदेव और पार्वतीदेवीके आगे शयन करे।* प्रातःकाल स्नान करके गौरी-शंकरका पूजन कर ब्राह्मण-दम्पतिकी अर्चना करे और वह अष्ट सौभाग्य-द्रव्य '**ललिता प्रीयतां मम।**' (ललिता मुझपर प्रसन्न हों)—ऐसा कहकर ब्राह्मणको दे॥ १४—१६॥

व्रत करनेवालेको चैत्रादि मासोंमें व्रतके दिन क्रमशः यह आहार करना चाहिये—चैत्रमें शृङ्गजल (झरनेका जल), वैशाखमें गोबर, ज्येष्ठमें मन्दार (आक)-का पुष्प, आषाढ़में बिल्वपत्र, श्रावणमें कुशजल, भाद्रपदमें दही, आश्विनमें दुग्ध, कार्तिकमें घृतमिश्रित दधि, मार्गशीर्षमें गोमूत्र, पौषमें घृत, माघमें काले तिल और फाल्गुनमें पञ्चगव्य। ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला और सती—चैत्रादि मासोंमें सौभाग्याष्टकके दानके समय उपर्युक्त नामोंका '**प्रीयतां मम**' से संयुक्त करके उच्चारण करे। व्रतके पूर्ण होनेपर किसी एक फलका सदाके लिये त्याग कर दे तथा गुरुदेवको तकियोंसे युक्त शय्या, उमा-महेश्वरकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमा एवं गौसहित वृषभका दान करे। गुरु और ब्राह्मण-दम्पतिका वस्त्र आदिसे सत्कार करके साधक भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है। इस 'सौभाग्यशयन' नामक व्रतके अनुष्ठानसे मनुष्य सौभाग्य, आरोग्य, रूप और दीर्घायु प्राप्त करता है॥ १७—२१॥

यह व्रत भाद्रपद, वैशाख और मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी तृतीयाको भी किया जा सकता है। इसमें '**ललितायै नमः**' (ललिताको नमस्कार)—इस प्रकार कहकर पार्वतीका पूजन करे। तदनन्तर व्रतकी समाप्तिके समय प्रत्येक पक्षमें ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करनी चाहिये। उनकी चौबीस वस्त्र आदिसे अर्चना करके मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है। 'सौभाग्यशयन'की यह दूसरी विधि बतायी गयी। अब मैं 'सौभाग्यव्रत'के विषयमें कहता हूँ। फाल्गुन आदि मासोंमें शुक्लपक्षकी तृतीयाको व्रत करनेवाला नमकका परित्याग करे। व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करके '**भवानी प्रीयताम्।**' (भवानी प्रसन्न हों) कहकर शय्या और सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त गृहका दान करे। यह 'सौभाग्य-

---

* उमामहेश्वरौ पूज्य सौभाग्याष्टकमग्रतः। स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीवकम्॥
तृणराजेक्षुलवणं कुस्तुम्बुरुसमाष्टकम्। चैत्रे शृङ्गोदकं प्राश्य देवदेव्यग्रतः स्वपेत्॥ (अग्नि० १७८। १४-१५)

तृतीया' व्रत कहा गया, जो पार्वती आदिके लोकोंको प्रदान करनेवाला है। इसी प्रकार माघ, भाद्रपद और वैशाखकी तृतीयाको व्रत करना चाहिये॥ २२—२६॥

चैत्रमें 'दमनक-तृतीया'का व्रत करके पार्वतीकी 'दमनक' नामक पुष्पोंसे पूजन करनी चाहिये। मार्गशीर्षमें 'आत्म-तृतीया' का व्रत किया जाता है। इसमें पार्वतीका पूजन करके ब्राह्मणको इच्छानुसार भोजन करावे। मार्गशीर्षकी तृतीयासे आरम्भ करके, क्रमशः पौष आदि मासोंमें उपर्युक्त व्रतका अनुष्ठान करके निम्नलिखित नामोंको **'प्रीयताम्'** से संयुक्त करके, कहे—गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, वैष्णवी, लक्ष्मी, प्रकृति, शिवा और नारायणी। इस प्रकार व्रत करनेवाला सौभाग्य और स्वर्गको प्राप्त करता है॥ २७-२८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'तृतीयाके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७८॥

एक सौ उनासीवाँ अध्याय

चतुर्थी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं आपके सम्मुख भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले चतुर्थी-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको उपवास करके गणेशका पूजन करे। तदनन्तर पञ्चमीको तिलका भोजन करे। ऐसा करनेसे मनुष्य बहुत वर्षोंतक विघ्नरहित होकर सुखी रहता है। **'गं स्वाहा।'**—यह मूलमन्त्र है। **'गां नमः।'** आदिसे हृदयादिका न्यास करे*॥ १-२॥

'आगच्छोल्काय' कहकर गणेशका आवाहन और **'गच्छोल्काय'** कहकर विसर्जन करे। इस प्रकार आदिमें गकारयुक्त और अन्तमें 'उल्का' शब्दयुक्त मन्त्रसे उनके आवाहनादि कार्य करे। गन्धादि उपचारों एवं लड्डुओं आदिद्वारा गणपतिका पूजन करे॥ ३॥ (तदनन्तर निम्नलिखित गणेश-गायत्रीका जप करे—)

ॐ महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डायधीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको व्रत करनेवाला शिवलोकको प्राप्त करता है। 'अङ्गारक-चतुर्थी' (मङ्गलवारसे युक्त चतुर्थी)-को गणेशका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनकी चतुर्थीको रात्रिमें ही भोजन करे। यह 'अविघ्ना चतुर्थी'के नामसे प्रसिद्ध है। चैत्र मासकी चतुर्थीको 'दमनक' नामक पुष्पोंसे गणेशका पूजन करके मनुष्य सुख-भोग प्राप्त करता है॥ ४—६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'चतुर्थीके व्रतोंका कथन' नामक एक सौ उनासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७९॥

---

* निम्नलिखित विधिसे हृदयादि षडङ्गोंका न्यास करे—
'गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं नेत्रत्रयाय वौषट्॥ गौं कवचाय हुम्। गः अस्त्राय फट्।'

एक सौ अस्सीवाँ अध्याय

पञ्चमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं आरोग्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले पञ्चमी-व्रतका वर्णन करता हूँ। श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिकके शुक्लपक्षकी पञ्चमीको वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनंजय नामक नागोंका पूजन करना चाहिये॥ १-२॥

ये सभी नाग अभय, आयु, विद्या, यश और लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं॥ ३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पञ्चमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८०॥

एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय

षष्ठी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं षष्ठी-सम्बन्धी व्रतोंको कहता हूँ। कार्तिकके कृष्णपक्षकी षष्ठीको फलमात्रका भोजन करके कार्तिकेयके लिये अर्घ्यदान करना चाहिये। इससे मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त करता है। इसे 'स्कन्दषष्ठी-व्रत' कहते हैं। भाद्रपदके कृष्णपक्षकी षष्ठी तिथिमें 'अक्षयषष्ठी व्रत' करना चाहिये। इसे मार्गशीर्षमें भी करना चाहिये। इस अक्षयषष्ठीके दिन किसी भी एक वर्ष निराहार रहनेसे मानव भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ १-२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'षष्ठीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८१॥

एक सौ बयासीवाँ अध्याय

सप्तमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं सप्तमी तिथिके व्रत कहूँगा। यह सबको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। माघ मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको (अष्टदल अथवा द्वादशदल) कमलका निर्माण करके उसमें भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। इससे मनुष्य शोकरहित हो जाता है॥ १॥

भाद्रपद मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको भगवान् आदित्यका पूजन करनेसे समस्त अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। पौषमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको निराहार रहकर सूर्यदेवका पूजन करनेसे सारे पापोंका विनाश होता है॥ २॥

माघके कृष्णपक्षमें 'सर्वासि-सप्तमी'का व्रत करना चाहिये। इससे सभी अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। फाल्गुनके कृष्णपक्षमें 'नन्द-सप्तमी'का व्रत करना चाहिये। मार्गशीर्षके शुक्ल-पक्षमें 'अपराजिता सप्तमी'को भगवान् सूर्यका पूजन और व्रत करना चाहिये। एक वर्षतक मार्गशीर्षके शुक्लपक्षका 'पुत्रीया सप्तमी' व्रत स्त्रियोंको पुत्र प्रदान करनेवाला है॥ ३-४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सप्तमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८२॥

एक सौ तिरासीवाँ अध्याय

अष्टमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं अष्टमीको किये जानेवाले व्रतोंका वर्णन करूँगा। उनमें पहला रोहिणी नक्षत्रयुक्त अष्टमीका व्रत है। भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी रोहिणी नक्षत्रसे युक्त अष्टमी तिथिको ही अर्धरात्रिके समय भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ था, इसलिये इसी अष्टमीको उनकी जयन्ती मनायी जाती है। इस तिथिको उपवास करनेसे मनुष्य सात जन्मोंके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १-२॥

अतएव भाद्रपदके कृष्णपक्षकी रोहिणीनक्षत्रयुक्त अष्टमीको उपवास रखकर भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करना चाहिये। यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ ३॥

(पूजनकी विधि इस प्रकार है—)

आवाहन-मन्त्र और नमस्कार

आवाहयाम्यहं कृष्णं बलभद्रं च देवकीम्।
वसुदेवं यशोदां गाः पूजयामि नमोऽस्तु ते॥
योगाय योगपतये योगेशाय नमो नमः।
योगादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः॥

'मैं श्रीकृष्ण, बलभद्र, देवकी, वसुदेव, यशोदादेवी और गौओंका आवाहन एवं पूजन करता हूँ; आप सबको नमस्कार है। योगस्वरूप, योगपति एवं योगेश्वर श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है। योगके आदिकारण, उत्पत्तिस्थान श्रीगोविन्दके लिये बारंबार नमस्कार है'॥ ४-५॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णको स्नान कराये और इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्यदान करे—

यज्ञेश्वराय यज्ञाय यज्ञानां पतये नमः॥
यज्ञादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः।

'यज्ञेश्वर, यज्ञस्वरूप, यज्ञोंके अधिपति एवं यज्ञके आदि कारण श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है।'

पुष्प-धूप

गृहाण देव पुष्पाणि सुगन्धीनि प्रियाणि ते॥
सर्वकामप्रदो देव भव मे देववन्दित।
धूपधूपित धूपं त्वं धूपितैस्त्वं गृहाण मे॥
सुगन्धिधूपगन्धाढ्यं कुरु मां सर्वदा हरे।

'देव! आपके प्रिय ये सुगन्धयुक्त पुष्प ग्रहण कीजिये। देवताओंद्वारा पूजित भगवन्! मेरी सारी कामनाएँ सिद्ध कीजिये। आप धूपसे सदा धूपित हैं, मेरे द्वारा अर्पित धूप-दानसे आप धूपकी सुगन्ध ग्रहण कीजिये। श्रीहरे! मुझे सदा सुगन्धित पुष्पों, धूप एवं गन्धसे सम्पन्न कीजिये।'

दीप-दान

दीपदीप्त महादीपं दीपदीप्तिद सर्वदा॥
मया दत्तं गृहाण त्वं कुरु चोर्ध्वगतिं च माम्।
विश्वाय विश्वपतये विश्वेशाय नमो नमः॥
विश्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय निवेदितम्।

'प्रभो! आप सर्वदा दीपके समान देदीप्यमान एवं दीपको दीप्ति प्रदान करनेवाले हैं। मेरे द्वारा दिया गया यह महादीप ग्रहण कीजिये और मुझे भी (दीपके समान) ऊर्ध्वगतिसे युक्त कीजिये। विश्वरूप, विश्वपति, विश्वेश्वर श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है, नमस्कार है। विश्वके आदिकारण श्रीगोविन्दको मैं यह दीप निवेदन करता हूँ।'

शयन-मन्त्र

धर्माय धर्मपतये धर्मेशाय नमो नमः॥
धर्मादिसम्भवायैव गोविन्द शयनं कुरु।
सर्वाय सर्वपतये सर्वेशाय नमो नमः॥
सर्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः।

'धर्मस्वरूप, धर्मके अधिपति, धर्मेश्वर एवं धर्मके आदिस्थान श्रीवासुदेवको नमस्कार है। गोविन्द! अब आप शयन कीजिये। सर्वरूप, सबके अधिपति, सर्वेश्वर, सबके आदिकारण

श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है।'

(तदनन्तर रोहिणीसहित चन्द्रमाको निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर अर्घ्यदान दे—)

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव॥
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम।

'क्षीरसमुद्रसे प्रकट एवं अत्रिके नेत्रसे उद्भूत तेजःस्वरूप शशाङ्क! रोहिणीके साथ मेरा अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

फिर भगवद्विग्रहको वेदिकापर स्थापित करे और चन्द्रमासहित रोहिणीका पूजन करे। तदनन्तर अर्धरात्रिके समय वसुदेव, देवकी, नन्द-यशोदा और बलरामका गुड़ और घृतमिश्रित दुग्ध-धारासे अभिषेक करे॥ ६—१५॥

तत्पश्चात् व्रत करनेवाला मनुष्य ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दक्षिणामें उन्हें वस्त्र और सुवर्ण आदि दे। जन्माष्टमीका व्रत करनेवाला पुत्रयुक्त होकर विष्णुलोकका भागी होता है। जो मनुष्य पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे प्रतिवर्ष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह 'पुम्' नामक नरकके भयसे मुक्त हो जाता है। (सकाम व्रत करनेवाला भगवान् गोविन्दसे प्रार्थना करे—) 'प्रभो! मुझे पुत्र, धन, आयु, आरोग्य और संतति दीजिये। गोविन्द! मुझे धर्म, काम, सौभाग्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कीजिये'॥ १६—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अष्टमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८३॥

एक सौ चौरासीवाँ अध्याय

अष्टमी-सम्बन्धी विविध व्रत

अग्निदेव कहते हैं— मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ! चैत्र मासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको व्रत करे और उस दिन ब्रह्मा आदि देवताओं तथा मातृगणोंका जप-पूजन करे। कृष्णपक्षकी अष्टमीको एक वर्ष श्रीकृष्णकी पूजा करके मनुष्य संतानरूप अर्थकी प्राप्ति कर लेता है॥ १॥

अब मैं 'कालाष्टमी'का वर्णन करता हूँ। यह व्रत मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको करना चाहिये। रात्रि होनेपर व्रत करनेवाला स्नानादिसे पवित्र हो, भगवान् 'शंकर'का पूजन करके गोमूत्रसे व्रतका पारण करे। रात्रिको भूमिपर शयन करे। पौष मासमें 'शम्भु'का पूजन करके घृतका आहार तथा माघमें 'महेश्वर'की अर्चना करके दुग्धका पान करे। फाल्गुनमें 'महादेव'की पूजा करके अच्छी प्रकार उपवास करनेके बाद तिलका भोजन करे। चैत्रमें 'स्थाणु'का पूजन करके जौका भोजन करे। वैशाखमें 'शिव'की पूजा करे और कुशजलसे पारण करे। ज्येष्ठमें 'पशुपति'का पूजन करके शृङ्गजल (झरनेके जल)-का पान करे। आषाढ़में 'उग्र'की अर्चना करके गोमयका भक्षण और श्रावणमें 'शर्व'का पूजन करके मन्दारके पुष्पका भक्षण करे। भाद्रपदमें रात्रिके समय 'त्र्यम्बक'का पूजन करके बिल्वपत्रका भक्षण करे। आश्विनमें 'ईश'की अर्चना करके चावल और कार्तिकमें 'रुद्र'का पूजन करके दधिका भोजन करे। वर्षकी समाप्ति होनेपर होम करे और सर्वतो (लिङ्गतो)-भद्रका निर्माण करके उसमें भगवान् शंकरका पूजन करे। तदनन्तर आचार्यको गौ, वस्त्र और सुवर्णका दान करे। अन्य ब्राह्मणोंको भी उन्हीं वस्तुओंका दान करे। ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके भोजन कराकर मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २—७½॥

प्रत्येक मासके दोनों पक्षोंकी अष्टमी तिथियोंको रात्रिमें भोजन करे और वर्षके पूर्ण होनेपर गोदान करे। इससे मनुष्य इन्द्रपदको प्राप्त कर लेता है। यह 'स्वर्गति-व्रत' कहा जाता है। कृष्ण अथवा शुक्ल—किसी भी पक्षमें अष्टमीको बुधवारका योग हो, उस दिन व्रत रखे और एक समय भोजन करे। जो मनुष्य अष्टमीका व्रत करते हैं, उनके घरमें कभी सम्पत्तिका अभाव नहीं होता। दो अँगुलियाँ छोड़कर आठ मुट्ठी चावल ले और उसका भात बनाकर कुशयुक्त आम्रपत्रके दोनेमें रखे। कुलाम्बिकासहित बुधका पूजन करना चाहिये और 'बुधाष्टमी-व्रत'की कथा सुनकर भोजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणको ककड़ी और चावलसहित यथाशक्ति दक्षिणा दे॥ ८—१२॥

('बुधाष्टमी-व्रत'की कथा निम्नलिखित है—) धीर नामक एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नीका नाम था रम्भा और पुत्रका नाम कौशिक था। उसके एक पुत्री भी थी, जिसका नाम विजया था। उस ब्राह्मणके धनद नामका एक बैल था। कौशिक उस बैलको ग्वालोंके साथ चरानेको ले गया। कौशिक गङ्गामें स्नानादि कर्म करने लगा, उस समय चोर बैलको चुरा ले गये। कौशिक जब नदीसे नहाकर निकला, तब बैलको वहाँ न पाकर अपनी बहिन विजयाके साथ उसकी खोजमें चल पड़ा। उसने एक सरोवरमें देवलोककी स्त्रियोंका समूह देखा और उनसे भोजन माँगा। इसपर उन स्त्रियोंने कहा—'आप आज हमारे अतिथि हुए हैं, इसलिये व्रत करके भोजन कीजिये।' तदनन्तर कौशिकने 'बुधाष्टमी'का व्रत करके भोजन किया। उधर धीर वनरक्षकके पास पहुँचा और अपना बैल लेकर विजयाके साथ लौट आया। धीर ब्राह्मणने यथासमय विजयाका विवाह कर दिया और स्वयं मृत्युके पश्चात् यमलोकको प्राप्त हुआ। परंतु कौशिक व्रतके प्रभावसे अयोध्याका राजा हुआ। विजया अपने माता-पिताको नरककी यातना भोगते देख यमराजके शरणापन्न हुई। कौशिक जब मृगयाके उद्देश्यसे वनमें आया, तब उसने पूछा—'मेरे माता-पिता नरकसे मुक्त कैसे हो सकते हैं?' उस समय यमराजने वहाँ प्रकट होकर कहा—'बुधाष्टमीके दो व्रतोंके फलसे।' तब कौशिकने अपने माता-पिताके उद्देश्यसे दो बुधाष्टमी-व्रतोंका फल दिया। इससे उसके माता-पिता स्वर्गमें चले गये। तदनन्तर विजयाने भी हर्षित होकर भोग-मोक्षादिकी सिद्धिके लिये इस व्रतका अनुष्ठान किया॥ १३—२०½॥

वसिष्ठ! चैत्र मासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको जब पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो, उस समय जो मनुष्य अशोक-पुष्पकी आठ कलिकाओंका रस-पान करते हैं, वे कभी शोकको प्राप्त नहीं होते। (कलिकाओंका रसपान निम्नलिखित मन्त्रसे करना चाहिये—)

त्वामशोक हराभीष्टं मधुमाससमुद्भव।
पिबामि शोकसंतप्तो मामशोकं सदा कुरु॥

'चैत्र मासमें विकसित होनेवाले अशोक! तुम भगवान् शंकरके प्रिय हो। मैं शोकसे संतप्त होकर तुम्हारी कलिकाओंका पान करता हूँ। अपनी ही तरह मुझे भी सदाके लिये शोकरहित कर दो।' चैत्रादि मासोंकी अष्टमीको मातृगणकी पूजा करनेवाला मनुष्य शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है॥ २१—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अष्टमीके विविध व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८४॥

एक सौ पचासीवाँ अध्याय

नवमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष आदिकी सिद्धि प्रदान करनेवाले नवमी-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। आश्विनके शुक्लपक्षमें 'गौरी-नवमी'का व्रत करके देवीका पूजन करना चाहिये। इस नवमीको 'पिष्टका-नवमी' होती है। उसका व्रत करनेवाले मनुष्यको देवीका पूजन करके पिष्टान्नका भोजन करना चाहिये। आश्विनके शुक्लपक्षकी जिस नवमीको अष्टमी और मूलनक्षत्रका योग हो एवं सूर्य कन्या-राशिपर स्थित हों, उसे 'महानवमी' कहा गया है। वह सदा पापोंका विनाश करनेवाली है। इस दिन नवदुर्गाओंको नौ स्थानोंमें अथवा एक स्थानमें स्थित करके उनका पूजन करना चाहिये। मध्यमें अष्टादशभुजा महालक्ष्मी एवं दोनों पार्श्व-भागोंमें शेष दुर्गाओंका पूजन करना चाहिये। अञ्जन और डमरूके साथ निम्नलिखित क्रमसे नवदुर्गाओंकी स्थापना करनी चाहिये—रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, पूज्या, चण्डरूपा और अतिचण्डिका। इन सबके मध्यभागमें अष्टादशभुजा उग्रचण्डा महिषमर्दिनी दुर्गाका पूजन करना चाहिये। '**ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षसि स्वाहा।**'—यह दशाक्षर-मन्त्र है—॥ १—६ ॥

जो मनुष्य इस विधिसे पूर्वोक्त दशाक्षर-मन्त्रका जप करता है, वह किसीसे भी बाधा नहीं प्राप्त करता। भगवती दुर्गा अपने वाम करोंमें कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी-मुद्रा, धनुष, ध्वजा, डमरू और पाश एवं दक्षिण करोंमें शक्ति, मुद्गर, त्रिशूल, वज्र, खड्ग, भाला, अङ्कुश, चक्र तथा शलाका लिये हुए हैं। उनके इन आयुधोंकी भी अर्चना करे॥ ७—१० ॥

फिर '**कालि कालि**' आदि मन्त्रका जप करके खड्गसे पशुका वध करे। (पशुबलिका मन्त्र इस प्रकार है—) '**कालि कालि वज्रेश्वरि लोहदण्डायै नमः।**' बलि-पशुका रुधिर और मांस, '**पूतनाय नमः।**' कहकर नैर्ऋत्यकोणमें, '**पापराक्षस्यै नमः।**' कहकर वायव्यकोणमें, '**चरक्यै नमः।**' कहकर ईशानकोणमें एवं '**विदारिकायै नमः।**' कहकर अग्निकोणमें उनके उद्देश्यसे समर्पित करे। राजा उसके सम्मुख स्नान करे और स्कन्द एवं विशाखके निमित्त पिष्टनिर्मित शत्रुकी बलि दे। रात्रिमें ब्राह्मी आदि शक्तियोंका पूजन करे—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते॥

'जयन्ती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा, क्षमा, धात्री, स्वाहा और स्वधा—इन नामोंसे प्रसिद्ध जगदम्बिके! तुम्हें मेरा नमस्कार हो।' आदि मन्त्रोंसे देवीकी स्तुति करे और देवीको पञ्चामृतसे स्नान कराके उनकी विविध उपचारोंसे पूजा करे। देवीके उद्देश्यसे किया हुआ ध्वजदान, रथयात्रा एवं बलिदान-कर्म अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति करानेवाला है॥ ११—१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नवमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८५ ॥

एक सौ छियासीवाँ अध्याय

दशमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं दशमी-सम्बन्धी व्रतके विषयमें कहता हूँ, जो धर्म-कामादिकी सिद्धि करनेवाला है। दशमीको एक समय भोजन करे और व्रतके समाप्त होनेपर दस गौओं और स्वर्णमयी प्रतिमाओंका दान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका अधिपति होता है॥ १॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दशमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८६॥

एक सौ सतासीवाँ अध्याय

एकादशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले एकादशी-व्रतका वर्णन करूँगा। व्रत करनेवाला दशमीको मांस और मैथुनका परित्याग कर दे एवं भजन भी नियमित करे। दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन न करे॥ १$\frac{1}{2}$॥

द्वादशी-विद्धा एकादशीमें स्वयं श्रीहरि स्थित होते हैं, इसलिये द्वादशी-विद्धा एकादशीके व्रतका त्रयोदशीको पारण करनेसे मनुष्य सौ यज्ञोंका पुण्यफल प्राप्त करता है। जिस दिनके पूर्वभागमें एकादशी कलामात्र अवशिष्ट हो और शेषभागमें द्वादशी व्याप्त हो, उस दिन एकादशीका व्रत करके त्रयोदशीमें पारण करनेसे सौ यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है। दशमी-विद्धा एकादशीको कभी उपवास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह नरककी प्राप्ति करानेवाली है। एकादशीको निराहार रहकर, दूसरे दिन यह कहकर भोजन करे—'पुण्डरीकाक्ष! मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। अच्युत! अब मैं भोजन करूँगा।' शुक्लपक्षकी एकादशीको जब पुष्यनक्षत्रका योग हो, उस दिन उपवास करना चाहिये। वह अक्षयफल प्रदान करनेवाली है और 'पापनाशिनी' कही जाती है। श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशीविद्धा एकादशी 'विजया' नामसे प्रसिद्ध है और भक्तोंको विजय देनेवाली है। फाल्गुन मासमें पुष्यनक्षत्रसे युक्त एकादशीको भी सत्पुरुषोंने 'विजया' कहा है। वह गुणोंमें कई करोड़गुना अधिक मानी जाती है। एकादशीको सबका उपकार करनेवाली विष्णुपूजा अवश्य करनी चाहिये। इससे मनुष्य इस लोकमें धन और पुत्रोंसे युक्त हो (मृत्युके पश्चात्) विष्णुलोकमें पूजित होता है॥ २—९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'एकादशीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८७॥

एक सौ अठासीवाँ अध्याय

द्वादशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं भोग एवं मोक्षप्रद द्वादशी-सम्बन्धी व्रत कहता हूँ। द्वादशी तिथिको मनुष्य रात्रिको एक समय भोजन करे और किसीसे कुछ नहीं माँगे। उपवास करके भी भिक्षा-ग्रहण करनेवाले मनुष्यका द्वादशीव्रत सफल नहीं हो सकता। चैत्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको 'मदनद्वादशी' का व्रत करनेवाला भोग और मोक्षकी इच्छासे कामदेव-रूपी श्रीहरिका अर्चन करे। माघके शुक्लपक्षकी द्वादशी-को 'भीमद्वादशी'का व्रत करना चाहिये और **'नमो नारायणाय।'** मन्त्रसे श्रीविष्णुका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'गोविन्दद्वादशी'का व्रत होता है। आश्विनमें 'विशोकद्वादशी'का व्रत करनेवालेको श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रीकृष्णका पूजन करके जो मनुष्य लवणका दान करता है, वह सम्पूर्ण रसोंके दानका फल प्राप्त करता है। भाद्रपदमें 'गोवत्सद्वादशी'का व्रत करनेवाला गोवत्सका पूजन करे। माघ मासके व्यतीत हो जानेपर फाल्गुनके कृष्णपक्षकी द्वादशी, जो श्रवणनक्षत्रसे संयुक्त हो, उसे 'तिलद्वादशी' कहा गया है। इस दिन तिलोंसे ही स्नान और होम करना चाहिये तथा तिलके लड्डुओंका भोग लगाना चाहिये। मन्दिरमें तिलके तेलसे युक्त दीपक समर्पित करना चाहिये तथा पितरोंको तिलाञ्जलि देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको तिलदान करे। होम और उपवाससे ही 'तिलद्वादशी'का फल प्राप्त होता है। **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'** मन्त्रसे श्रीविष्णुकी पूजा करनी चाहिये। उपर्युक्त विधिसे छः बार 'तिलद्वादशी'का व्रत करनेवाला कुलसहित स्वर्गको प्राप्त करता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'मनोरथद्वादशी'का व्रत करनेवाला श्रीहरिका पूजन करे। इसी दिन 'नामद्वादशी'का व्रत करनेवाला 'केशव' आदि नामोंसे श्रीहरिका एक वर्षतक पूजन करे। वह मनुष्य मृत्युके पश्चात् स्वर्गमें ही जाता है। वह कभी नरकगामी नहीं हो सकता। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'सुमतिद्वादशी'का व्रत करके विष्णुका पूजन करे। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें 'अनन्तद्वादशी'का व्रत करे। माघके शुक्लपक्षमें आश्लेषा अथवा मूलनक्षत्रसे युक्त 'तिलद्वादशी' करनेवाला मनुष्य **'कृष्णाय नमः।'** मन्त्रसे श्रीकृष्णका पूजन करे और तिलोंका होम करे। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'सुगतिद्वादशी'का व्रत करनेवाला **'जय कृष्ण नमस्तुभ्यम्'** मन्त्रसे एक वर्षतक श्रीकृष्णकी पूजा करे। ऐसा करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त कर लेता है। पौषके शुक्लपक्षकी द्वादशीको 'सम्प्राप्ति-द्वादशी'का व्रत करे॥ १—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्वादशीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८८॥

एक सौ नवासीवाँ अध्याय

श्रवण-द्वादशी-व्रतका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें किये जानेवाले 'श्रवणद्वादशी' व्रतके विषयमें कहता हूँ। यह श्रवण नक्षत्रसे संयुक्त होनेपर श्रेष्ठ मानी जाती है एवं उपवास करनेपर

महान् फल प्रदान करनेवाली है। श्रवण-द्वादशीके दिन नदियोंके संगमपर स्नान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है तथा बुधवार और श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशी दान आदि कर्मोंमें महान् फलदायिनी होती है॥ १-२॥

त्रयोदशीके निषिद्ध होनेपर भी इस व्रतका पारण त्रयोदशीको करना चाहिये—

संकल्प-मन्त्र

द्वादश्यां च निराहारो वामनं पूजयाम्यहम्॥
उदकुम्भे स्वर्णमयं त्रयोदश्यां तु पारणम्।

'मैं द्वादशीको निराहार रहकर जलपूर्ण कलशपर स्थित स्वर्णनिर्मित वामन-मूर्तिका पूजन करता हूँ एवं मैं व्रतका पारण त्रयोदशीको करूँगा।'

आवाहन-मन्त्र

आवाहयाम्यहं विष्णुं वामनं शङ्खचक्रिणम्॥
सितवस्त्रयुगच्छन्ने घटे सच्छत्रपादुके।

'मैं दो श्वेतवस्त्रोंसे आच्छादित एवं छत्र-पादुकाओंसे युक्त कलशपर शङ्ख-चक्रधारी वामनावतार विष्णुका आवाहन करता हूँ।'

स्नानार्पण-मन्त्र

स्नापयामि जलैः शुद्धैर्विष्णुं पञ्चामृतादिभिः॥
छत्रदण्डधरं विष्णुं वामनाय नमो नमः।

'मैं छत्र एवं दण्डसे विभूषित सर्वव्यापी श्रीविष्णुको पञ्चामृत आदि एवं विशुद्ध जलका स्नान समर्पित करता हूँ। भगवान् वामनको नमस्कार है।'

अर्घ्यदान-मन्त्र

अर्घ्यं ददामि देवेश अर्घ्यार्हाद्यैः सदार्चितः॥
भुक्तिमुक्तिप्रजाकीर्तिसर्वैश्वर्ययुतं कुरु।

'देवेश्वर! आप अर्घ्यके अधिकारी पुरुषों तथा दूसरे लोगोंद्वारा भी सदैव पूजित हैं। मैं आपको अर्घ्यदान करता हूँ। मुझे भोग, मोक्ष, संतान, यश और सभी प्रकारके ऐश्वर्योंसे युक्त कीजिये।'

फिर '**वामनाय नमः**' इस मन्त्रसे गन्धद्रव्य समर्पित करे और इसी मन्त्रद्वारा श्रीहरिके उद्देश्यसे एक सौ आठ आहुतियाँ दे॥ ३—७॥

'**ॐ नमो वासुदेवाय।**' मन्त्रसे श्रीहरिके शिरोभागकी अर्चना करे। '**श्रीधराय नमः।**' से मुखका, '**कृष्णाय नमः।**' से कण्ठ-देशका, '**श्रीपतये नमः।**' कहकर वक्षःस्थलका, '**सर्वास्त्रधारिणे नमः।**' कहकर दोनों भुजाओंका, '**व्यापकाय नमः।**' से नाभि और '**वामनाय नमः।**' बोलकर कटिप्रदेशका पूजन करे। '**त्रैलोक्यजननाय नमः।**' मन्त्रसे भगवान् वामनके उपस्थकी, '**सर्वाधिपतये नमः।**' से दोनों जङ्घाओंकी एवं '**सर्वात्मने नमः।**' कहकर श्रीविष्णुके चरणोंकी पूजा करे॥ ८—१०॥

तदनन्तर वामन भगवान्‌को घृतसिद्ध नैवेद्य और दही-भातसे परिपूर्ण कुम्भ समर्पित करे। रात्रिमें जागरण करके प्रातःकाल संगममें स्नान करे। फिर गन्ध-पुष्पादिसे भगवान्‌का पूजन करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि समर्पित करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञित॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।
प्रीयतां देवदेवेश मम नित्यं जनार्दन॥

'बुध एवं श्रवणसंज्ञक गोविन्द! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरे पापसमूहका विनाश करके समस्त सौख्य प्रदान कीजिये। देवदेवेश्वर जनार्दन! आप मेरी इस पुष्पाञ्जलिसे नित्य प्रसन्न हों'॥ ११—१३॥

(तत्पश्चात् सम्पूर्ण पूजन-द्रव्य इस मन्त्रसे किसी विद्वान् ब्राह्मणको दे—)

वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयम्।
वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो मे ददाति च॥
द्रव्यस्थो वामनो नित्यं वामनाय नमो नमः।

'भगवान् वामनने मुझे दानकी बुद्धि प्रदान की है। वे ही दाता हैं। देय-द्रव्यमें भी स्वयं वामन स्थित हैं। वामन भगवान् ही इसे ग्रहण कर रहे हैं और वामन ही मुझे प्रदान करते

हैं। भगवान् वामन नित्य सभी द्रव्योंमें स्थित हैं। उन श्रीवामनावतार विष्णुको नमस्कार है, नमस्कार है।'

इस प्रकार ब्राह्मणको दक्षिणासहित पूजन-द्रव्य देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भोजन करे॥ १४-१५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्रवणद्वादशी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८९॥

एक सौ नब्बेवाँ अध्याय

अखण्डद्वादशी-व्रतका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं 'अखण्डद्वादशी'-व्रतके विषयमें कहता हूँ, जो समस्त व्रतोंकी सम्पूर्णताका सम्पादन करनेवाली है। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी द्वादशीको उपवास करके भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। व्रत करनेवाला मनुष्य पञ्चगव्य-मिश्रित जलसे स्नान करे और उसीका पारण करे। इस द्वादशीको ब्राह्मणको जौ और धानसे भरा हुआ पात्र दान दे। भगवान् श्रीविष्णुके सम्मुख इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन्! सात जन्मोंमें मेरे द्वारा जो व्रत खण्डित हुआ हो, आपकी कृपासे वह मेरे लिये अखण्ड फलदायक हो जाय। पुरुषोत्तम! जैसे आप इस अखण्ड चराचर विश्वके रूपमें स्थित हैं, उसी प्रकार मेरे किये हुए समस्त व्रत अखण्ड हो जायँ।' इस प्रकार (मार्गशीर्षसे आरम्भ करके फाल्गुनतक) प्रत्येक मासमें करना चाहिये। इस व्रतको चार महीनेतक करनेका विधान है। चैत्रसे आषाढ़पर्यन्त यह व्रत करनेपर सत्तूसे भरा हुआ पात्र दान करे। श्रावणसे प्रारम्भ करके इस व्रतको कार्तिकमें समाप्त करना चाहिये। उपर्युक्त विधिसे 'अखण्डद्वादशी' का व्रत करनेपर सात जन्मोंके खण्डित व्रतोंको यह सफल बना देता है। इसके करनेसे मनुष्य दीर्घ आयु, आरोग्य, सौभाग्य, राज्य और विविध भोग आदि प्राप्त करता है॥ १—६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अखण्डद्वादशी-व्रतका वर्णन' नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९०॥

एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय

त्रयोदशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं त्रयोदशी तिथिके व्रत कहता हूँ, जो सब कुछ देनेवाले हैं। पहले मैं 'अनङ्गत्रयोदशी'के विषयमें बतलाता हूँ। पूर्वकालमें अनङ्ग (कामदेव)-ने इसका व्रत किया था। मार्गशीर्ष शुक्ला त्रयोदशीको कामदेवस्वरूप 'हर' की पूजा करे। रात्रिमें मधुका भोजन करे तथा तिल और अक्षत-मिश्रित घृतका होम करे। पौषमें 'योगेश्वर'का पूजन एवं होम करके चन्दनका प्राशन करे। माघमें 'महेश्वर'की अर्चना करके मौक्तिक (रास्ना नामक पौधेके) जलका आहार करे। इससे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। व्रत करनेवाला फाल्गुनमें 'वीरभद्र' का पूजन करके कङ्कोलका प्राशन करे। चैत्रमें 'सुरूप' नामक शिवकी अर्चना करके कर्पूरका आहार करनेवाला मनुष्य सौभाग्ययुक्त होता है। वैशाखमें 'महारूप' की पूजा करके

जायफलका भोजन करे। व्रत करनेवाला मनुष्य ज्येष्ठ मासमें 'प्रद्युम्न' का पूजन करे और लौंग चबाकर रहे। आषाढ़में 'उमापति' की अर्चना करके तिलमिश्रित जलका पान करे। श्रावणमें 'शूलपाणि' का पूजन करके सुगन्धित जलका पान करे। भाद्रपदमें अगुरुका प्राशन करे और 'सद्योजात' का पूजन करे। आश्विनमें 'त्रिदशाधिप शंकर' के पूजनपूर्वक स्वर्णजलका पान करे। व्रती पुरुष कार्तिकमें 'विश्वेश्वर'की अर्चनाके अनन्तर लवणका भक्षण करे। इस प्रकार वर्षके समाप्त होनेपर स्वर्णनिर्मित शिवलिङ्गको आमके पत्तों और वस्त्रसे ढककर ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक दान दे। साथ ही गौ, शय्या, छत्र, कलश, पादुका तथा रसपूर्ण पात्र भी दे॥ १—९॥

चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको सिन्दूर और काजलसे अशोकवृक्षको अङ्कित करके उसके नीचे रति और प्रीति (कामकी पत्नियों)-से युक्त कामदेवका स्मरण करे। इस प्रकार कामनायुक्त साधक एक वर्षतक कामदेवका पूजन करे। यह 'कामत्रयोदशी व्रत' कहलाता है॥ १०-११॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'त्रयोदशीके व्रतका वर्णन' नामक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९१॥

एक सौ बानबेवाँ अध्याय

चतुर्दशी-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं चतुर्दशी तिथिको किये जानेवाले व्रतका वर्णन करूँगा। वह व्रत भोग और मोक्ष देनेवाला है। कार्तिककी चतुर्दशीको निराहार रहकर भगवान् शिवका पूजन करे और वहींसे आरम्भ करके प्रत्येक मासकी शिव-चतुर्दशीको व्रत और शिवपूजनका क्रम चलाते हुए एक वर्षतक इस नियमको निभावे। ऐसा करनेवाला पुरुष भोग, धन और दीर्घायुसे सम्पन्न होता है॥ १$\frac{1}{2}$॥

मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें अष्टमी, तृतीया, द्वादशी अथवा चतुर्दशीको मौन धारण करके फलाहारपर रहे और देवताका पूजन करे तथा कुछ फलोंका सदाके लिये त्याग करके उन्हींका दान करे। इस प्रकार 'फलचतुर्दशी' का व्रत करनेवाला पुरुष शुक्ल और कृष्ण—दोनों पक्षोंकी चतुर्दशी एवं अष्टमीको उपवासपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे। इस विधिसे दोनों पक्षोंकी चतुर्दशीका व्रत करनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है। कृष्णपक्षकी अष्टमी तथा चतुर्दशीको नक्तव्रत (केवल रातमें भोजन) करनेसे साधक इहलोकमें अभीष्ट भोग तथा परलोकमें शुभ गति पाता है। कार्तिककी कृष्णा चतुर्दशीको स्नान करके ध्वजके आकारवाले बाँसके डंडोंपर देवराज इन्द्रकी आराधना करनेसे मनुष्य सुखी होता है॥ २—६॥

तदनन्तर प्रत्येक मासकी शुक्ल चतुर्दशीको श्रीहरिके कुशमय विग्रहका निर्माण करके उसे जलसे भरे पात्रके ऊपर पधरावे और उसका पूजन करे। उस दिन अगहनी धानके एक सेर चावलके आटेका पूआ बनवा ले। उसमेंसे आधा ब्राह्मणको दे दे और आधा अपने उपयोगमें लावे॥ ७-८॥

नदियोंके तटपर इस व्रत और पूजनका आयोजन करके वहीं श्रीहरिके 'अनन्तव्रत'की कथाका भी श्रवण या कीर्तन करना चाहिये। उस समय चतुर्दश ग्रन्थियोंसे युक्त अनन्तसूत्रका निर्माण करके अनन्तकी भावनासे ही उसका पूजन करे। फिर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसे

अपने हाथ या कण्ठमें बाँध ले। मन्त्र इस प्रकार है—

अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव॥
अनन्तरूपे विनियोजयस्व ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते।

"हे वासुदेव! संसाररूपी अपार पारावारमें डूबे हुए हम-जैसे प्राणियोंका आप उद्धार करें। आपके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं है। आप हमें अपने उसी 'अनन्त' स्वरूपमें मिला लें। आप अनन्तरूप परमेश्वरको बारंबार नमस्कार है।" इस प्रकार अनन्तव्रतका अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य परमानन्दका भागी होता है॥ ९-१०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अनेक प्रकारके चतुर्दशी-व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९२॥

एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय

शिवरात्रि-व्रत

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले 'शिवरात्रि-व्रत' का वर्णन करता हूँ; एकाग्रचित्तसे उसका श्रवण करो। फाल्गुनके कृष्ण-पक्षकी चतुर्दशीको मनुष्य कामनासहित उपवास करे। व्रत करनेवाला रात्रिको जागरण करे और यह कहे—'मैं चतुर्दशीको भोजनका परित्याग करके शिवरात्रिका व्रत करता हूँ। मैं व्रतयुक्त होकर रात्रि-जागरणके द्वारा शिवका पूजन करता हूँ। मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले शंकरका आवाहन करता हूँ। शिव! आप नरक-समुद्रसे पार करानेवाली नौकाके समान हैं; आपको नमस्कार है। आप प्रजा और राज्यादि प्रदान करनेवाले, मङ्गलमय एवं शान्तस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप सौभाग्य, आरोग्य, विद्या, धन और स्वर्ग-मार्गकी प्राप्ति करानेवाले हैं। मुझे धर्म दीजिये, धन दीजिये और कामभोगादि प्रदान कीजिये। मुझे गुण, कीर्ति और सुखसे सम्पन्न कीजिये तथा स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कीजिये।' इस शिवरात्रि-व्रतके प्रभावसे पापात्मा सुन्दरसेन व्याधने भी पुण्य प्राप्त किया॥ १—६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिवरात्रि-व्रतका वर्णन' नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९३॥

एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय

अशोकपूर्णिमा आदि व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— अब मैं 'अशोकपूर्णिमा'के विषयमें कहता हूँ। फाल्गुनके शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको भगवान् वराह और भूदेवीका पूजन करे। एक वर्ष ऐसा करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है। कार्तिककी पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग करके रात्रिव्रतका अनुष्ठान करे। इससे मनुष्य शिवलोकको प्राप्त होता है। यह उत्तम व्रत 'वृषोत्सर्गव्रत'के नामसे प्रसिद्ध है। आश्विनके पितृपक्षकी अमावास्याको पितरोंके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय होता है। मनुष्य किसी वर्ष इस अमावास्याको उपवासपूर्वक पितरोंका पूजन करके पापरहित होकर स्वर्गको प्राप्त कर लेता है। माघ मासकी अमावास्याको (सावित्रीसहित) ब्रह्माका पूजन करके मनुष्य

सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। अब मैं 'वटसावित्री'-सम्बन्धी अमावास्याके विषयमें कहता हूँ, जो पुण्यमयी एवं भोग और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली है। व्रत करनेवाली नारी (त्रयोदशीसे अमावास्यातक) 'त्रिरात्रव्रत' करे और ज्येष्ठकी अमावास्याको वटवृक्षके मूलभागमें महासती सावित्रीका सप्तधान्यसे पूजन करे। जब रात्रि कुछ शेष हो, उसी समय वटके कण्ठ-सूत्र लपेटकर कुङ्कुमादिसे उसका पूजन करे। प्रभातकालमें वटके समीप नृत्य करे और गीत गाये। '**नमः सावित्र्यै सत्यवते।**' (सत्यवान्-सावित्रीको नमस्कार है)—ऐसा कहकर सत्यवान्-सावित्रीको नमस्कार करे और उनको समर्पित किया हुआ नैवेद्य ब्राह्मणको दे। फिर अपने घर आकर ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भी भोजन करे। '**सावित्रीदेवी प्रीयताम्।**' (सावित्रीदेवी प्रसन्न हों)—ऐसा कहकर व्रतका विसर्जन करे। इससे नारी सौभाग्य आदिको प्राप्त करती है॥ १—८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'तिथि-व्रतका वर्णन' नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९४॥

एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय

वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। जब रविवारको हस्त अथवा पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो, तब पवित्र सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये। इस प्रकार रविवारको श्राद्ध करनेवाला सात जन्मोंमें रोगसे पीड़ित नहीं होता। संक्रान्तिके दिन यदि रविवार हो, तो उसे पवित्र 'आदित्य-हृदय' माना गया है। उस दिन अथवा हस्तनक्षत्रयुक्त रविवारको एक वर्षतक नक्तव्रत करके मनुष्य सब कुछ पा लेता है। चित्रानक्षत्रयुक्त सोमवारके सात व्रत करके मनुष्य सुख प्राप्त करता है। स्वातीनक्षत्रसे युक्त मङ्गलवारका व्रत आरम्भ करे। इस प्रकार मङ्गलवारके सात नक्तव्रत करके मनुष्य दुःख-बाधाओंसे छुटकारा पाता है। बुध-सम्बन्धी व्रतमें विशाखा नक्षत्रयुक्त बुधवारको ग्रहण करे। उससे आरम्भ करके बुधवारके सात नक्तव्रत करनेवाला बुधग्रहजनित पीड़ासे मुक्त हो जाता है। अनुराधानक्षत्रयुक्त गुरुवारसे आरम्भ करके सात नक्तव्रत करनेवाला बृहस्पति-ग्रहकी पीड़ासे, ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त शुक्रवारको व्रत ग्रहण करके सात नक्तव्रत करनेवाला शुक्रग्रहकी पीड़ासे और मूलनक्षत्रयुक्त शनिवारसे आरम्भ करके सात नक्तव्रत करनेवाला शनिग्रहकी पीड़ासे निवृत्त हो जाता है॥ १—५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९५॥

एक सौ छियानबेवाँ अध्याय

नक्षत्र-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं नक्षत्र-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। नक्षत्र-विशेषमें पूजन करनेपर श्रीहरि अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति करते हैं। सर्वप्रथम नक्षत्र-पुरुष श्रीहरिका चैत्र मासमें पूजन करे। मूल नक्षत्रमें श्रीहरिके चरण-कमलोंकी और रोहिणी नक्षत्रमें उनकी जङ्घाओंकी

अर्चना करे। अश्विनी नक्षत्रके प्राप्त होनेपर जानुयुग्मका, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ामें इनकी दोनों ऊरुओंका, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीमें उपस्थका, कृत्तिका नक्षत्रमें कटिप्रदेशका, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदामें पार्श्वभागका, रेवती नक्षत्रमें कुक्षिदेशका, अनुराधामें स्तनयुगलका, धनिष्ठामें पृष्ठभागका, विशाखामें दोनों भुजाओंका एवं पुनर्वसु नक्षत्रमें अँगुलियोंका पूजन करे। आश्लेषामें नखोंका पूजन करके ज्येष्ठामें कण्ठका यजन करे। श्रवण नक्षत्रमें सर्वव्यापी श्रीहरिके कर्णद्वयका और पुष्य नक्षत्रमें वदन-मण्डलका पूजन करे। स्वाती नक्षत्रमें उनके दाँतोंके अग्रभागकी, शतभिषा नक्षत्रमें मुखकी अर्चना करे। मघा नक्षत्रमें नासिकाकी,मृगशिरा नक्षत्रमें नेत्रोंकी, चित्रा नक्षत्रमें ललाटकी एवं आर्द्रा नक्षत्रमें केशसमूहकी पूजा करे। वर्षके समाप्त होनेपर गुड़से परिपूर्ण कलशपर श्रीहरिकी स्वर्णमयी मूर्तिकी पूजा करके ब्राह्मणको दक्षिणासहित शय्या, गौ और धनादिका दान दे॥ १—७॥

सबके पूजनीय नक्षत्रपुरुष श्रीविष्णु शिवसे अभिन्न हैं, इसलिये शाम्भवायनीय (शिव-सम्बन्धी) व्रत करनेवालेको कृत्तिका-नक्षत्र-सम्बन्धी कार्तिक मासमें और मृगशिरा-नक्षत्र-सम्बन्धी मार्गशीर्ष मासमें केशव आदि नामों एवं '**अच्युताय नमः।**' आदि मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये—

संकल्प-मन्त्र

कार्तिके कृत्तिकाभेऽह्नि मासनक्षत्रगं हरिम्।
शाम्भवायनीयव्रतकं करिष्ये भुक्तिमुक्तिदम्॥

'मैं कार्तिक मासकी कृत्तिकानक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा तिथिको मास एवं नक्षत्रमें स्थित श्रीहरिका पूजन करूँगा तथा भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले शाम्भवायनीय व्रतका अनुष्ठान करूँगा।'

आवाहन-मन्त्र

केशवादिमहामूर्तिमच्युतं सर्वदायकम्।
आवाहयाम्यहं देवमायुरारोग्यवृद्धिदम्॥

'जो केशव आदि महामूर्तियोंके रूपमें स्थित हैं और आयु एवं आरोग्यकी वृद्धि करनेवाले हैं, मैं उन सर्वप्रद भगवान् अच्युतका आवाहन करता हूँ।'

व्रतकर्ता कार्तिकसे माघतक चार मासोंमें सदा अन्न-दान करे। फाल्गुनसे ज्येष्ठतक खिचड़ीका और आषाढ़से आश्विनतक खीरका दान करे। भगवान् श्रीहरि एवं ब्राह्मणोंको रात्रिके समय नैवेद्य समर्पित करे। पञ्चगव्यके जलसे स्नान एवं उसका आचमन करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। मूर्तिके विसर्जनके पूर्व भगवान्‌को समर्पित किये हुए समस्त पदार्थोंको 'नैवेद्य' कहा जाता है, परंतु जगदीश्वर श्रीहरिके विसर्जनके अनन्तर वह तत्काल ही 'निर्माल्य' हो जाता है। (तदनन्तर भगवान्‌से निम्नलिखित प्रार्थना करे—) 'अच्युत! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरे पापोंका विनाश हो और पुण्योंकी वृद्धि हो। मेरे ऐश्वर्य और धनादि सदा अक्षय हों एवं मेरी संतान-परम्परा कभी उच्छिन्न न हो। परात्परस्वरूप! अप्रमेय परमेश्वर! जिस प्रकार आप परसे भी परे एवं ब्रह्मभावमें स्थित होकर अपनी मर्यादासे कभी च्युत नहीं होते हैं, उसी प्रकार आप मेरे मनोवाञ्छित कार्यको सिद्ध कीजिये। पापापहारी भगवन्! मेरे द्वारा किये गये पापोंका अपहरण कीजिये। अच्युत! अनन्त! गोविन्द! अप्रमेयस्वरूप पुरुषोत्तम! मुझपर प्रसन्न होइये और मेरे मनोभिलषित पदार्थको अक्षय कीजिये।' इस प्रकार सात वर्षोंतक श्रीहरिका पूजन करके मनुष्य भोग और मोक्षको सिद्ध कर लेता है॥ ८—१७½॥

अब मैं नक्षत्र-सम्बन्धी व्रतोंके प्रकरणमें अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति करानेवाले 'अनन्तव्रत'का वर्णन करूँगा। मार्गशीर्ष मासमें जब मृगशिरा नक्षत्र प्राप्त हो, तब गोमूत्रका प्राशन करके श्रीहरिका यजन करे। वे भगवान् अनन्त समस्त कामनाओंका अनन्त फल प्रदान करते हैं।

इतना ही नहीं, वे पुनर्जन्ममें भी व्रतकर्ताको अनन्त पुण्यफलसे संयुक्त करते हैं। यह महाव्रत अनन्त पुण्यका संचय करनेवाला है। यह अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति कराके उसे अक्षय बनाता है। भगवान् अनन्तके चरणकमल आदिका पूजन करके रात्रिके समय तैलरहित भोजन करे। भगवान् अनन्तके उद्देश्यसे मार्गशीर्षसे फाल्गुनतक घृतका, चैत्रसे आषाढ़तक अगहनीके चावलका और श्रावणसे कार्तिकतक दुग्धका हवन करे। इस 'अनन्त' व्रतके प्रभावसे ही युवनाश्वको मान्धाता पुत्ररूपमें प्राप्त हुए थे॥ १८—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नक्षत्र-व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ छियानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९६॥

एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय

दिन-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं दिवस-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। सबसे पहले 'धेनुव्रत'के विषयमें बतलाता हूँ। जो मनुष्य विपुल स्वर्णराशिके साथ उभयमुखी गौका दान करता है और एक दिनतक पयोव्रतका आचरण करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। स्वर्णमय कल्पवृक्षका दान देकर तीन दिनतक 'पयोव्रत' करनेवाला ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। इसे 'कल्पवृक्ष-व्रत' कहा गया है। बीस पलसे अधिक स्वर्णकी पृथ्वीका निर्माण कराके दान दे और एक दिन पयोव्रतका अनुष्ठान करे। केवल दिनमें व्रत रखनेसे मनुष्य रुद्रलोकको प्राप्त होता है। जो प्रत्येक पक्षकी तीन रात्रियोंमें 'एकभुक्त-व्रत' रखता है, वह दिनमें निराहार रहकर 'त्रिरात्रव्रत' करनेवाला मनुष्य विपुल धन प्राप्त करता है। प्रत्येक मासमें तीन एकभुक्त नक्तव्रत करनेवाला गणपतिके सायुज्यको प्राप्त होता है। जो भगवान् जनार्दनके उद्देश्यसे 'त्रिरात्रव्रत'का अनुष्ठान करता है, वह अपने सौ कुलोंके साथ भगवान् श्रीहरिके वैकुण्ठधामको जाता है। व्रतानुरागी मनुष्य मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी नवमीसे विधिपूर्वक त्रिरात्रव्रत प्रारम्भ करे। '**नमो भगवते वासुदेवाय**' मन्त्रका सहस्र अथवा सौ बार जप करे। अष्टमीको एकभुक्त (दिनमें एक बार भोजन करना) व्रत और नवमी, दशमी, एकादशीको उपवास करे। द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। यह व्रत कार्तिकमें करना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर ब्राह्मणोंको भोजन कराके, उन्हें वस्त्र, शय्या, आसन, छत्र, यज्ञोपवीत और पात्र दान करे। देते समय ब्राह्मणोंसे यह प्रार्थना करे—'इस दुष्कर व्रतके अनुष्ठानमें मेरे द्वारा जो त्रुटि हुई हो, आप लोगोंकी आज्ञासे वह परिपूर्ण हो जाय।' यह 'त्रिरात्रव्रत' करनेवाला इस लोकमें भोगोंका उपभोग करके मृत्युके पश्चात् भगवान् श्रीविष्णुके सांनिध्यको प्राप्त करता है॥ १—११॥

अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले कार्तिकव्रतके विषयमें कहता हूँ। दशमीको पञ्चगव्यका प्राशन करके एकादशीको उपवास करे। इस व्रतके पालनमें कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रीविष्णुका पूजन करनेवाला मनुष्य विमानचारी देवता होता है। चैत्रमें त्रिरात्रव्रत करके केवल रात्रिके समय भोजन करनेवाला एवं व्रतकी समाप्तिमें पाँच बकरियोंका दान देनेवाला सुखी होता है। कार्तिकके शुक्लपक्षकी षष्ठीसे आरम्भ करके तीन दिनतक केवल दुग्ध पीकर रहे। फिर तीन दिनतक उपवास करे। इसे 'माहेन्द्रकृच्छ्र'

कहा जाता है। कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको आरम्भ करके 'पञ्चरात्रव्रत' करे। प्रथम दिन दुग्धपान करे, दूसरे दिन दधिका आहार करे, फिर तीन दिन उपवास करे। यह अर्थप्रद 'भास्करकृच्छ्र' कहलाता है। शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे आरम्भ करके छः दिनतक क्रमशः यवकी लपसी, शाक, दधि, दुग्ध, घृत और जल—इन वस्तुओंका आहार करे। इसे 'सांतपनकृच्छ्र' कहा गया है॥ १२—१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दिवस-सम्बन्धी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९७॥

एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय

मास-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं मास-व्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। आषाढ़से प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मास्यमें अभ्यङ्ग (मालिश और उबटन)-का त्याग करे। इससे मनुष्य उत्तम बुद्धि प्राप्त करता है। वैशाखमें पुष्परेणुतकका परित्याग करके गोदान करनेवाला राज्य प्राप्त करता है। एक मास उपवास रखकर गोदान करनेवाला इस भीमव्रतके प्रभावसे श्रीहरिस्वरूप हो जाता है। आषाढ़से प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मास्यमें नियमपूर्वक प्रातःस्नान करनेवाला विष्णुलोकको जाता है। माघ अथवा चैत्र मासकी तृतीयाको गुड़-धेनुका दान दे, इसे 'गुड़व्रत' कहा गया है। इस महान् व्रतका अनुष्ठान करनेवाला शिवस्वरूप हो जाता है। मार्गशीर्ष आदि मासोंमें 'नक्तव्रत' (रात्रिमें एक बार भोजन) करनेवाला विष्णुलोकका अधिकारी होता है। 'एकभुक्त व्रत'का पालन करनेवाला उसी प्रकार पृथक् रूपसे द्वादशीव्रतका भी पालन करे। 'फलव्रत' करनेवाला चातुर्मास्यमें फलोंका त्याग करके उनका दान करे॥ १—५॥

श्रावणसे प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मास्यमें व्रतोंके अनुष्ठानसे व्रतकर्ता सब कुछ प्राप्त कर लेता है। चातुर्मास्य-व्रतोंका इस प्रकार विधान करे—आषाढ़के शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास रखे। प्रायः आषाढ़में प्राप्त होनेवाली कर्क-संक्रान्तिमें श्रीहरिका पूजन करे और कहे—'भगवन्! मैंने आपके सम्मुख यह व्रत ग्रहण किया है। केशव! आपकी प्रसन्नतासे इसकी निर्विघ्न सिद्धि हो। देवाधिदेव जनार्दन! यदि इस व्रतके ग्रहणके अनन्तर इसकी अपूर्णतामें ही मेरी मृत्यु हो जाय, तो आपके कृपा-प्रसादसे यह व्रत सम्पूर्ण हो।' व्रत करनेवाला द्विज मांस आदि निषिद्ध वस्तुओं और तेलका त्याग करके श्रीहरिका यजन करे। एक दिनके अन्तरसे उपवास रखकर त्रिरात्रव्रत करनेवाला विष्णुलोकको प्राप्त होता है। 'चान्द्रायण व्रत' करनेवाला विष्णुलोकका और 'मौन व्रत' करनेवाला मोक्षका अधिकारी होता है। 'प्राजापत्य व्रत' करनेवाला स्वर्गलोकको जाता है। सत्तू और यवका भक्षण करके, दुग्ध आदिका आहार करके, अथवा पञ्चगव्य एवं जल पीकर कृच्छ्रव्रतोंका अनुष्ठान करनेवाला स्वर्गको प्राप्त होता है। शाक, मूल और फलके आहारपूर्वक कृच्छ्रव्रत करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठको जाता है। मांस और रसका परित्याग करके जौका भोजन करनेवाला श्रीहरिके सांनिध्यको प्राप्त करता है॥ ६—१२½॥

अब मैं 'कौमुदव्रत'का वर्णन करूँगा। आश्विनके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास रखे। द्वादशीको श्रीविष्णुके अङ्गोंमें चन्दनादिका अनुलेपन करके कमल और उत्पल आदि पुष्पोंसे उनका पूजन करे। तदनन्तर तिल-तैलसे परिपूर्ण दीपक और घृतसिद्ध पक्वान्नका नैवेद्य समर्पित करे। श्रीविष्णुको मालतीपुष्पोंकी माला भी निवेदन करे। '**ॐ नमो**

वासुदेवाय'—इस मन्त्रसे व्रतका विसर्जन करे। इस प्रकार 'कौमुदव्रत'का अनुष्ठान करनेवाला धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको हस्तगत कर लेता है। मासोपवास व्रत करनेवाला श्रीविष्णुका पूजन करके सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ १३—१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मास-सम्बन्धी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९८॥

एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय

ऋतु, वर्ष, मास, संक्रान्ति आदि विभिन्न व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं आपके सम्मुख ऋतु-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जो भोग और मोक्षको सुलभ करनेवाले हैं। जो वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें इन्धनका दान करता है, एवं व्रतान्तमें घृत-धेनुका दान करता है, वह 'अग्निव्रत'का पालन करनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें ब्राह्मण होता है। जो एक मासतक संध्याके समय मौन रहकर मासान्तमें ब्राह्मणको घृतकुम्भ, तिल, घण्टा और वस्त्र देता है, वह 'सारस्वतव्रत' करनेवाला मनुष्य सुखका उपभोग करता है। एक वर्षतक पञ्चामृतसे स्नान करके गोदान करनेवाला राजा होता है॥ १—३॥

चैत्रकी एकादशीको नक्तभुक्तव्रत करके चैत्रके समाप्त होनेपर विष्णुभक्त ब्राह्मणको स्वर्णमयी विष्णु-प्रतिमाका दान करे। इस विष्णु-सम्बन्धी उत्तम व्रतका पालन करनेवाला विष्णुपदको प्राप्त करता है। (एक वर्षतक) खीरका भोजन करके गोयुग्मका दान करनेवाला इस 'देवीव्रत'के पालनके प्रभावसे श्रीसम्पन्न होता है। जो (एक वर्षतक) पितृदेवोंको समर्पित करके भोजन करता है, वह राज्य प्राप्त करता है। ये वर्ष-सम्बन्धी व्रत कहे गये। अब मैं संक्रान्ति-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। मनुष्य संक्रान्तिकी रात्रिको जागरण करनेसे स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। जब संक्रान्ति अमावास्या तिथिमें हो तो शिव और सूर्यका पूजन करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। उत्तरायण-सम्बन्धिनी मकर-संक्रान्तिमें प्रातःकाल स्नान करके भगवान् श्रीकेशवकी अर्चना करनी चाहिये। उद्यापनमें बत्तीस पल स्वर्णका दान देकर वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। विषुव आदि योगोंमें भगवान् श्रीहरिको घृतमिश्रित दुग्ध आदिसे स्नान कराके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ ४—८॥

स्त्रियोंके लिये 'उमाव्रत' लक्ष्मी प्रदान करनेवाला है। उन्हें तृतीया और अष्टमी तिथिको गौरीशंकरकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार शिव-पार्वतीकी अर्चना करके नारी अखण्ड सौभाग्य प्राप्त करती है और उसे कभी पतिका वियोग नहीं होता। 'मूलव्रत' एवं 'उमेश-व्रत' करनेवाली तथा सूर्यमें भक्ति रखनेवाली स्त्री दूसरे जन्ममें अवश्य पुरुषत्व प्राप्त करती है॥ ९—११॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विभिन्न व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९९॥

दो सौवाँ अध्याय

दीपदान-व्रतकी महिमा एवं विदर्भराजकुमारी ललिताका उपाख्यान

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले 'दीपदान-व्रत'का वर्णन करता हूँ। जो मनुष्य देवमन्दिर अथवा ब्राह्मणके गृहमें एक वर्षतक दीपदान करता है,

वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। चातुर्मास्यमें दीपदान करनेवाला विष्णुलोकको और कार्तिकमें दीपदान करनेवाला स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। दीपदानसे बढ़कर न कोई व्रत है, न था और न होगा ही। दीपदानसे आयु और नेत्रज्योतिकी प्राप्ति होती है। दीपदानसे धन और पुत्रादिकी भी प्राप्ति होती है। दीपदान करनेवाला सौभाग्ययुक्त होकर स्वर्गलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है। विदर्भराजकुमारी ललिता दीपदानके पुण्यसे ही राजा चारुधर्माकी पत्नी हुई और उसकी सौ रानियोंमें प्रमुख हुई। उस साध्वीने एक बार विष्णुमन्दिरमें सहस्र दीपोंका दान किया। इसपर उसकी सपत्नियोंने उससे दीपदानका माहात्म्य पूछा। उनके पूछनेपर उसने इस प्रकार कहा— ॥ १—५ ॥

ललिता बोली— पहलेकी बात है, सौवीरराजके यहाँ मैलेय नामक पुरोहित थे। उन्होंने देविका नदीके तटपर भगवान् श्रीविष्णुका मन्दिर बनवाया। कार्तिक मासमें उन्होंने दीपदान किया। बिलावके डरसे भागती हुई एक चुहियाने अकस्मात् अपने मुखके अग्रभागसे उस दीपककी बत्तीको बढ़ा दिया। बत्तीके बढ़नेसे वह बुझता हुआ दीपक प्रज्वलित हो उठा। मृत्युके पश्चात् वही चुहिया राजकुमारी हुई और राजा चारुधर्माकी सौ रानियोंमें पटरानी हुई। इस प्रकार मेरे द्वारा बिना सोचे-समझे जो विष्णुमन्दिरके दीपककी वर्तिका बढ़ा दी गयी, उसी पुण्यका मैं फल भोग रही हूँ। इसीसे मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण भी है। इसलिये मैं सदा दीपदान किया करती हूँ। एकादशीको दीपदान करनेवाला स्वर्गलोकमें विमानपर आरूढ़ होकर प्रमुदित होता है। मन्दिरका दीपक हरण करनेवाला गूँगा अथवा मूर्ख हो जाता है। वह निश्चय ही 'अन्धतामिस्र' नामक नरकमें गिरता है, जिसे पार करना दुष्कर है। वहाँ रुदन करते हुए मनुष्योंसे यमदूत कहता है—"अरे! अब यहाँ विलाप क्यों करते हो? यहाँ विलाप करनेसे क्या लाभ है? पहले तुमलोगोंने प्रमादवश सहस्रों जन्मोंके बाद प्राप्त होनेवाले मनुष्य-जन्मकी उपेक्षा की थी। वहाँ तो अत्यन्त मोहयुक्त चित्तसे तुमने भोगोंके पीछे दौड़ लगायी। पहले तो विषयोंका आस्वादन करके खूब हँसे थे, अब यहाँ क्यों रो रहे हो? तुमने पहले ही यह क्यों नहीं सोचा कि किये हुए कुकर्मोंका फल भोगना पड़ता है। पहले जो परनारीका कुचमर्दन तुम्हें प्रीतिकर प्रतीत होता था, वही अब तुम्हारे दुःखका कारण हुआ है। मुहूर्तभरका विषयोंका आस्वादन अनेक करोड़ वर्षोंतक दुःख देनेवाला होता है। तुमने परस्त्रीका अपहरण करके जो कुकर्म किया, वह मैंने बतलाया। अब 'हा! मातः' कहकर विलाप क्यों करते हो? भगवान् श्रीहरिके नामका जिह्वासे उच्चारण करनेमें कौन-सा बड़ा भार है? बत्ती और तेल अल्प मूल्यकी वस्तुएँ हैं और अग्नि तो वैसे ही सदा सुलभ है। इसपर भी तुमने दीपदान न करके विष्णु-मन्दिरके दीपकका हरण किया, वही तुम्हारे लिये दुःखदायी हो रहा है। विलाप करनेसे क्या लाभ? अब तो जो यातना मिल रही है, उसे सहन करो" ॥ ६—१८ ॥

अग्निदेव कहते हैं— ललिताकी सौतें उसके द्वारा कहे हुए इस उपाख्यानको सुनकर दीपदानके प्रभावसे स्वर्गको प्राप्त हो गयीं। इसलिये दीपदान सभी व्रतोंसे विशेष फलदायक है ॥ १९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दीपदानकी महिमाका वर्णन' नामक दो सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०० ॥

दो सौ एकवाँ अध्याय

नवव्यूहार्चन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं नवव्यूहार्चनकी विधि बताऊँगा, जिसका उपदेश भगवान् श्रीहरिने नारदजीके प्रति किया था। पद्ममय मण्डलके बीचमें '**अं**' बीजसे युक्त वासुदेवकी पूजा करे (यथा—**अं वासुदेवाय नमः**)। '**आं**' बीजसे युक्त संकर्षणका अग्निकोणमें, '**अं**' बीजसे युक्त प्रद्युम्नका दक्षिणमें, '**अः**' बीजवाले अनिरुद्धका नैर्ऋत्यकोणमें, प्रणवयुक्त नारायणका पश्चिममें, तत्सद् ब्रह्मका वायव्यकोणमें, '**हुं**' बीजसे युक्त विष्णुका और '**क्ष्रौं**' बीजसे युक्त नृसिंहका उत्तर दिशामें, पृथ्वी और वराहका ईशानकोणमें तथा पश्चिम द्वारमें पूजन करे॥ १—३॥

'**कं टं शं सं**'—इन बीजोंसे युक्त पूर्वाभिमुख गरुड़का दक्षिण दिशामें पूजन करे। '**खं छं बं हुं फट्**' तथा '**खं ठं फं शं**'—इन बीजोंसे युक्त गदाकी चन्द्रमण्डलमें पूजा करे। '**बं णं मं क्षं**' तथा '**शं धं दं भं हं**'—इन बीजोंसे युक्त श्रीदेवीका कोणभागमें पूजन करे। दक्षिण तथा उत्तर दिशामें '**गं डं बं शं**'—इन बीजोंसे युक्त पुष्टिदेवीकी अर्चना करे। पीठके पश्चिम भागमें '**धं वं**'—इन बीजोंसे युक्त वनमालाका पूजन करे। '**सं हं लं**'—इन बीजोंसे युक्त श्रीवत्सकी पश्चिम दिशामें पूजा करे और '**छं तं यं**'—इन बीजोंसे युक्त कौस्तुभका जलमें पूजन करे॥ ४—६॥

फिर दशमाङ्ग-क्रमसे विष्णुका और उनके अधोभागमें भगवान् अनन्तका उनके नामके साथ '**नमः**' पद जोड़कर पूजन करे। दस* अङ्गादिका तथा महेन्द्र आदि दस दिक्पालोंका पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे। पूर्वादि दिशाओंमें चार कलशोंका भी पूजन करे। तोरण, वितान (चँदोवा) तथा अग्नि, वायु और चन्द्रमाके बीजोंसे युक्त मण्डलोंका क्रमशः ध्यान करके अपने शरीरको वन्दनापूर्वक अमृतसे प्लावित करे। आकाशमें स्थित आत्माके सूक्ष्मरूपका ध्यान करके यह भावना करे कि वह चन्द्रमण्डलसे झरे हुए श्वेत अमृतकी धारामें निमग्न है। प्लवनसे जिसका संस्कार किया गया है, वह अमृत ही आत्माका बीज है। उस अमृतसे उत्पन्न होनेवाले पुरुषको आत्मा (अपना स्वरूप) माने। यह भावना करे कि 'मैं स्वयं ही विष्णुरूप-से प्रकट हुआ हूँ।' इसके बाद द्वादश बीजोंका न्यास करे। क्रमशः वक्षःस्थल, मस्तक, शिखा, पृष्ठभाग, नेत्र तथा दोनों हाथोंमें हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र—इन अंगोंका न्यास करे। दोनों हाथोंमें अस्त्रका न्यास करनेके पश्चात् साधकके शरीरमें दिव्यता आ जाती है॥ ७—१२॥

जैसे अपने शरीरमें न्यास करे, वैसे ही देवताके विग्रहमें भी करे तथा शिष्यके शरीरमें भी उसी तरह न्यास करे। हृदयमें जो श्रीहरिका पूजन किया जाता है, उसे 'निर्माल्यरहित पूजा' कहा गया है। मण्डल आदिमें निर्माल्यसहित पूजा की जाती है। दीक्षाकालमें शिष्योंके नेत्र बँधे रहते हैं। उस अवस्थामें इष्टदेवके विग्रहपर वे जिस फूलको फेंकें, तदनुसार ही उनका नामकरण करना चाहिये। शिष्योंको वामभागमें बैठाकर अग्निमें तिल, चावल और घीकी आहुति दे। एक सौ आठ आहुतियाँ देनेके पश्चात् कायशुद्धिके लिये एक सहस्र आहुतियोंका हवन करे। नवव्यूहकी मूर्तियों तथा अंगोंके लिये सौसे अधिक आहुतियाँ देनी चाहिये। तदनन्तर पूर्णाहुति देकर गुरु उन शिष्योंको दीक्षा दे तथा शिष्योंको चाहिये कि वे धनसे गुरुकी पूजा करें॥ १३—१६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नवव्यूहार्चनवर्णन' नामक दो सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०१॥

* पाँच अङ्गन्यास तथा पाँच करन्यास।

दो सौ दोवाँ अध्याय

देवपूजाके योग्य और अयोग्य पुष्प

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! भगवान् श्रीहरि पुष्प, गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्यके समर्पणसे ही प्रसन्न हो जाते हैं। मैं तुम्हारे सम्मुख देवताओंके योग्य एवं अयोग्य पुष्पोंका वर्णन करता हूँ। पूजनमें मालती-पुष्प उत्तम है। तमाल-पुष्प भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मल्लिका (मोतिया) समस्त पापोंका नाश करती है तथा यूथिका (जूही) विष्णुलोक प्रदान करनेवाली है। अतिमुक्तक (मोगरा) और लोध्रपुष्प विष्णुलोककी प्राप्ति करानेवाले हैं। करवीर-कुसुमोंसे पूजन करनेवाला वैकुण्ठको प्राप्त होता है तथा जपा-पुष्पोंसे मनुष्य पुण्य उपलब्ध करता है। पावन्ती, कुब्जक और तगर-पुष्पोंसे पूजन करनेवाला विष्णुलोकका अधिकारी होता है। कर्णिकार (कनेर)-द्वारा पूजन करनेसे वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है एवं कुरुण्ट (पीली कटसरैया)-के पुष्पोंसे किया हुआ पूजन पापोंका नाश करनेवाला होता है। कमल, कुन्द एवं केतकीके पुष्पोंसे परमगतिकी प्राप्ति होती है। बाणपुष्प, बर्बर-पुष्प और कृष्ण तुलसीके पत्तोंसे पूजन करनेवाला श्रीहरिके लोकमें जाता है। अशोक, तिलक तथा आटरूष (अड़ूसे)-के फूलोंका पूजनमें उपयोग करनेसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है। बिल्वपत्रों एवं शमीपत्रोंसे परमगति सुलभ होती है। तमालदल तथा भृङ्गराज-कुसुमोंसे पूजन करनेवाला विष्णुलोकमें निवास करता है। कृष्ण तुलसी, शुक्ल तुलसी, कल्हार, उत्पल, पद्म एवं कोकनद—ये पुष्प पुण्यप्रद माने गये हैं॥ १—७॥

भगवान् श्रीहरि सौ कमलोंकी माला समर्पण करनेसे परम प्रसन्न होते हैं। नीप, अर्जुन, कदम्ब, सुगन्धित बकुल (मौलसिरी), किंशुक (पलाश), मुनि (अगस्त्यपुष्प), गोकर्ण, नागकर्ण (रक्त एरण्ड), संध्यापुष्पी (चमेली), बिल्वातक, रञ्जनी एवं केतकी तथा कूष्माण्ड, ग्रामकर्कटी, कुश, कास, सरपत, विभीतक, मरुआ तथा अन्य सुगन्धित पत्रोंद्वारा भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। इनसे पूजन करनेवालेके पाप नाश होकर उसको भोग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। लक्ष स्वर्णभारसे पुष्प उत्तम है, पुष्पमाला उससे भी करोड़गुनी श्रेष्ठ है, अपने तथा दूसरोंके उद्यानके पुष्पोंकी अपेक्षा वन्य पुष्पोंका तिगुना फल माना गया है॥ ८—११ $\frac{1}{2}$॥

झड़कर गिरे, अधिकाङ्ग एवं मसले हुए पुष्पोंसे श्रीहरिका पूजन न करे। इसी प्रकार कचनार, धत्तूर, गिरिकर्णिका (सफेद किणही), कुटज, शाल्मलि (सेमर) एवं शिरीष (सिरस) वृक्षके पुष्पोंसे भी श्रीविष्णुकी अर्चना न करे। इससे पूजा करनेवालेका नरक आदिमें पतन होता है। विष्णुभगवान्‌का सुगन्धित रक्तकमल तथा नीलकमल-कुसुमोंसे पूजन होता है। भगवान् शिवका आक, मदार, धत्तूर-पुष्पोंसे पूजन किया जाता है; किंतु कुटज, कर्कटी एवं केतकी (केवड़े)-के फूल शिवके ऊपर नहीं चढ़ाने चाहिये। कूष्माण्ड एवं निम्बके पुष्प तथा अन्य गन्धहीन पुष्प 'पैशाच' माने गये हैं॥ १२—१५॥

अहिंसा, इन्द्रियसंयम, क्षमा, ज्ञान, दया एवं स्वाध्याय आदि आठ भावपुष्पोंसे देवताओंका यजन करके मनुष्य भोग-मोक्षका भागी होता है। इनमें अहिंसा प्रथम पुष्प है, इन्द्रिय-निग्रह द्वितीय पुष्प है, सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंपर दया तृतीय पुष्प है, क्षमा चौथा विशिष्ट पुष्प है। इसी प्रकार क्रमशः शम, तप एवं ध्यान पाँचवें, छठे और सातवें पुष्प हैं। सत्य आठवाँ पुष्प है। इनसे पूजित होनेपर भगवान् केशव प्रसन्न हो जाते हैं। इन आठ भावपुष्पोंसे पूजा करनेपर ही भगवान् केशव

संतुष्ट होते हैं। नरश्रेष्ठ! अन्य पुष्प तो पूजाके बाह्य उपकरण हैं, श्रीविष्णु तो भक्ति एवं दयासे समन्वित भाव-पुष्पोंद्वारा पूजित होनेपर परितुष्ट होते हैं॥ १६—१९॥

जल वारुण पुष्प है; घृत, दुग्ध, दधि सौम्य पुष्प हैं; अन्नादि प्राजापत्य पुष्प हैं, धूप-दीप आग्नेय पुष्प हैं, फल-पुष्पादि पञ्चम वानस्पत्य पुष्प हैं, कुशमूल आदि पार्थिव पुष्प हैं; गन्ध-चन्दन वायव्य कुसुम हैं, श्रद्धादि भाव वैष्णव प्रसून हैं। ये आठ पुष्पिकाएँ हैं, जो सब कुछ देनेवाली हैं। आसन (योगपीठ), मूर्ति-निर्माण, षडङ्गन्यास तथा अष्टपुष्पिकाएँ—ये विष्णुरूप हैं। भगवान् श्रीहरि पूर्वोक्त अष्टपुष्पिकाद्वारा पूजन करनेसे प्रसन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त भगवान् श्रीविष्णुका 'वासुदेव' आदि नामोंसे एवं श्रीशिवका 'ईशान' आदि नाम-पुष्पोंसे भी पूजन किया जाता है॥ २०—२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पुष्पाध्याय' नामक दो सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०२॥

दो सौ तीनवाँ अध्याय

नरकोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं नरकोंका वर्णन करता हूँ। भगवान् श्रीविष्णुका पुष्पादि उपचारोंसे पूजन करनेवाले नरकको नहीं प्राप्त होते। आयुके समाप्त होनेपर मनुष्य न चाहता हुआ भी प्राणोंसे बिछुड़ जाता है। देहधारी जीव जल, अग्नि, विष, शस्त्राघात, भूख, व्याधि या पर्वतसे पतन—किसी-न-किसी निमित्तको पाकर प्राणोंसे हाथ धो बैठता है। वह अपने कर्मोंके अनुसार यातनाएँ भोगनेके लिये दूसरा शरीर ग्रहण करता है। इस प्रकार पापकर्म करनेवाला दुःख भोगता है, परंतु धर्मात्मा पुरुष सुखका भोग करता है। मृत्युके पश्चात् पापी जीवको यमदूत बड़े दुर्गम मार्गसे ले जाते हैं और वह यमपुरीके दक्षिण द्वारसे यमराजके पास पहुँचाया जाता है। वे यमदूत बड़े डरावने होते हैं। परंतु धर्मात्मा मनुष्य पश्चिम आदि द्वारोंसे ले जाये जाते हैं। वहाँ पापी जीव यमराजकी आज्ञासे यमदूतोंद्वारा नरकोंमें गिराये जाते हैं, किंतु वसिष्ठ आदि ऋषियोंद्वारा प्रतिपादित धर्मका आचरण करनेवाले स्वर्गमें ले जाये जाते हैं। गोहत्यारा 'महावीचि' नामक नरकमें एक लाख वर्षतक पीड़ित किया जाता है। ब्रह्मघाती अत्यन्त दहकते हुए 'ताम्रकुम्भ' नामक नरकमें गिराये जाते हैं और भूमिका अपहरण करनेवाले पापीको महाप्रलय कालतक 'रौरव-नरक'में धीरे-धीरे दुःसह पीड़ा दी जाती है। स्त्री, बालक अथवा वृद्धोंका वध करनेवाले पापी चौदह इन्द्रोंके राज्यकालपर्यन्त 'महारौरव' नामक रौद्र नरकमें क्लेश भोगते हैं। दूसरोंके घर और खेतको जलानेवाले अत्यन्त भयंकर 'महारौरव' नरकमें एक कल्पपर्यन्त पकाये जाते हैं। चोरी करनेवालेको 'तामिस्र' नामक नरकमें गिराया जाता है। इसके बाद उसे अनेक कल्पोंतक यमराजके अनुचर भालोंसे बींधते रहते हैं और फिर 'महातामिस्र' नरकमें जाकर वह पापी सर्पों और जोकोंद्वारा पीड़ित किया जाता है। मातृघाती आदि मनुष्य 'असिपत्रवन' नामक नरकमें गिराये जाते हैं। वहाँ तलवारोंसे उनके अङ्ग तबतक काटे जाते हैं, जबतक यह पृथ्वी स्थित रहती है। जो इस लोकमें दूसरे प्राणियोंके हृदयको जलाते हैं, वे अनेक कल्पोंतक 'करम्भवालुका' नरकमें जलती हुई रेतमें भुने जाते हैं। दूसरोंको बिना दिये अकेले मिष्टान्न भोजन करनेवाला 'काकोल'

नामक नरकमें कीड़ा और विष्ठाका भक्षण करता है। पञ्चमहायज्ञ और नित्यकर्मका परित्याग करनेवाला 'कुट्टल' नामक नरकमें जाकर मूत्र और रक्तका पान करता है। अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करनेवालेको महादुर्गन्धमय नरकमें गिरकर रक्तका आहार करना पड़ता है॥ १—१२॥

दूसरोंको कष्ट देनेवाला 'तैलपाक' नामक नरकमें तिलोंकी भाँति पेरा जाता है। शरणागतका वध करनेवालेको भी 'तैलपाक'में पकाया जाता है। यज्ञमें कोई चीज देनेकी प्रतिज्ञा करके न देनेवाला 'निरुच्छ्वास'में, रस-विक्रय करनेवाला 'वज्रकटाह' नामक नरकमें और असत्यभाषण करनेवाला 'महापात' नामक नरकमें गिराया जाता है॥ १३-१४॥

पापपूर्ण विचार रखनेवाला 'महाज्वाल'में, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेवाला 'क्रकच'में, वर्णसंकर संतान उत्पन्न करनेवाला 'गुडपाक'में, दूसरोंके मर्मस्थानोंमें पीड़ा पहुँचानेवाला 'प्रतुद'में, प्राणिहिंसा करनेवाला 'क्षारह्रद'में, भूमिका अपहरण करनेवाला 'क्षुरधार'में, गौ और स्वर्णकी चोरी करनेवाला 'अम्बरीष'में, वृक्ष काटनेवाला 'वज्रशस्त्र'में, मधु चुरानेवाला 'परीताप'में, दूसरोंका धन अपहरण करनेवाला 'कालसूत्र'में, अधिक मांस खानेवाला 'कश्मल'में और पितरोंको पिण्ड न देनेवाला 'उग्रगन्ध' नामक नरकमें यमदूतोंद्वारा ले जाया जाता है। घूस खानेवाले 'दुर्धर' नामक नरकमें और निरपराध मनुष्योंको कैद करनेवाले 'लौहमय मंजूष' नामक नरकमें यमदूतोंद्वारा ले जाकर कैद किये जाते हैं। वेदनिन्दक मनुष्य 'अप्रतिष्ठ' नामक नरकमें गिराया जाता है। झूठी गवाही देनेवाला 'पूतिवक्त्र'में, धनका अपहरण करनेवाला 'परिलुण्ठ'में, बालक, स्त्री और वृद्धकी हत्या करनेवाला तथा ब्राह्मणको पीड़ा देनेवाला 'कराल'में, मद्यपान करनेवाला ब्राह्मण 'विलेप'में और मित्रोंमें परस्पर भेदभाव करानेवाला 'महाप्रेत' नरकको प्राप्त होता है। परायी स्त्रीका उपभोग करनेवाले पुरुष और अनेक पुरुषोंसे सम्भोग करनेवाली नारीको 'शाल्मल' नामक नरकमें जलती हुई लौहमयी शिलाके रूपमें अपनी उस प्रिया अथवा प्रियका आलिङ्गन करना पड़ता है॥ १५—२१॥

नरकोंमें चुगली करनेवालोंकी जीभ खींचकर निकाल ली जाती है, परायी स्त्रियोंको कुदृष्टिसे देखनेवालोंकी आँखें फोड़ी जाती हैं, माता और पुत्रीके साथ व्यभिचार करनेवाले धधकते हुए अंगारोंपर फेंक दिये जाते हैं, चोरोंको छुरोंसे काटा जाता है और मांस-भक्षण करनेवाले नरपिशाचोंको उन्हींका मांस काटकर खिलाया जाता है। मासोपवास, एकादशीव्रत अथवा भीष्मपञ्चकव्रत करनेवाला मनुष्य नरकोंमें नहीं जाता॥ २२-२३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'एक सौ नवासी नरकोंके स्वरूपका वर्णन' नामक दो सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०३॥

दो सौ चारवाँ अध्याय

मासोपवास-व्रत

अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ! अब मैं तुम्हारे सम्मुख सबसे उत्तम मासोपवास-व्रतका वर्णन करता हूँ। वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करके, आचार्यकी आज्ञा लेकर, कृच्छ्र आदि व्रतोंसे अपनी शक्तिका अनुमान करके मासोपवासव्रत करना चाहिये। वानप्रस्थ, संन्यासी एवं विधवा स्त्री—इनके लिये मासोपवास-व्रतका विधान है॥ १-२॥

आश्विनके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास रखकर तीस दिनोंके लिये निम्नलिखित संकल्प करके मासोपवास-व्रत ग्रहण करे—'श्रीविष्णो! मैं आजसे लेकर तीस दिनतक आपके उत्थानकालपर्यन्त निराहार रहकर आपका पूजन करूँगा। सर्वव्यापी श्रीहरे! आश्विन शुक्ल एकादशीसे आपके उत्थानकाल कार्तिक शुक्ल एकादशीके मध्यमें यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो (आपकी कृपासे) मेरा व्रत भङ्ग न हो*।' व्रत करनेवाला दिनमें तीन बार स्नान करके सुगन्धित द्रव्य और पुष्पोंद्वारा प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल श्रीविष्णुका पूजन करे तथा विष्णु-सम्बन्धी गान, जप और ध्यान करे। व्रती पुरुष वकवादका परित्याग करे और धनकी इच्छा भी न करे। वह किसी भी व्रतहीन मनुष्यका स्पर्श न करे और शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंमें लगे हुए लोगोंका चालक—प्रेरक न बने। उसे तीस दिनतक देवमन्दिरमें ही निवास करना चाहिये। व्रत करनेवाला मनुष्य कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तदनन्तर उन्हें दक्षिणा देकर और स्वयं पारण करके व्रतका विसर्जन करे। इस प्रकार तेरह पूर्ण मासोपवास-व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाला भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है॥ ३—९॥

(उपर्युक्त विधिसे तेरह मासोपवास-व्रतोंका अनुष्ठान करनेके बाद व्रत करनेवाला व्रतका उद्यापन करे।) वह वैष्णवयज्ञ करावे, अर्थात् तेरह ब्राह्मणोंका पूजन करे। तदनन्तर उनसे आज्ञा लेकर किसी ब्राह्मणको तेरह ऊर्ध्ववस्त्र, अधोवस्त्र, पात्र, आसन, छत्र, पवित्री, पादुका, योगपट्ट और यज्ञोपवीतोंका दान करे॥ १०—१२॥

तत्पश्चात् शय्यापर अपनी और श्रीविष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाका पूजन करके उसे किसी दूसरे ब्राह्मणको दान करे एवं उस ब्राह्मणका वस्त्र आदिसे सत्कार करे। तदनन्तर व्रत करनेवाला यह कहे—'मैं सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर ब्राह्मणों और श्रीविष्णुभगवान्‌के कृपा-प्रसादसे विष्णुलोकको जाऊँगा। अब मैं विष्णुस्वरूप होता हूँ।' इसके उत्तरमें ब्राह्मणोंको कहना चाहिये—'देवात्मन्! तुम विष्णुके उस रोग-शोकरहित परमपदको जाओ-जाओ और वहाँ विष्णुका स्वरूप धारण करके विमानमें प्रकाशित होते हुए स्थित होओ।' फिर व्रत करनेवाला द्विजोंको प्रणाम करके वह शय्या आचार्यको दान करे। इस विधिसे व्रत करनेवाला अपने सौ कुलोंका उद्धार करके उन्हें विष्णुलोकमें ले जाता है। जिस देशमें मासोपवास-व्रत करनेवाला रहता है, वह देश पापरहित हो जाता है। फिर उस सम्पूर्ण कुलकी तो बात ही क्या है, जिसमें मासोपवास-व्रतका अनुष्ठान करनेवाला उत्पन्न हुआ होता है। व्रतयुक्त मनुष्यको मूर्च्छित देखकर उसे घृतमिश्रित दुग्धको पान कराये। निम्नलिखित वस्तुएँ व्रतको नष्ट नहीं करतीं—ब्राह्मणकी अनुमतिसे ग्रहण किया हुआ हविष्य, दुग्ध, आचार्यकी आज्ञासे ली हुई ओषधि, जल, मूल और फल। 'इस व्रतमें भगवान् श्रीविष्णु ही महान् ओषधिरूप हैं'—इसी विश्वाससे व्रत करनेवाला इस व्रतसे उद्धार पाता है॥ १३—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मासोपवास-व्रतका वर्णन' नामक दो सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०४॥

---

* अद्यप्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव। अर्चये त्वामनश्नन् हि यावत्त्रिंशद्दिनानि तु॥
कार्तिकाश्वियोर्विष्णो यावदुत्थानकं तव। स्थिये यद्यन्तरालेऽहं व्रतभङ्गो न मे भवेत्॥
(अग्नि० २०४। ४-५)

दो सौ पाँचवाँ अध्याय

भीष्मपञ्चकव्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं सब कुछ देनेवाले व्रतराज 'भीष्मपञ्चक' के विषयमें कहता हूँ। कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको यह व्रत ग्रहण करे। पाँच दिनोंतक तीनों समय स्नान करके पाँच तिल और यवोंके द्वारा देवता तथा पितरोंका तर्पण करे। फिर मौन रहकर भगवान् श्रीहरिका पूजन करे। देवाधिदेव श्रीविष्णुको पञ्चगव्य और पञ्चामृतसे स्नान करावे और उनके श्रीअङ्गोंमें चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंका आलेपन करके उनके सम्मुख घृतयुक्त गुग्गुल जलावे॥ १—३॥

प्रातःकाल और रात्रिके समय भगवान् श्रीविष्णुको दीपदान करे और उत्तम भोज्य-पदार्थका नैवेद्य समर्पित करे। व्रती पुरुष '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस द्वादशाक्षर-मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। तदनन्तर घृतसिक्त तिल और जौका अन्तमें 'स्वाहा'से संयुक्त '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस द्वादशाक्षर-मन्त्रसे हवन करे। पहले दिन भगवान्‌के चरणोंका कमलके पुष्पोंसे, दूसरे दिन घुटनों और सक्थिभाग (दोनों ऊरुओं)-का बिल्वपत्रोंसे, तीसरे दिन नाभिका भृङ्गराजसे, चौथे दिन बाणपुष्प, बिल्वपत्र और जपापुष्पोंद्वारा एवं पाँचवें दिन मालती-पुष्पोंसे सर्वाङ्गका पूजन करे। व्रत करनेवालेको भूमिपर शयन करना चाहिये। एकादशीको गोमय, द्वादशीको गोमूत्र, त्रयोदशीको दधि, चतुर्दशीको दुग्ध और अन्तिम दिन पञ्चगव्यका आहार करे। पौर्णमासीको 'नक्तव्रत' करना चाहिये। इस प्रकार व्रत करनेवाला भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है। भीष्मपितामह इसी व्रतका अनुष्ठान करके भगवान् श्रीहरिको प्राप्त हुए थे, इसीसे यह 'भीष्मपञ्चक'के नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्माजीने भी इस व्रतका अनुष्ठान करके श्रीहरिका पूजन किया था। इसलिये यह व्रत पाँच उपवास आदिसे युक्त है॥ ४—९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भीष्मपञ्चक-व्रतका कथन' नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०५॥

दो सौ छठा अध्याय

अगस्त्यके उद्देश्यसे अर्घ्यदान एवं उनके पूजनका कथन

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! महर्षि अगस्त्य साक्षात् भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। उनका पूजन करके मनुष्य श्रीहरिको प्राप्त कर लेता है। जब सूर्य कन्या-राशिको प्राप्त न हुए हों (किंतु उसके निकट हों) तब ३ $\frac{१}{२}$ दिनतक उपवास रखकर अगस्त्यका पूजन करके उन्हें अर्घ्यदान दे। पहले दिन जब चार घंटा दिन बाकी रहे, तब व्रत आरम्भ करके प्रदोषकालमें अगस्त्य मुनिकी काश-पुष्पमयी मूर्तिको कलशपर स्थापित करे और उस कलशस्थित मूर्तिका पूजन करे। अर्घ्य देनेवालेको रात्रिमें जागरण भी करना चाहिये॥ १-२ $\frac{१}{२}$॥ (अगस्त्यके आवाहनका मन्त्र यह है—)

अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे महामते॥
इमां मम कृतां पूजां गृहीष्व प्रियया सह।

मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य! आप तेजःपुञ्जमय और महाबुद्धिमान् हैं। अपनी प्रियतमा पत्नी लोपामुद्राके साथ मेरे द्वारा की गयी इस पूजाको ग्रहण कीजिये॥ ३ $\frac{१}{२}$॥

इस प्रकार अगस्त्यका आवाहन करे और उन्हें गन्ध, पुष्प, फल, जल आदिसे अर्घ्यदान दे। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यकी ओर मुख करके चन्दनादि उपचारोंद्वारा उनका पूजन करे। दूसरे दिन प्रातःकाल कलशस्थित अगस्त्यकी मूर्तिको किसी जलाशयके समीप ले जाकर निम्नलिखित मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य समर्पित करे॥ ४ ½ ॥

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव॥
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते।
आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः॥
समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः सम्मुखोऽस्तु मे।
अगस्तिं प्रार्थयिष्यामि कर्मणा मनसा गिरा॥
अर्चयिष्याम्यहं मैत्रं परलोकाभिकाङ्क्षया।

काशपुष्पके समान उज्ज्वल, अग्नि और वायुसे प्रादुर्भूत, मित्रावरुणके पुत्र, कुम्भसे प्रकट होनेवाले अगस्त्य! आपको नमस्कार है। जिन्होंने राक्षसराज आतापी और वातापीका भक्षण कर लिया था तथा समुद्रको सुखा डाला था, वे अगस्त्य मेरे सम्मुख प्रकट हों। मैं मन, कर्म और वचनसे अगस्त्यकी प्रार्थना करता हूँ। मैं उत्तम लोकोंकी आकाङ्क्षासे अगस्त्यका पूजन करता हूँ॥ ५—७ ½ ॥

चन्दन-दान-मन्त्र

द्वीपान्तरसमुत्पन्नं देवानां परमं प्रियम्॥
राजानं सर्ववृक्षाणां चन्दनं प्रतिगृह्यताम्।

जम्बूद्वीपके बाहर उत्पन्न, देवताओंके परमप्रिय, समस्त वृक्षोंके राजा चन्दनको ग्रहण कीजिये॥ ८ ½ ॥

पुष्पमाला-अर्पण

धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनी पापनाशनी॥
सौभाग्यारोग्यलक्ष्मीदा पुष्पमाला प्रगृह्यताम्।

महर्षि अगस्त्य! यह पुष्पमाला धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली एवं पापोंका नाश करनेवाली है। सौभाग्य, आरोग्य और लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाली इस पुष्पमालाको आप ग्रहण कीजिये॥ ९ ½ ॥

धूपदान-मन्त्र

धूपोऽयं गृह्यतां देव! भक्तिं मे ह्यचलां कुरु॥
ईप्सितं मे वरं देहि परमां च शुभां गतिम्।

भगवन्! अब यह धूप ग्रहण कीजिये और आपमें मेरी भक्तिको अविचल कीजिये। मुझे इस लोकमें मनोवाञ्छित वस्तुएँ और परलोकमें शुभगति प्रदान कीजिये॥ १० ½ ॥

वस्त्र, धान्य, फल, सुवर्णसे युक्त अर्घ्य-दान-मन्त्र

सुरासुरैर्मुनिश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रद॥
वस्त्रव्रीहिफलैर्हेम्ना दत्तस्त्वर्घ्यो ह्ययं मया।

देवताओं तथा असुरोंसे भी समादृत मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य! आप सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्रदान करनेवाले हैं। मैं आपको वस्त्र, धान्य, फल और सुवर्णसे युक्त यह अर्घ्य प्रदान करता हूँ॥ ११ ½ ॥

फलार्घ्यदान-मन्त्र

अगस्त्यं बोधयिष्यामि यन्मया मनसोद्धृतम्।
फलैरर्घ्यं प्रदास्यामि गृहाणार्घ्यं महामुने॥

महामुने! मैंने मनमें जो अभिलाषा कर रखी थी, तदनुसार मैं अगस्त्यजीको जगाऊँगा। आपको फलार्घ्य अर्पित करता हूँ, इसे ग्रहण कीजिये॥ १२ ॥

(केवल द्विजोंके लिये उच्चारणीय अर्घ्यदानका वैदिक मन्त्र)

अगस्त्य एवं खनमानो धरित्रीं प्रजामपत्यं बलमीहमानः।
उभौ कर्णावृषिरुग्रतेजाः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम॥

महर्षि अगस्त्य इस प्रकार प्रजा-संतति तथा बल एवं पुष्टिके लिये सचेष्ट हो कुदाल या खनित्रसे धरतीको खोदते रहे। उन उग्रतेजस्वी ऋषिने दोनों कर्णों (सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी शक्ति)-का पोषण किया। देवताओंके प्रति उनकी सारी आशीःप्रार्थना सत्य हुई॥ १३ ॥

(तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्रसे लोपामुद्राको अर्घ्यदान दे)

राजपुत्रि नमस्तुभ्यं मुनिपत्नि महाव्रते।
अर्घ्यं गृह्णीष्व देवेशि लोपामुद्रे यशस्विनि॥

महान् व्रतका पालन करनेवाली राजपुत्री अगस्त्यपत्नी देवेश्वरी लोपामुद्रे! आपको नमस्कार है। यशस्विनि! इस अर्घ्यको ग्रहण कीजिये॥ १४॥

अगस्त्यके लिये पञ्चरत्न, सुवर्ण और रजतसे युक्त एवं सप्तधान्यसे पूर्ण पात्र तथा दधि-चन्दनसे समन्वित अर्घ्य प्रदान करे। स्त्रियों और शूद्रोंको 'काशपुष्पप्रतीकाश' आदि पौराणिक मन्त्रसे अर्घ्य देना चाहिये॥ १५½॥

विसर्जन-मन्त्र

अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे च सर्वदा॥
इमां मम कृतां पूजां गृहीत्वा व्रज शान्तये।

मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य! आप तेजःपुञ्जसे प्रकाशित और सब कुछ देनेवाले हैं। मेरे द्वारा की गयी इस पूजाको ग्रहणकर शान्तिपूर्वक पधारिये॥ १६½॥

इस प्रकार अगस्त्यका विसर्जन करके उनके उद्देश्यसे किसी एक धान्य, फल और रसका त्याग करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको घृतमिश्रित खीर और लड्डू आदि पदार्थोंका भोजन करावे और उन्हें गौ, वस्त्र, सुवर्ण एवं दक्षिणा दे। इसके बाद उस कुम्भका मुख घृतमिश्रित खीरयुक्त पात्रसे ढककर, उसमें सुवर्ण रखकर वह कलश ब्राह्मणको दान दे। इस प्रकार सात वर्षोंतक अगस्त्यको अर्घ्य देकर सभी लोग सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। इससे स्त्री सौभाग्य और पुत्रोंको, कन्या पतिको और राजा पृथ्वीको प्राप्त करता है॥ १७—२०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अगस्त्यके लिये अर्घ्यदानका वर्णन' नामक दो सौ छठा अध्याय पूरा हुआ॥ २०६॥

दो सौ सातवाँ अध्याय

कौमुद-व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं 'कौमुद'-व्रतके विषयमें कहता हूँ। इसे आश्विनके शुक्लपक्षमें आरम्भ करना चाहिये। व्रत करनेवाला एकादशीको उपवास करके एकमासपर्यन्त भगवान् श्रीहरिका पूजन करे॥ १॥

व्रती निम्नलिखित मन्त्रसे संकल्प करे—

आश्विने शुक्लपक्षेऽहमेकाहारो हरिं जपन्।
मासमेकं भुक्तिमुक्त्यै करिष्ये कौमुदं व्रतम्॥

मैं आश्विनके शुक्ल पक्षमें एक समय भोजन करके भगवान् श्रीहरिके मन्त्रका जप करता हुआ भोग और मोक्षकी प्राप्तिके लिये एक मासपर्यन्त कौमुद-व्रतका अनुष्ठान करूँगा॥ २॥

तदनन्तर व्रतके समाप्त होनेपर एकादशीको उपवास करे और द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। उनके श्रीविग्रहमें चन्दन, अगर और केसरका अनुलेपन करके कमल, उत्पल, कह्लार एवं मालती पुष्पोंसे विष्णुकी पूजा करे। व्रत करनेवाला वाणीको संयममें रखकर तैलपूर्ण दीपक प्रज्वलित करे और दोनों समय खीर, मालपूए तथा लड्डुओंका नैवेद्य समर्पित करे। व्रती पुरुष '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस द्वादशाक्षर-मन्त्रका निरन्तर जप करे। अन्तमें ब्राह्मण-भोजन कराके क्षमा-प्रार्थनापूर्वक व्रतका विसर्जन करे। 'देवजागरणी' या 'हरिप्रबोधिनी' एकादशीतक एक मासपर्यन्त उपवास करनेसे 'कौमुद-व्रत' पूर्ण होता है। इतने ही दिनोंका पूर्वोक्त मासोपवास भी होता है। किंतु इस कौमुद-व्रतसे उसकी अपेक्षा अधिक फल भी प्राप्त होता है॥ ३—६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कौमुद-व्रतका वर्णन' नामक दो सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०७॥

दो सौ आठवाँ अध्याय

व्रतदानसमुच्चय

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं सामान्य व्रतों और दानोंके विषयमें संक्षेपपूर्वक कहता हूँ। प्रतिपदा आदि तिथियों, सूर्य आदि वारों, कृत्तिका आदि नक्षत्रों, विष्कुम्भ आदि योगों, मेष आदि राशियों और ग्रहण आदिके समय उस कालमें जो व्रत, दान एवं तत्सम्बन्धी द्रव्य एवं नियमादि आवश्यक हैं, उनका भी वर्णन करूँगा। व्रतदानोपयोगी द्रव्य और काल सबके अधिष्ठातृ देवता भगवान् श्रीविष्णु हैं। सूर्य, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी आदि सभी देव-देवियाँ श्रीहरिकी ही विभूति हैं। इसलिये उनके उद्देश्यसे किया गया व्रत, दान और पूजन आदि सब कुछ देनेवाला होता है॥ १—३॥

श्रीविष्णु-पूजन-मन्त्र

जगत्पते समागच्छ आसनं पाद्यमर्घ्यकम्॥
मधुपर्कं तथाऽऽचामं स्नानं वस्त्रं च गन्धकम्।
पुष्पं धूपं च दीपं च नैवेद्यादि नमोऽस्तु ते॥

जगत्पते! आपको नमस्कार है। आइये और आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य ग्रहण कीजिये॥ ४-५॥

पूजा, व्रत और दानमें उपर्युक्त मन्त्रसे श्रीविष्णुकी अर्चना करनी चाहिये। अब दानका सामान्य संकल्प भी सुनो—'आज मैं अमुक गोत्रवाले अमुक शर्मा आप ब्राह्मण देवताको समस्त पापोंकी शान्ति, आयु और आरोग्यकी वृद्धि, सौभाग्यके उदय, गोत्र और संततिके विस्तार, विजय एवं धनकी प्राप्ति, धर्म, अर्थ और कामके सम्पादन तथा पापनाशपूर्वक संसारसे मोक्ष पानेके लिये विष्णुदेवता-सम्बन्धी इस द्रव्यका दान करता हूँ। मैं इस दानकी प्रतिष्ठा (स्थिरता)-के लिये आपको यह अतिरिक्त सुवर्णादि द्रव्य समर्पित करता हूँ। मेरे इस दानसे सर्वलोकेश्वर भगवान् श्रीहरि सदा प्रसन्न हों। यज्ञ, दान और व्रतोंके स्वामी! मुझे विद्या तथा यश आदि प्रदान कीजिये। मुझे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थ तथा मनोऽभिलषित वस्तुसे सम्पन्न कीजिये'॥ ६—१०½॥

जो मनुष्य प्रतिदिन इस व्रत-दान-समुच्चयका पठन अथवा श्रवण करता है, वह अभीष्ट वस्तुसे युक्त एवं पापरहित होकर भोग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त करता है। इस प्रकार भगवान् वासुदेव आदिसे सम्बन्धित नियम और पूजनसे अनेक प्रकारके तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग और मन्वादिसम्बन्धी व्रतोंका अनुष्ठान सिद्ध होता है॥ ११-१२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'व्रतदानसमुच्चयका वर्णन' नामक दो सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०८॥

दो सौ नवाँ अध्याय

धनके प्रकार; देश-काल और पात्रका विचार; पात्रभेदसे दानके फल-भेद; द्रव्य-देवताओं तथा दान-विधिका कथन

अग्निदेव कहते हैं— मुनिश्रेष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले दानधर्मोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। दानके 'इष्ट' और 'पूर्त' दो भेद हैं। दानधर्मका आचरण करनेवाला सब कुछ प्राप्त

कर लेता है। बावड़ी, कुआँ, तालाब, देव-मन्दिर, अन्नका सदावर्त तथा बगीचे आदि बनवाना 'पूर्तधर्म' कहा गया है, जो मुक्ति प्रदान करनेवाला है। अग्निहोत्र तथा सत्यभाषण, वेदोंका स्वाध्याय, अतिथि-सत्कार और बलिवैश्वदेव—इन्हें 'इष्टधर्म' कहा गया है। यह स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है। ग्रहणकालमें, सूर्यकी संक्रान्तिमें और द्वादशी आदि तिथियोंमें जो दान दिया जाता है, वह 'पूर्त' है। वह भी स्वर्ग प्रदान करनेवाला है। देश, काल और पात्रमें दिया हुआ दान करोड़गुना फल देता है। सूर्यके उत्तरायण और दक्षिणायन प्रवेशके समय, पुण्यमय विषुवकालमें, व्यतीपात, तिथिक्षय, युगारम्भ, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, द्वादशी, अष्टकाश्राद्ध, यज्ञ, उत्सव, विवाह, मन्वन्तरारम्भ, वैधृतियोग, दुःस्वप्नदर्शन, धन एवं ब्राह्मणकी प्राप्तिमें दान दिया जाता है। अथवा जिस दिन श्रद्धा हो उस दिन या सदैव दान दिया जा सकता है। दोनों अयन और दोनों विषुव—ये चार संक्रान्तियाँ, 'षडशीतिमुखा' नामसे प्रसिद्ध चार संक्रान्तियाँ तथा 'विष्णुपदा' नामसे विख्यात चार संक्रान्तियाँ—ये बारहों संक्रान्तियाँ ही दानके लिये उत्तम मानी गयी हैं। कन्या, मिथुन, मीन और धनु राशियोंमें जो सूर्यकी संक्रान्तियाँ होती हैं वे 'षडशीतिमुखा' कही जाती हैं, वे छियासीगुना फल देनेवाली हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन-सम्बन्धिनी (मकर एवं कर्ककी) संक्रान्तियोंके अतीत और अनागत (पूर्व तथा पर) घटिकाएँ पुण्य मानी गयी हैं। कर्क-संक्रान्तिकी तीस-तीस घड़ी और मकर-संक्रान्तिकी बीस-बीस घड़ी पूर्व और परकी भी पुण्यकार्यके लिये विहित हैं। तुला और मेषकी संक्रान्ति वर्तमान होनेपर उसके पूर्वापरकी दस-दस घड़ीका समय पुण्यकाल है। 'षडशीति-मुखा' संक्रान्तियोंके व्यतीत होनेपर साठ घड़ीका समय पुण्यकालमें ग्राह्य है। 'विष्णुपदा' नामसे प्रसिद्ध संक्रान्तियोंके पूर्वापरकी सोलह-सोलह घड़ियोंको पुण्यकाल माना गया है। श्रवण, अश्विनी और धनिष्ठाको एवं आश्लेषाके मस्तकभाग अर्थात् प्रथम चरणमें जब रविवारका योग हो, तब यह 'व्यतीपातयोग' कहलाता है॥ १—१३॥

कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमीको कृतयुग और वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीयाको त्रेता प्रारम्भ हुआ। अब द्वापरके विषयमें सुनो—माघमासकी पूर्णिमाको द्वापरयुग और भाद्रपदके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको कलियुगकी उत्पत्ति जाननी चाहिये। मन्वन्तरोंका आरम्भकाल या मन्वादि तिथियाँ इस प्रकार जाननी चाहिये—आश्विनके शुक्लपक्षकी नवमी, कार्तिककी द्वादशी, माघ एवं भाद्रपदकी तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी एकादशी, आषाढ़की दशमी, माघमासकी सप्तमी, श्रावणके कृष्णपक्षकी अष्टमी, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिक, फाल्गुन एवं ज्येष्ठकी पूर्णिमा॥ १४—१८॥

मार्गशीर्षमासकी पूर्णिमाके बाद जो तीन अष्टमी तिथियाँ आती हैं, उन्हें तीन 'अष्टका' कहा गया है। अष्टमीका 'अष्टका' नाम है। इन अष्टकाओंमें दिया हुआ दान अक्षय होता है। गया, गङ्गा और प्रयाग आदि तीर्थोंमें तथा मन्दिरोंमें किसीके बिना माँगे दिया हुआ दान उत्तम जाने। किंतु कन्यादानके लिये यह नियम लागू नहीं है। दाता पूर्वाभिमुख होकर दान दे और लेनेवाला उत्तराभिमुख होकर उसे ग्रहण करे। दान देनेवालेकी आयु बढ़ती है, किंतु लेनेवालेकी भी आयु क्षीण नहीं होती। अपने और प्रतिगृहीताके नाम एवं गोत्रका उच्चारण करके देय वस्तुका दान किया जाता है। कन्यादानमें इसकी तीन आवृत्तियाँ की जाती हैं। स्नान और पूजन करके हाथमें जल लेकर उपर्युक्त संकल्पपूर्वक दान दे। सुवर्ण, अश्व, तिल, हाथी, दासी, रथ,

भूमि, गृह, कन्या और कपिला गौका दान—ये दस 'महादान' हैं। विद्या, पराक्रम, तपस्या, कन्या, यजमान और शिष्यसे मिला हुआ सम्पूर्ण धन दान नहीं, शुल्करूप है। शिल्पकलासे प्राप्त धन भी शुल्क ही है। व्याज, खेती, वाणिज्य और दूसरेका उपकार करके प्राप्त किया हुआ धन, पासे, जूए, चोरी आदि प्रतिरूपक (स्वाँग बनाने) और साहसपूर्ण कर्मसे उपार्जित किया हुआ धन तथा छल-कपटसे पाया हुआ धन—ये तीन प्रकारके धन क्रमशः सात्त्विक, राजस एवं तामस—तीन प्रकारके फल देते हैं। विवाहके समय मिला हुआ, ससुरालको विदा होते समय प्रीतिके निमित्त प्राप्त हुआ, पतिद्वारा दिया गया, भाईसे मिला हुआ, मातासे प्राप्त हुआ तथा पितासे मिला हुआ—ये छः प्रकारके धन 'स्त्री-धन' माने गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके अनुग्रहसे प्राप्त हुआ धन शूद्रका होता है। गौ, गृह, शय्या और स्त्री—ये अनेक व्यक्तियोंको नहीं दी जानी चाहिये। इनको अनेक व्यक्तियोंके साझेमें देना पाप है। प्रतिज्ञा करके फिर न देनेसे प्रतिज्ञाकर्ताके सौ कुलोंका विनाश हो जाता है। किसी भी स्थानपर उपार्जित किया हुआ पुण्य देवता, आचार्य एवं माता-पिताको प्रयत्नपूर्वक समर्पित करना चाहिये। दूसरेसे लाभकी इच्छा रखकर दिया हुआ धन निष्फल होता है। धर्मकी सिद्धि श्रद्धासे होती है; श्रद्धापूर्वक दिया हुआ जल भी अक्षय होता है। जो ज्ञान, शील और सद्गुणोंसे सम्पन्न हो एवं दूसरोंको कभी पीड़ा न पहुँचाता हो, वह दानका उत्तम पात्र माना गया है। अज्ञानी मनुष्योंका पालन एवं त्राण करनेसे वह 'पात्र' कहलाता है। माताको दिया गया दान सौगुना और पिताको दिया हुआ हजार गुना होता है। पुत्री और सहोदर भाईको दिया हुआ दान अनन्त एवं अक्षय होता है। मनुष्येतर प्राणियोंको दिया गया दान सम होता है, न्यून या अधिक नहीं। पापात्मा मनुष्यको दिया गया दान अत्यन्त निष्फल जानना चाहिये। वर्णसंकरको दिया हुआ दान दुगुना, शूद्रको दिया हुआ दान चौगुना, वैश्य अथवा क्षत्रियको दिया हुआ आठगुना, ब्राह्मणब्रुव* (नाममात्रके ब्राह्मण)-को दिया हुआ दान सोलहगुना और वेदपाठी ब्राह्मणको दिया हुआ दान सौगुना फल देता है। वेदोंके अभिप्रायका बोध करानेवाले आचार्यको दिया हुआ दान अनन्त होता है। पुरोहित एवं याजक आदिको दिया हुआ दान अक्षय कहा गया है। धनहीन ब्राह्मणोंको और यज्ञकर्ता ब्राह्मणको दिया हुआ दान अनन्त फलदायक होता है। तपोहीन, स्वाध्यायरहित और प्रतिग्रहमें रुचि रखनेवाला ब्राह्मण जलमें पत्थरकी नौकापर बैठे हुएके समान है; वह उस प्रस्तरमयी नौकाके साथ ही डूब जाता है। ब्राह्मणको स्नान एवं जलका उपस्पर्शन करके प्रयत्नपूर्वक पवित्र हो दान ग्रहण करना चाहिये। प्रतिग्रह लेनेवालेको सदैव गायत्रीका जप करना चाहिये एवं उसके साथ-ही-साथ प्रतिगृहीत द्रव्य और देवताका उच्चारण करना चाहिये। प्रतिग्रह लेनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणसे दान ग्रहण करके उच्चस्वरमें, क्षत्रियसे दान लेकर मन्दस्वरमें तथा वैश्यका प्रतिग्रह स्वीकार करके उपांशु (ओठोंको बिना हिलाये) जप करे। शूद्रसे प्रतिग्रह लेकर मानसिक जप और स्वस्तिवाचन करे॥ १९—३९ ½ ॥

मुनिश्रेष्ठ! अभयके सर्वदेवगण देवता हैं, भूमिके विष्णु देवता हैं, कन्या और दास-दासीके

---

* गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेन च। नाध्यापयति नाधीते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः॥ (व्यासस्मृति ४। ४२)

'जिसके गर्भाधानके संस्कार और वेदोक्त यज्ञोपवीत-संस्कार हुए हैं, परंतु जो अध्ययन-अध्यापनका कार्य नहीं करता, वह 'ब्राह्मणब्रुव' कहलाता है।'

देवता प्रजापति कहे गये हैं, गजके देवता भी प्रजापति ही हैं। अश्वके यम, एक खुरवाले पशुओंके सर्वदेवगण, महिषके यम, उष्ट्रके निर्ऋति, धेनुके रुद्र, बकरेके अग्नि, भेड़, सिंह एवं वराहके जलदेवता, वन्य-पशुओंके वायु, जलपात्र और कलश आदि जलाशयोंके वरुण, समुद्रसे उत्पन्न होनेवाले रत्नों तथा स्वर्ण-लौहादि धातुओंके अग्नि, पक्वान्न और धान्योंके प्रजापति, सुगन्धके गन्धर्व, वस्त्रके बृहस्पति, सभी पक्षियोंके वायु, विद्या एवं विद्याङ्गोंके ब्रह्मा, पुस्तक आदिकी सरस्वती देवी, शिल्पके विश्वकर्मा एवं वृक्षोंके वनस्पति देवता हैं। ये समस्त द्रव्य-देवता भगवान् श्रीहरिके अङ्गभूत हैं॥ ४०—४६॥

छत्र, कृष्णमृगचर्म, शय्या, रथ, आसन, पादुका तथा वाहन—इनके देवता 'ऊर्ध्वाङ्गिरा' (उत्तानाङ्गिरा) कहे गये हैं। युद्धोपयोगी सामग्री, शस्त्र और ध्वज आदिके सर्वदेवगण देवता हैं। गृहके भी देवता सर्वदेवगण ही हैं। सम्पूर्ण पदार्थोंके देवता विष्णु अथवा शिव हैं; क्योंकि कोई भी वस्तु उनसे भिन्न नहीं है। दान देते समय पहले द्रव्यका नाम ले। फिर '**ददामि**' (देता हूँ) ऐसा कहे। फिर संकल्पका जल दान लेनेवालेके हाथमें दे। दानमें यही विधि बतलायी गयी है। प्रतिग्रह लेनेवाला यह कहे—'विष्णु दाता हैं, विष्णु ही द्रव्य हैं और मैं इस दानको ग्रहण करता हूँ; यह धर्मानुकूल प्रतिग्रह कल्याणकारी हो। दाताको इससे भोग और मोक्षरूप फलोंकी प्राप्ति हो।' गुरुजनों (माता-पिता) और सेवकोंके उद्धारके लिये देवताओं और पितरोंका पूजन करना हो तो उसके लिये सबसे प्रतिग्रह ले; परंतु उसे अपने उपयोगमें न लावे। शूद्रका धन यज्ञकार्यमें ग्रहण न करे; क्योंकि उसका फल शूद्रको ही प्राप्त होता है॥ ४७—५२॥

वृत्तिरहित ब्राह्मण शूद्रसे गुड़, तक्र, रस आदि पदार्थ ग्रहण कर सकता है। जीविकाविहीन द्विज सबका दान ले सकता है; क्योंकि ब्राह्मण स्वभावसे ही अग्नि और सूर्यके समान पवित्र है। इसलिये आपत्तिकालमें निन्दित पुरुषोंको पढ़ाने, यज्ञ कराने और उनसे दान लेनेसे उसको पाप नहीं लगता। कृतयुगमें ब्राह्मणके घर जाकर दान दिया जाता है, त्रेतामें अपने घर बुलाकर, द्वापरमें माँगनेपर और कलियुगमें अनुगमन करनेपर दिया जाता है। समुद्रका पार मिल सकता है, किंतु दानका अन्त नहीं मिल सकता। दाता मन-ही-मन सत्पात्रके उद्देश्यसे निम्नलिखित संकल्प करके भूमिपर जल छोड़े—'आज मैं चन्द्रमा अथवा सूर्यके ग्रहण या संक्रान्तिके समय गङ्गा, गया अथवा प्रयाग आदि अनन्तगुणसम्पन्न तीर्थदेशमें अमुक गोत्रवाले वेद-वेदाङ्गवेत्ता महात्मा एवं सत्पात्र अमुक शर्माको विष्णु, रुद्र अथवा जो देवता हों, उन देवता-सम्बन्धी अमुक महाद्रव्य कीर्ति, विद्या, महती कामना, सौभाग्य और आरोग्यके उदयके लिये, समस्त पापोंकी शान्ति एवं स्वर्गके लिये, भोग और मोक्षके प्राप्त्यर्थ आपको दान करता हूँ। इससे देवलोक, अन्तरिक्ष और भूमि-सम्बन्धी समस्त उत्पातोंका विनाश करनेवाले मङ्गलमय श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों और मुझे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकी प्राप्ति कराकर ब्रह्मलोक प्रदान करें।'

(तदनन्तर यह संकल्प पढ़े) 'अमुक नाम और गोत्रवाले ब्राह्मण अमुक शर्माको मैं इस दानकी प्रतिष्ठाके निमित्त सुवर्णकी दक्षिणा देता हूँ।' इस दान-वाक्यसे समस्त दान दे॥ ५३—६३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दान-परिभाषा आदिका वर्णन' नामक दो सौ नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०९॥

दो सौ दसवाँ अध्याय

सोलह महादानोंके नाम; दस मेरुदान, दस धेनुदान और विविध गोदानोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं सभी प्रकारके दानोंका वर्णन करता हूँ। सोलह महादान होते हैं। सर्वप्रथम तुलापुरुषदान, फिर हिरण्यगर्भदान, ब्रह्माण्डदान, कल्पवृक्षदान, पाँचवाँ सहस्र गोदान, स्वर्णमयी कामधेनुका दान, सातवाँ स्वर्णनिर्मित अश्वका दान, स्वर्णमय अश्वयुक्त रथका दान, स्वर्णरचित हस्तिरथका दान, पाँच हलोंका दान, भूमिदान, विश्वचक्रदान, कल्पलतादान, उत्तम सप्त-समुद्रदान, रत्नधेनुदान और जलपूर्ण कुम्भदान। ये दान शुभ दिनमें मण्डलाकार मण्डपमें देवताओंका पूजन करके ब्राह्मणको देने चाहिये। मेरुदान भी पुण्यप्रद है। 'मेरु' दस माने गये हैं, उन्हें सुनो—धान्यमेरु एक हजार द्रोण धान्यका उत्तम माना गया है, पाँच सौ द्रोणका मध्यम और ढाई सौ द्रोणका अधम माना गया है। लवणाचल सोलह द्रोणका बनाना चाहिये, वही उत्तम माना गया है। गुड़-पर्वत दस भारका उत्तम माना गया है, पाँच भारका मध्यम और ढाई भारका निकृष्ट कहा जाता है। स्वर्णमेरु सहस्र पलका उत्तम, पाँच सौ पलका मध्यम और ढाई सौ पलका निकृष्ट माना गया है। तिलपर्वत क्रमशः दस द्रोणका उत्तम, पाँच द्रोणका मध्यम और तीन द्रोणका निकृष्ट कहा गया है। कार्पास (रूई) पर्वत बीस भारका उत्तम, दस भारका मध्यम तथा पाँच भारका निकृष्ट है। बीस घृतपूर्ण कुम्भोंका उत्तम घृताचल होता है। रजत-पर्वत दस हजार पलका उत्तम माना गया है। शर्कराचल आठ भारका उत्तम, चार भारका मध्यम और दो भारका मन्द माना गया है॥ १—९ ½॥

अब मैं दस धेनुओंका वर्णन करता हूँ, जिनका दान करके मनुष्य भोग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है। पहली गुड़धेनु होती है, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चौथी जलधेनु, पाँचवीं क्षीरधेनु, छठी मधुधेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रसधेनु और दसवीं गोरूपेण कल्पित कृष्णाजिनधेनु। इनके दानकी विधि यह बतलायी जाती है कि तरल पदार्थ-सम्बन्धी धेनुओंके प्रतिनिधिरूपसे घड़ोंमें उन पदार्थोंको भरकर कुम्भदान करने चाहिये और अन्य धातुओंके रूपमें उन-उन द्रव्योंकी राशिका दान करना चाहिये॥ १०—१२ ½॥

(कृष्णाजिनधेनुके दानकी विधि यह है—) गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर सब ओर दर्भ बिछाकर उसके ऊपर चार हाथका कृष्णमृगचर्म रखे। उसकी ग्रीवा पूर्व दिशाकी ओर होनी चाहिये। इसी प्रकार गोवत्सके स्थानपर छोटे आकारका कृष्णमृगचर्म स्थापित करे। वत्ससहित धेनुका मुख पूर्वकी ओर और पैर उत्तर दिशाकी ओर समझे। चार भार गुड़की गुड़धेनु सदा ही उत्तम मानी गयी है। एक भार गुड़का गोवत्स बनावे। दो भारकी गौ मध्यम होती है। उसके साथ आधे भारका बछड़ा होना चाहिये। एक भारकी गौ कनिष्ठ कही जाती है। इसके चतुर्थांशका वत्स इसके साथ देना चाहिये। गुड़धेनु अपने गुड़संग्रहके अनुसार बना लेनी चाहिये॥ १३—१६ ½॥

पाँच गुञ्जाका एक 'माशा' होता है, सोलह माशेका एक 'सुवर्ण' होता है, चार सुवर्णका 'पल' और सौ पलकी 'तुला' मानी गयी है। बीस तुलाका एक 'भार' होता है एवं चार आढक (चौंसठ पल)-का एक 'द्रोण' होता है॥ १७-१८॥

गुड़निर्मित धेनु और वत्सको श्वेत एवं सूक्ष्म

वस्त्रसे ढकना चाहिये। उनके कानोंके स्थानमें सीप, चरणस्थानमें ईख, नेत्रस्थानमें पवित्र मौक्तिक, अलकोंके स्थानपर श्वेतसूत्र, गलकम्बलके स्थानपर सफेद कम्बल, पृष्ठभागके स्थानपर ताम्र, रोमस्थानपर श्वेत चँवर, भौंहोंके स्थानपर विद्रुममणि, स्तनोंके स्थानपर नवनीत, पुच्छस्थानपर रेशमी वस्त्र, अक्षि-गोलकोंके स्थानपर नीलमणि, शृङ्ग और शृङ्गाभरणोंके स्थानपर सुवर्ण एवं खुरोंकी जगह चाँदी रखे। दन्तस्थानपर विविध फल और नासिका-स्थानपर सुगन्धित द्रव्य स्थापित करे—साथमें काँसेकी दोहनी भी रखे। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार धेनुकी रचना करके निम्नलिखित मन्त्रोंसे उसकी पूजा करे—"जो समस्त भूतप्राणियोंकी लक्ष्मी हैं, जो देवताओंमें भी स्थित हैं, वे धेनुरूपिणी देवी मुझे शान्ति प्रदान करें। जो अपने शरीरमें स्थित होकर 'रुद्राणी' के नामसे प्रसिद्ध हैं और शंकरकी सदा प्रियतमा पत्नी हैं, वे धेनुरूपधारिणी देवी मेरे पापोंका विनाश करें। जो विष्णुके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीके रूपसे सुशोभित होती हैं, जो अग्निकी स्वाहा और चन्द्रमा, सूर्य एवं नक्षत्र-देवताओंकी शक्तिके रूपमें स्थित हैं, वे धेनुरूपिणी देवी मुझे लक्ष्मी प्रदान करें। जो चतुर्मुख ब्रह्माकी सावित्री, धनाध्यक्ष कुबेरकी निधि और लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुदेवी मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करें। देवि! आप पितरोंकी 'स्वधा' एवं यज्ञभोक्ता अग्निकी 'स्वाहा' हैं। आप समस्त पापोंका हरण करनेवाली एवं धेनुरूपसे स्थित हैं, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करें।" इस प्रकार अभिमन्त्रित की हुई धेनु ब्राह्मणको दान दे। अन्य सब धेनुदानोंकी भी साधारणतया यही विधि है। इससे मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर पापरहित हुआ भोग और मोक्ष—दोनोंको सिद्ध कर लेता है॥ १९—२९॥

सोनेके सींगोंसे युक्त चाँदीके खुरोंवाली सीधी-सादी दुधारू गौ, काँसेकी दोहनी, वस्त्र एवं दक्षिणाके साथ देनी चाहिये। ऐसी गौका दान करनेवाला उस गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। यदि कपिलाका दान किया जाय तो वह सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है॥ ३०-३१॥

स्वर्णमय शृङ्गोंसे युक्त, रजतमण्डित खुरोंवाली कपिला गौका काँसेके दोहनपात्र और यथाशक्ति दक्षिणाके साथ दान करके मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। 'उभयतोमुखी'* गौका दान करके दाता बछड़ेसहित गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने युगोंतक स्वर्गमें जाकर सुख भोगता है। उभयतोमुखी गौका भी दान पूर्वोक्त विधिसे ही करना चाहिये॥ ३२-३३॥

मरणासन्न मनुष्यको भी पूर्वोक्त विधिसे ही बछड़ेसहित गौका दान करना चाहिये। (और यह संकल्प करना चाहिये—) 'अत्यन्त भयंकर यमलोकके प्रवेशद्वारपर तप्तजलसे युक्त वैतरणी नदी प्रवाहित होती है। उसको पार करनेके लिये मैं इस कृष्णवर्णा वैतरणी गौका दान करता हूँ'॥ ३४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'महादानोंका वर्णन' नामक दो सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१०॥

---

* पादद्वयं मुखं योन्यां प्रसवन्त्याः प्रदृश्यते। तदा च द्विमुखी गौः स्यादेया यावन्न सूयते॥ (बृहत्पराशरसंहिता १०। ४४)

"जब प्रसव करती हुई गौकी योनिमें प्रसव होते हुए बछड़ेके दो पैर और मुख दिखायी देते हैं, उस समय वह 'उभयतोमुखी' कही जाती है; उसका तभीतक दान करना चाहिये, जबतक पूर्ण प्रसव नहीं हो जाता।"

दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय

नाना प्रकारके दानोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! जिसके पास दस गौएँ हों, वह एक गौ; जिसके पास सौ गौएँ हों, वह दस गौएँ; जिसके पास एक हजार गौएँ हों, वह सौ गौओंका दान करे तो उन सबको समान फल प्राप्त होता है। कुबेरकी राजधानी अलकापुरी, जहाँ स्वर्णनिर्मित भवन हैं एवं जहाँ गन्धर्व और अप्सराएँ विहार करती हैं, सहस्र गौओंका दान करनेवाले वहीं जाते हैं। मनुष्य सौ गौओंका दान करके नरक-समुद्रसे मुक्त हो जाता है और बछियाका दान करके स्वर्गलोकमें पूजित होता है। गोदानसे दीर्घायु, आरोग्य, सौभाग्य और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। 'जो इन्द्र आदि लोकपालोंकी मङ्गलमयी राजमहिषी हैं, वे देवी इस महिषीदानके माहात्म्यसे मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करें। जिनका पुत्र धर्मराजकी सहायतामें नियुक्त है एवं जो महिषासुरकी जननी हैं, वे देवी मुझे वर प्रदान करें।' उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर महिषीदान करनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। वृषदानसे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है॥ १—६॥

'संयुक्त हलपङ्क्ति' नामक दान समस्त फलोंको प्रदान करता है। काठके बने हुए दस हलोंकी पङ्क्ति, जो सुवर्णमय पट्टसे परस्पर जुड़ी हो और प्रत्येक हलके साथ आवश्यक संख्यामें बैल भी हों तो उसका दान 'संयुक्त हलपङ्क्ति' नामक दान कहा गया है। वह दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजित होता है। ज्येष्ठपुष्कर-तीर्थमें दस कपिला गौओंका दान किया जाय तो उसका फल अक्षय बतलाया गया है। वृषोत्सर्ग करनेसे भी अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। साँड़को चक्र और त्रिशूलसे अङ्कित करके यह मन्त्र पढ़कर छोड़े—'देवेश्वर! तुम चार चरणोंसे युक्त साक्षात् धर्म हो। ये तुम्हारी चार प्रियतमाएँ हैं। पितरों, मनुष्यों और ऋषियोंका पोषण करनेवाले वेदमूर्ति वृष! तुम्हारे मोचनसे मुझे अमृतमय शाश्वत लोकोंकी प्राप्ति हो। मैं देवऋण, भूतऋण, पितृऋण एवं मनुष्यऋणसे मुक्त हो जाऊँ। तुम साक्षात् धर्म हो; तुम्हारा आश्रय ग्रहण करनेवालोंको जो गति प्राप्त होती हो, वह नित्य गति मुझे भी प्राप्त हो'॥ ७—११½॥

जिस मृत व्यक्तिके एकादशाह, षाण्मासिक अथवा वार्षिक श्राद्धमें वृषोत्सर्ग किया जाता है, वह प्रेतलोकसे मुक्त हो जाता है। दस हाथके डंडेसे तीस डंडेके बराबरकी भूमिको 'निवर्तन' कहते हैं। दस निवर्तन भूमिकी 'गोचर्म' संज्ञा है। इतनी भूमिका दान करनेवाला मनुष्य अपने समस्त पापोंका नाश कर देता है। जो गौ, भूमि और सुवर्णयुक्त कृष्णमृगचर्मका दान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंके करनेपर भी ब्रह्माका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। तिल एवं मधुसे भरा पात्र मगधदेशीय मानके अनुसार एक प्रस्थ (चौसठ पल) कृष्णतिलका दान करे। इसके साथ उत्तम गुणोंसे युक्त शय्या देनेसे दाताको भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है॥ १२—१६॥

अपनी स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाकर दान करनेवाला स्वर्गमें जाता है। विशाल गृहका निर्माण कराके उसका दान देनेवाला भोग एवं मोक्ष—दोनोंको प्राप्त करता है। गृह, मठ, सभाभवन (धर्मशाला) एवं आवासस्थानका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें जाकर सुख भोगता है। गोशाला बनवाकर दान करनेवाला पापरहित होकर स्वर्गको प्राप्त होता है। यम-देवता-सम्बन्धी महिषदान करनेसे मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गलोकको जाता है। देवताओंसहित ब्रह्मा,

शिव और विष्णुके बीचमें पाशधारी यमदूतकी (स्वर्णादिमयी) मूर्तियाँ स्थापित करके यमदूतके सिरका छेदन करे; फिर उस मूर्तिमण्डलका ब्राह्मणको दान कर दे। ऐसा करनेसे दाता तो स्वर्गलोकका भागी होता है, किंतु इस 'त्रिमुख' नामक दानको ग्रहण करके द्विज पापका भागी होता है। चाँदीका चक्र बनवाकर, उसे जलमें रखकर उसके निमित्तसे होम करे। पश्चात् वह चक्र ब्राह्मणको दान कर दे। यह महान् 'कालचक्रदान' माना गया है॥ १७—२१॥

जो अपने वजनके बराबर लोहेका दान करता है, वह नरकमें नहीं गिरता। जो पचास पलका लौहदण्ड वस्त्रसे ढककर ब्राह्मणको दान करता है, उसे यमदण्डसे भय नहीं होता। दीर्घायुकी इच्छा रखनेवाला मृत्युञ्जयके उद्देश्यसे फल, मूल एवं द्रव्यको एक साथ अथवा पृथक्-पृथक् दान करे। कृष्णतिलका पुरुष निर्मित करे। उसके चाँदीके दाँत और सोनेकी आँखें हों। वह मालाधारी दीर्घाकार पुरुष दाहिने हाथमें खड्ग उठाये हुए हो। लाल रंगके वस्त्र धारण किये जपापुष्पोंसे अलंकृत एवं शङ्खकी मालासे विभूषित हो। उसके दोनों चरणोंमें पादुकाएँ हों और पार्श्वभागमें काला कम्बल हो। वह कालपुरुष बायें हाथमें मांस-पिण्ड लिये हो। इस प्रकार कालपुरुषका निर्माण कर गन्धादि द्रव्योंसे उसकी पूजा करके ब्राह्मणको दान करे। इससे दाता मानव मृत्यु और व्याधिसे रहित होकर राजराजेश्वर होता है। ब्राह्मणको दो बैलोंका दान देकर मनुष्य भोग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है॥ २२—२८ $\frac{1}{2}$॥

जो मनुष्य सुवर्णदान करता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। सुवर्णके दानमें उसकी प्रतिष्ठाके लिये चाँदीकी दक्षिणा विहित है। अन्य दानोंकी प्रतिष्ठाके लिये सुवर्णकी दक्षिणा प्रशस्त मानी गयी है। सुवर्णके सिवा, रजत, ताम्र, तण्डुल और धान्य भी दक्षिणाके लिये विहित हैं। नित्य श्राद्ध और नित्य देवपूजन—इन सबमें दक्षिणाकी आवश्यकता नहीं है। पितृकार्यमें रजतकी दक्षिणा धर्म, काम और अर्थको सिद्ध करनेवाली है। भूमिका दान देनेवाला महाबुद्धिमान् मनुष्य सुवर्ण, रजत, ताम्र, मणि और मुक्ता—इन सबका दान कर लेता है, अर्थात् इन सभी दानोंका पुण्यफल पा लेता है। जो पृथ्वीदान करता है, वह शान्त अन्तःकरणवाला पुरुष पितृलोकमें स्थित पितरोंको और देवलोकमें निवास करनेवाले देवताओंको पूर्णरूपसे तृप्त कर देता है। शस्यशाली खर्वट, ग्राम और खेटक (छोटा गाँव), सौ निवर्तनसे अधिक या उसके आधे विस्तारमें बने हुए गृह आदि अथवा गोचर्म (दस निवर्तन)-के मापकी भूमिका दान करके मनुष्य सब कुछ पा लेता है। जिस प्रकार तैल-बिन्दु जल या भूमिपर गिरकर फैल जाता है, उसी प्रकार सभी दानोंका फल एक जन्मतक रहता है। स्वर्ण, भूमि और गौरी कन्याके दानका फल सात जन्मोंतक स्थिर रहता है। कन्यादान करनेवाला अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका नरकसे उद्धार करके ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।* दक्षिणासहित हाथीका दान करनेवाला निष्पाप होकर स्वर्गलोकमें जाता है। अश्वका दान देकर मनुष्य दीर्घ आयु, आरोग्य, सौभाग्य और स्वर्गको प्राप्त कर लेता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको दासीदान करनेवाला अप्सराओंके लोकमें जाकर सुखोपभोग करता है। जो पाँच सौ पल ताँबेकी थाली या ढाई सौ पल, सवा सौ पल अथवा उसके भी आधे (६२ $\frac{1}{2}$) पलोंकी बनी थाली देता है, वह भोग तथा मोक्षका भागी होता है॥ २९—३९ $\frac{1}{2}$॥

बैलोंसे युक्त शकटदान करनेसे मनुष्य विमानद्वारा

* त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य कन्यादो ब्रह्मलोकभाक्॥ (२११। ३७)

स्वर्गलोकको जाता है। वस्त्रदानसे आयु, आरोग्य और अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। धान, गेहूँ, अगहनीका चावल और जौ आदिका दान करनेवाला स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। आसन, धातुनिर्मित पात्र, लवण, सुगन्धियुक्त चन्दन, धूप-दीप, ताम्बूल, लोहा, चाँदी, रत्न और विविध दिव्य पदार्थोंका दान देकर मनुष्य भोग और मोक्ष भी प्राप्त करता है। तिल और तिलपात्रका दान देकर मनुष्य स्वर्ग-सुखका भागी होता है। अन्नदानसे बढ़कर कोई दान न तो है, न था और न होगा ही। हाथी, अश्व, रथ, दास-दासी और गृहादिके दान—ये सब अन्नदानकी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं हैं। जो पहले बड़ा-से-बड़ा पाप करके फिर अन्नदान कर देता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर अक्षय लोकोंको पा लेता है। जल और प्याऊका दान देकर मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको सिद्ध कर लेता है। (शीतकालमें) मार्ग आदिमें अग्नि और काष्ठका दान करनेसे मनुष्य तेजोयुक्त होता है और स्वर्गलोकमें देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओंद्वारा विमानमें सेवित होता है॥ ४०—४७॥

घृत, तैल और लवणका दान देनेसे सब कुछ मिल जाता है। छत्र, पादुका और काष्ठ आदिका दान करके स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास करता है। प्रतिपदा आदि पुण्यमयी तिथियोंमें, विष्कुम्भ आदि योगोंमें, चैत्र आदि मासोंमें, संवत्सरारम्भमें और अश्विनी आदि नक्षत्रोंमें विष्णु, शिव, ब्रह्मा तथा लोकपाल आदिकी अर्चना करके दिया गया दान महान् फलप्रद है। वृक्ष, उद्यान, भोजन, वाहन आदि तथा पैरोंमें मालिशके लिये तेल आदि देकर मनुष्य भोग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है॥ ४८—५०॥

इस लोकमें गौ, पृथ्वी और विद्याका दान—ये तीनों समान फल देनेवाले हैं। वेद-विद्याका दान देकर मनुष्य पापरहित हो ब्रह्मलोकमें प्रवेश करता है। जो (योग्य शिष्यको) ब्रह्मज्ञान प्रदान करता है, उसने तो मानो सप्तद्वीपवती पृथ्वीका दान कर दिया। जो समस्त प्राणियोंको अभयदान देता है, वह मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। पुराण, महाभारत अथवा रामायणका लेखन करके उस पुस्तकका दान करनेसे मनुष्य भोग और मोक्षकी प्राप्ति कर लेता है। जो वेद आदि शास्त्र और नृत्य-गीतका अध्यापन करता है, वह स्वर्गगामी होता है। जो उपाध्यायको वृत्ति और छात्रोंको भोजन आदि देता है, उस धर्म एवं कामादि पुरुषार्थोंके रहस्यदर्शी मनुष्यने क्या नहीं दे दिया[1]॥ ५१—५५॥

सहस्र वाजपेय यज्ञोंमें विधिपूर्वक दान देनेसे जो फल होता है, विद्यादानसे मनुष्य वह सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो शिवालय, विष्णुमन्दिर तथा सूर्यमन्दिरमें ग्रन्थवाचन करता है, वह सभी दानोंका फल प्राप्त करता है[2]। त्रैलोक्यमें जो ब्राह्मणादि चार वर्ण और ब्रह्मचर्यादि चार आश्रम हैं, वे तथा ब्रह्मा आदि समस्त देवगण विद्यादानमें प्रतिष्ठित हैं। विद्या कामधेनु है और विद्या उत्तम नेत्र है। गान्धर्व आदि उपवेदोंका दान करनेसे मनुष्य गन्धर्वोंके साथ प्रमुदित होता है, वेदाङ्गोंके दानसे स्वर्गलोकको प्राप्त करता है और धर्मशास्त्रके दानसे धर्मके सांनिध्यको प्राप्त होकर दाता प्रमुदित होता है। सिद्धान्तोंके दानसे मनुष्य निस्संदेह मोक्ष प्राप्त करता है। पुस्तक-प्रदानसे विद्यादानके फलकी प्राप्ति होती है। इसलिये शास्त्रों और पुराणोंका दान करनेवाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है। जो शिष्योंको शिक्षादान

१. वृत्तिं दद्यादुपाध्याये छात्राणां भोजनादिकम्। किमदत्तं भवेत्तेन धर्मकामादिदर्शिना॥ (२११।५५)
२. शिवालये विष्णुगृहे सूर्यस्य भवने तथा। सर्वदानप्रदः स स्यात् पुस्तकं वाचयेतु यः॥ (२११।५७)

करता है, वह पुण्डरीकयागका फल प्राप्त करता है॥ ५६—६२॥

जीविका-दानके तो फलका अन्त ही नहीं है। जो अपने पितरोंको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति कराना चाहें, उन्हें इस लोकके सर्वश्रेष्ठ एवं अपनेको प्रिय लगनेवाले समस्त पदार्थोंका पितरोंके उद्देश्यसे दान करना चाहिये। जो विष्णु, शिव, ब्रह्मा, देवी और गणेश आदि देवताओंकी पूजा करके पूजा-द्रव्यका ब्राह्मणको दान करता है, वह सब कुछ प्राप्त करता है। देवमन्दिर एवं देवप्रतिमाका निर्माण करानेवाला समस्त अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त करता है। मन्दिरमें झाड़ू-बुहारी और प्रक्षालन करनेवाला पुरुष पापरहित हो जाता है। देवप्रतिमाके सम्मुख विविध मण्डलोंका निर्माण करनेवाला मण्डलाधिपति होता है। देवताको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, प्रदक्षिणा, घण्टा, ध्वजा, चँदोवा और वस्त्र आदि समर्पित करनेसे एवं उनके दर्शन और उनके सम्मुख गाने-बजानेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त करता है। भगवान्‌को कस्तूरी, सिंहलदेशीय चन्दन, अगुरु, कपूर तथा मुस्त आदि सुगन्धि-द्रव्य और विजयगुग्गुल समर्पित करे और संक्रान्ति आदिके दिन एक प्रस्थ घृतसे स्नान कराके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। 'स्नान' सौ पलका और पच्चीस पलका 'अभ्यङ्ग' मानना चाहिये। 'महास्नान' हजार पलका कहा गया है। भगवान्‌को जलस्नान करानेसे दस अपराध, दुग्धस्नान करानेसे सौ अपराध, दुग्ध एवं दधि दोनोंसे स्नान करानेसे सहस्र अपराध और घृतस्नान करानेसे दस हजार अपराध विनष्ट हो जाते हैं। देवताके उद्देश्यसे दास-दासी, अलंकार, गौ, भूमि, हाथी-घोड़े और सौभाग्य-द्रव्य देकर मनुष्य धन और दीर्घायुसे युक्त होकर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है॥ ६३—७२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नाना प्रकारके दानोंकी महिमाका वर्णन' नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २११॥

दो सौ बारहवाँ अध्याय

विविध काम्य-दान एवं मेरुदानोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! अब मैं आपके सम्मुख काम्य-दानोंका वर्णन करता हूँ, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। प्रत्येक मासमें प्रतिदिन पूजन करते हुए एक दिन विशेषरूपसे पूजन किया जाता है। इसे 'काम्य-पूजन' कहते हैं। वर्षके समाप्त होनेपर गुरुपूजन एवं महापूजनके साथ व्रतका विसर्जन किया जाता है॥ १½॥

जो मार्गशीर्षमासमें शिवका पूजन करके पिष्ट (आटा) निर्मित अश्व एवं कमलका दान करता है, वह चिरकालतक सूर्यलोकमें निवास करता है। पौषमासमें पिष्टमय हाथीका दान देकर मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। माघमें पिष्टमय अश्वयुक्त रथका दान देनेवाला नरकमें नहीं जाता। फाल्गुनमें पिष्टनिर्मित बैलका दान देकर मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होता है तथा दूसरे जन्ममें राज्य प्राप्त करता है। चैत्रमासमें दास-दासियोंसे युक्त एवं ईख (गुड़)-से भरा हुआ घर देकर मनुष्य चिरकालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है और उसके बाद राजा होता है। वैशाखमें सप्तधान्यका दान देकर मनुष्य शिवके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है। ज्येष्ठ तथा आषाढ़में अन्नकी बलि देनेवाला शिवस्वरूप हो जाता है। श्रावणमें पुष्परथका दान देकर मनुष्य स्वर्गके सुखोंका

उपभोग करनेके पश्चात् दूसरे जन्ममें राज्यलाभ करता है और दो सौ फलोंका दान देनेवाला अपने सम्पूर्ण कुलका उद्धार करके राजपदको प्राप्त होता है। भाद्रपदमें धूपदान करनेवाला स्वर्गको प्राप्त होकर दूसरे जन्ममें राज्यका उपभोग करता है। आश्विनमें दुग्ध और घृतसे परिपूर्ण पात्रका दान स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है। कार्तिकमें गुड़, शक्कर और घृतका दान देकर मनुष्य स्वर्गलोकमें निवास करता है और दूसरे जन्ममें राजा होता है॥ २—८½॥

अब मैं बारह प्रकारके मेरुदानोंके विषयमें कहूँगा, जो भोग और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले हैं। कार्तिककी पूर्णिमाको मेरुव्रत करके ब्राह्मणको 'रत्नमेरु'का दान करना चाहिये। अब क्रमशः सब मेरुओंका प्रमाण सुनिये। हीरे, माणिक्य, नीलमणि, वैदूर्यमणि, स्फटिकमणि, पुखराज, मरकतमणि और मोती—इनका एक प्रस्थका मेरु उत्तम माना गया है। इससे आधे परिमाणका मेरु मध्यम और मध्यमसे आधा निकृष्ट होता है। रत्नमेरुका दान करनेवाला धनकी कंजूसीका परित्याग कर दे। द्वादशदल कमलका निर्माण करके उसकी कर्णिकापर मेरुकी स्थापना करे। इसके ब्रह्मा, विष्णु और शिव देवता हैं। मेरुसे पूर्व दिशामें तीन दल हैं, उनमें क्रमशः माल्यवान्, भद्राश्व तथा ऋक्ष पर्वतोंका पूजन करे। मेरुसे दक्षिणवाले दलोंमें निषध, हेमकूट और हिमवान्‌की पूजा करे। मेरुसे उत्तरवाले तीन दलोंमें क्रमशः नील, श्वेत और शृङ्गीका पूजन करे तथा पश्चिमवाले दलोंमें गन्धमादन, वैकङ्क एवं केतुमालकी पूजा करे। इस प्रकार बारह पर्वतोंसे युक्त मेरु पर्वतका पूजन करना चाहिये॥ ९—१४½॥

उपवासपूर्वक रहकर स्नानके पश्चात् भगवान् विष्णु अथवा शिवका पूजन करे। भगवान्‌के सम्मुख मेरुका पूजन करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसका ब्राह्मणको दान कर दे॥ १५½॥

दानका संकल्प करते समय देश-कालके उच्चारणके पश्चात् कहे—'मैं इस द्रव्यनिर्मित उत्तम मेरु पर्वतका, जिसके देवता भगवान् विष्णु हैं, अमुक गोत्रवाले ब्राह्मणको दान करता हूँ। इस दानसे मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो जाय और मुझे उत्तम भोग एवं मोक्षकी प्राप्ति हो'॥ १६½॥

इस प्रकार दान करनेवाला मनुष्य अपने समस्त कुलका उद्धार करके देवताओंद्वारा सम्मानित हो विमानपर बैठकर इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा श्रीवैकुण्ठधाममें क्रीडा करता है। संक्रान्ति आदि अन्य पुण्यकालोंमें मेरुका दान करना-कराना चाहिये॥ १७-१८॥

एक सहस्र पल सुवर्णके द्वारा महामेरुका निर्माण करावे। वह तीन शिखरोंसे युक्त होना चाहिये और उन शिखरोंपर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी स्थापना करनी चाहिये। मेरुके साथवाला प्रत्येक पर्वत सौ-सौ पल सुवर्णका बनवाये। मेरुको लेकर उसके सहवर्ती पर्वत तेरह माने गये हैं। उत्तरायण अथवा दक्षिणायनकी संक्रान्तिमें या सूर्य-चन्द्रके ग्रहणकालमें विष्णुकी प्रतिमाके सम्मुख 'स्वर्णमेरु'की स्थापना करे। तदनन्तर श्रीहरि और स्वर्णमेरुकी पूजा कर उसे ब्राह्मणको समर्पित करे। ऐसा करनेसे मनुष्य चिरकालतक विष्णुलोकमें निवास करता है। जो बारह पर्वतोंसे युक्त 'रजतमेरु'का संकल्पपूर्वक दान करता है, वह उतने वर्षोंतक राज्यका उपभोग करता है, जितने कि इस पृथ्वीपर परमाणु हैं। इसके सिवा वह पूर्वोक्त फलको भी प्राप्त कर लेता है। 'भूमिमेरु'का दान विष्णु एवं ब्राह्मणकी पूजा करके करना चाहिये। एक नगर, जनपद अथवा ग्रामके आठवें अंशसे 'भूमिमेरु'की कल्पना करके अवशिष्ट अंशसे शेष बारह अंशोंकी कल्पना करनी चाहिये। भूमिमेरुके दानका भी फल पूर्ववत् होता है॥ १९—२३½॥

बारह पर्वतोंसे युक्त मेरुका हाथियोंद्वारा निर्माण करके तीन पुरुषोंसहित उस 'हस्तिमेरु'का दान करे। वह दान देकर मनुष्य अक्षय फलका भागी होता है॥ २४½॥

पंद्रह अश्वोंका 'अश्वमेरु' होता है। इसके साथ बारह पर्वतोंके स्थान बारह घोड़े होने चाहिये। श्रीविष्णु आदि देवताओंके पूजनपूर्वक अश्वमेरुका दान करनेवाला इस जन्ममें विविध भोगोंका उपभोग करके दूसरे जन्ममें राजा होता है। 'गोमेरु'का भी अश्वमेरुकी संख्याके परिमाण एवं विधिसे दान करना चाहिये। एक भार रेशमी वस्त्रोंका 'वस्त्रमेरु' होता है। उसे मध्यमें रखकर अन्य बारह पर्वतोंके स्थानपर बारह वस्त्र रखे। इसका दान करके मनुष्य अक्षय फलकी प्राप्ति करता है। पाँच हजार पल घृतका 'आज्य-पर्वत' माना गया है। इसका सहवर्ती प्रत्येक पर्वत पाँच सौ पल घृतका होना चाहिये। इस आज्य-पर्वतपर श्रीहरिका यजन करे। फिर श्रीविष्णुके सम्मुख इसे ब्राह्मणको दानकर मनुष्य इस लोकमें सर्वस्व पाकर श्रीहरिके परमधामको प्राप्त होता है। उसी प्रकार 'खण्ड (खाँड) मेरु'का निर्माण एवं दान करके मनुष्य पूर्वोक्त फलकी प्राप्ति कर लेता है॥ २५—२९॥

पाँच खारी धान्यका 'धान्यमेरु' होता है। इसके साथ अन्य बारह पर्वत एक-एक खारी धान्यके बनाने चाहिये। उन सबके तीन-तीन स्वर्णमय शिखर होने चाहिये। सबपर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनोंका पूजन करना चाहिये। श्रीविष्णुका विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये। इससे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है॥ ३०½॥

इसी प्रमाणके अनुसार 'तिलमेरु'का निर्माण करके दशांशके प्रमाणसे अन्य पर्वतोंका निर्माण करे। उसके एवं अन्य पर्वतोंके भी पूर्वोक्त प्रकारसे शिखर बनाने चाहिये। इस तिलमेरुका दान करके मनुष्य बन्धु-बान्धवोंके साथ विष्णुलोकको प्राप्त होता है॥ ३१-३२॥

(तिलमेरुका दान करते समय निम्नलिखित मन्त्रको पढ़े—) "विष्णुस्वरूप तिलमेरुको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश जिसके शिखर हैं, जो पृथ्वीकी नाभिपर स्थित है, जो सहवर्ती बारहों पर्वतोंका प्रभु, समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला, शान्तिमय, विष्णुभक्त है, उस तिलमेरुको नमस्कार है। वह मेरी सर्वथा रक्षा करे। मैं निष्पाप होकर पितरोंके साथ श्रीविष्णुको प्राप्त होता हूँ। 'ॐ नमः' तुम विष्णुस्वरूप हो, विष्णुके सम्मुख मैं विष्णुस्वरूप दाता विष्णुस्वरूप ब्राह्मणका भक्तिपूर्वक भोग एवं मोक्षकी प्राप्तिके हेतु तुम्हारा दान करता हूँ"॥ ३३—३५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मेरुदानका वर्णन' नामक दो सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१२॥

दो सौ तेरहवाँ अध्याय

पृथ्वीदान तथा गोदानकी महिमा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं 'पृथ्वीदान'के विषयमें कहता हूँ। 'पृथ्वी' तीन प्रकारकी मानी गयी है। सौ करोड़ योजन विस्तारवाली ससद्वीपवती समुद्रोंसहित जम्बूद्वीपपर्यन्त पृथ्वी उत्तम मानी गयी है। उत्तम पृथ्वीकी पाँच भार सुवर्णसे रचना करे। उसके आधेमें कूर्म एवं कमल बनवाये। यह 'उत्तम पृथ्वी' बतलायी गयी है। इसके आधेमें 'मध्यम पृथ्वी' मानी जाती है। इसके तीसरे भागमें निर्मित पृथ्वी 'कनिष्ठ' मानी गयी है। इसके साथ पृथ्वीके

तीसरे भागमें कूर्म और कमलका निर्माण करना चाहिये॥ १—३ ½॥

एक हजार पल सुवर्णसे मूल, दण्ड, पत्ते, फल, पुष्प और पाँच स्कन्धोंसे युक्त कल्पवृक्षकी कल्पना करे। विद्वान् ब्राह्मण यजमानके द्वारा संकल्प कराके पाँच ब्राह्मणोंको इसका दान करावे। इसका दान करनेवाला ब्रह्मलोकमें पितृगणोंके साथ चिरकालतक आनन्दका उपभोग करता है। पाँच सौ पल सुवर्णसे कामधेनुका निर्माण कराके विष्णुके सम्मुख दान करे। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि समस्त देवता गौमें प्रतिष्ठित हैं। धेनुदान करनेसे अपने-आप समस्त दान हो जाते हैं। यह सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको सिद्ध करनेवाला एवं ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला है। श्रीविष्णुके सम्मुख कपिला गौका दान करनेवाला अपने सम्पूर्ण कुलका उद्धार कर देता है। कन्याको अलंकृत करके दान करनेसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। जिसमें सभी प्रकारके सस्य (अनाजोंके पौधे) उपज सकें, ऐसी भूमिका दान देकर मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। ग्राम, नगर अथवा खेटक (छोटे गाँव)-का दान देनेवाला सुखी होता है। कार्तिककी पूर्णिमा आदिमें वृषोत्सर्ग करनेवाला अपने कुलका उद्धार कर देता है॥ ४—१०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पृथ्वीदानका वर्णन' नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१३॥

दो सौ चौदहवाँ अध्याय

नाड़ीचक्रका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं नाड़ीचक्रके विषयमें कहता हूँ, जिसके जाननेसे श्रीहरिका ज्ञान हो जाता है। नाभिके अधोभागमें कन्द (मूलाधार) है, उससे अङ्कुरोंकी भाँति नाड़ियाँ निकली हुई हैं। नाभिके मध्यमें बहत्तर हजार नाड़ियाँ स्थित हैं। इन नाड़ियोंने शरीरको ऊपर-नीचे, दायें-बायें सब ओरसे व्याप्त कर रखा है और ये चक्राकार होकर स्थित हैं। इनमें प्रधान दस नाड़ियाँ हैं—इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पृथा, यशा, अलम्बुषा, कुहू और दसवीं शङ्खिनी। ये दस प्राणोंका वहन करनेवाली प्रमुख नाड़ियाँ बतलायी गयीं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय—ये दस 'प्राणवायु' हैं। इनमें प्रथम वायु प्राण दसोंका स्वामी है। यह प्राण—रिक्तताकी पूर्ति प्रति प्राणोंको प्राणयन (प्रेरण) करता है और सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयदेशमें स्थित रहकर अपान-वायुद्वारा मल-मूत्रादिके त्यागसे होनेवाली रिक्तताको नित्य पूर्ण करता है। जीवमें आश्रित यह प्राण श्वासोच्छ्वास और कास आदिद्वारा प्रयाण (गमनागमन) करता है, इसलिये इसे 'प्राण' कहा गया है। अपानवायु मनुष्योंके आहारको नीचेकी ओर ले जाता है और मूत्र एवं शुक्र आदिका भी नीचेकी ओर वहन करता है, इस अपानयनके कारण इसे 'अपान' कहा जाता है। समानवायु मनुष्योंके खाये-पीये और सूँघे हुए पदार्थोंको एवं रक्त, पित्त, कफ तथा वातको सारे अङ्गोंमें समानभावसे ले जाता है, इस कारण उसे 'समान' कहा गया है। उदान नामक वायु मुख और अधरोंको स्पन्दित करता है, नेत्रोंकी अरुणिमाको बढ़ाता है और मर्मस्थानोंको उद्विग्न करता है, इसीलिये उसका नाम 'उदान' है।

'व्यान' अङ्गोंको पीड़ित करता है। यही व्याधिको कुपित करता है और कण्ठको अवरुद्ध कर देता है। व्यापनशील होनेसे इसे 'व्यान' कहा गया है। 'नागवायु' उद्गार (डकार-वमन आदि)-में और 'कूर्मवायु' नयनोंके उन्मीलन (खोलने)-में प्रवृत्त होता है। 'कृकर' भक्षणमें और 'देवदत्त' वायु जँभाईमें अधिष्ठित है। 'धनंजय' पवनका स्थान घोष है। यह मृत शरीरका भी परित्याग नहीं करता। इन दसोंद्वारा जीव प्रयाण करता है, इसलिये प्राणभेदसे नाड़ीचक्रके भी दस भेद हैं॥ १—१४॥

संक्रान्ति, विषुव, दिन, रात, अयन, अधिमास, ऋण, ऊनरात्र एवं धन—ये सूर्यकी गतिसे होनेवाली दस दशाएँ शरीरमें भी होती हैं। इस शरीरमें हिक्का (हिचकी) ऊनरात्र, विजृम्भिका (जँभाई) अधिमास, कास (खाँसी) ऋण और निःश्वास 'धन' कहा जाता है। शरीरगत वामनाड़ी 'उत्तरायण' और दक्षिणनाड़ी 'दक्षिणायन' है। दोनोंके मध्यमें नासिकाके दोनों छिद्रोंसे निर्गत होनेवाली श्वासवायु 'विषुव' कहलाती है। इस विषुववायुका ही अपने स्थानसे चलकर दूसरे स्थानसे युक्त होना 'संक्रान्ति' है। द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठ! शरीरके मध्यभागमें 'सुषुम्णा' स्थित है, वामभागमें 'इड़ा' और दक्षिणभागमें 'पिङ्गला' है। ऊर्ध्वगतिवाला प्राण 'दिन' माना गया है और अधोगामी अपानको 'रात्रि' कहा गया है। एक प्राणवायु ही दस वायुके रूपमें विभाजित है। देहके भीतर जो प्राणवायुका आयाम (बढ़ना) है, उसे 'चन्द्रग्रहण' कहते हैं। वही जब देहसे ऊपरतक बढ़ जाता है, तब उसे 'सूर्यग्रहण' मानते हैं॥ १५—२०॥

साधक अपने उदरमें जितनी वायु भरी जा सके, भर ले। यह देहको पूर्ण करनेवाला, 'पूरक' प्राणायाम है। श्वास निकलनेके सभी द्वारोंको रोककर, श्वासोच्छ्वासकी क्रियासे शून्य हो परिपूर्ण कुम्भकी भाँति स्थित हो जाय—इसे 'कुम्भक' प्राणायाम कहा जाता है। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता साधक ऊपरकी ओर एक ही नासारन्ध्रसे वायुको निकाले। इस प्रकार उच्छ्वासयोगसे युक्त हो वायुका ऊपरकी ओर विरेचन (निःसारण) करे (यह 'रेचक' प्राणायाम है)। यह श्वासोच्छ्वासकी क्रियाद्वारा अपने शरीरमें विराजमान शिवस्वरूप ब्रह्मका ही ('सोऽहं' 'हंसः'के रूपमें) उच्चारण होता है, अतः तत्त्ववेत्ताओंके मतमें वही 'जप' कहा गया है। इस प्रकार एक तत्त्ववेत्ता योगीन्द्र श्वास-प्रश्वासद्वारा दिन-रातमें इक्कीस हजार छः सौकी संख्यामें मन्त्र-जप करता है। यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरसे सम्बन्ध रखनेवाली 'अजपा' नामक गायत्री है। जो इस अजपाका जप करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। चन्द्रमा, अग्नि तथा सूर्यसे युक्त मूलाधार-निवासिनी आद्या कुण्डलिनी-शक्ति हृदयप्रदेशमें अंकुरके आकारमें स्थित है। सात्त्विक पुरुषोंमें उत्तम वह योगी सृष्टिक्रमका अवलम्बन करके सृष्टिन्यास करे तथा ब्रह्मरन्ध्रवर्ती शिवसे कुण्डलिनीके मुखभागमें झरते हुए अमृतका चिन्तन करे। शिवके दो रूप हैं—सकल और निष्कल। सगुण साकार देहमें विराजित शिवको 'सकल' जानना चाहिये और जो देहसे रहित हैं, वे 'निष्कल' कहे गये हैं। वे 'हंस-हंस'का जप करते हैं। 'हंस' नाम है—'सदाशिव'का। जैसे तिलोंमें तेल और पुष्पोंमें गन्धकी स्थिति है, उसी प्रकार अन्तर्यामी पुरुष (जीवात्मा)-में बाहर और भीतर भी सदाशिवका निवास है। ब्रह्माका स्थान हृदयमें है, भगवान् विष्णु कण्ठमें अधिष्ठित हैं, तालुके मध्यभागमें रुद्र, ललाटमें महेश्वर और प्राणोंके अग्रभागमें सदाशिवका स्थान है। उनके अन्तमें परात्पर ब्रह्म विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर और सदाशिव—इन पाँच रूपोंमें 'सकल' (साकार या सगुण) परमात्माका वर्णन किया गया

है। इसके विपरीत परमात्मा, जो निर्गुण निराकाररूप है, उसे 'निष्कल' कहा गया है॥ २१—३२॥

जो योगी अनाहत नादको प्रासादतक उठाकर अनवरत जप करता है, वह छः महीनोंमें ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। गमनागमनके ज्ञानसे समस्त पापोंका क्षय होता है और योगी अणिमा आदि सिद्धियों, गुणों और ऐश्वर्यको छः महीनोंमें ही प्राप्त कर लेता है। मैंने स्थूल, सूक्ष्म और परके भेदसे तीन प्रकारके प्रासादका वर्णन किया है। प्रासादको ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत—इन तीन रूपोंमें लक्षित करे। 'ह्रस्व' पापोंको दग्ध कर देता है, 'दीर्घ' मोक्षप्रद होता है और 'प्लुत' आप्यायन (तृप्तिप्रदान) करनेमें समर्थ है। यह मस्तकपर बिन्दु (अनुस्वार)-से विभूषित होता है। ह्रस्व-प्रासाद-मन्त्रके आदि और अन्तमें 'फट्' लगाकर जप किया जाय तो यह मारण कर्ममें हितकारक होता है। यदि उसके आदि-अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर जपा जाय तो वह आकर्षण-साधक बताया गया है। महादेवजीके दक्षिणामूर्तिरूप-सम्बन्धी मन्त्रका खड़े होकर यदि पाँच लाख जप किया जाय तथा जपके अन्तमें घीका दस हजार होम कर दिया जाय तो वह मन्त्र आप्यायित (सिद्ध) हो जाता है। फिर उससे वशीकरण, उच्चाटन आदि कार्य कर सकते हैं॥ ३३—३८½॥

जो ऊपर शून्य, नीचे शून्य और मध्यमें भी शून्य है, उस त्रिशून्य निरामय मन्त्रको जो जानता है, वह द्विज निश्चय ही मुक्त हो जाता है। पाँच मन्त्रोंके मेलसे महाकलेवरधारी अड़तीस कलाओंसे युक्त प्रासादमन्त्रको जो नहीं जानता है, वह आचार्य नहीं कहलाता है। जो ओंकार, गायत्री तथा रुद्रादि मन्त्रोंको जानता है, वही गुरु है॥ ३९—४१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नाड़ीचक्रकथन' नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१४॥

दो सौ पंद्रहवाँ अध्याय

संध्या-विधि

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! जो पुरुष ॐकारको जानता है, वह योगी और विष्णुस्वरूप है। इसलिये सम्पूर्ण मन्त्रोंके सारस्वरूप और सब कुछ देनेवाले ॐकारका अभ्यास करना चाहिये। समस्त मन्त्रोंके प्रयोगमें ॐकारका सर्वप्रथम स्मरण किया जाता है। जो कर्म उससे युक्त है, वही पूर्ण है। उससे विहीन कर्म पूर्ण नहीं है। आदिमें ॐकारसे युक्त ('भूः भुवः स्वः'—ये) तीन शाश्वत महाव्याहृतियों एवं ('तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्' इस) तीन पदोंसे युक्त गायत्रीको ब्रह्मका (वेद अथवा ब्रह्माका) मुख जानना चाहिये। जो मनुष्य नित्य तीन वर्षोंतक आलस्यरहित होकर गायत्रीका जप करता है, वह वायुभूत और आकाशस्वरूप होकर परब्रह्मको प्राप्त होता है। एकाक्षर ॐकार ही परब्रह्म है और प्राणायाम ही परम तप है। गायत्री-मन्त्रसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। मौन रहनेसे सत्यभाषण करना ही श्रेष्ठ है*॥ १—५॥

गायत्रीकी सात आवृत्ति पापोंका हरण करनेवाली है, दस आवृत्तियोंसे वह जपकर्ताको स्वर्गकी प्राप्ति कराती है और बीस आवृत्ति करनेपर तो स्वयं सावित्री देवी जप करनेवालेको ईश्वरलोकमें ले जाती है। साधक गायत्रीका एक सौ आठ बार जप करके संसार-सागरसे तर जाता है।

* एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः। सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते॥ (२१५।५)

रुद्र-मन्त्रोंके जप तथा कूष्माण्ड-मन्त्रोंके जपसे गायत्री-मन्त्रका जप श्रेष्ठ है। गायत्रीसे श्रेष्ठ कोई भी जप करनेयोग्य मन्त्र नहीं है तथा व्याहृति-होमके समान कोई होम नहीं है। गायत्रीके एक चरण, आधा चरण, सम्पूर्ण ऋचा अथवा आधी ऋचाका भी जप करनेमात्रसे गायत्री देवी साधकको ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णकी चोरी एवं गुरुपत्नी-गमन आदि महापातकोंसे मुक्त कर देती है॥ ६—९॥

कोई भी पाप करनेपर उसके प्रायश्चित्तस्वरूप तिलोंका हवन और गायत्रीका जप बताया गया है। उपवासपूर्वक एक सहस्र गायत्री-मन्त्रका जप करनेवाला अपने पापोंको नष्ट कर देता है। गो-वध, पितृवध, मातृवध, ब्रह्महत्या अथवा गुरुपत्नीगमन करनेवाला, ब्राह्मणकी जीविकाका अपहरण करनेवाला, सुवर्णकी चोरी करनेवाला और सुरापान करनेवाला महापातकी भी गायत्रीका एक लाख जप करनेसे शुद्ध हो जाता है। अथवा स्नान करके जलके भीतर गायत्रीका सौ बार जप करे। तदनन्तर गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलके सौ आचमन करे। इससे भी मनुष्य पापरहित हो जाता है। गायत्रीका सौ बार जप करनेपर वह समस्त पापोंका उपशमन करनेवाली मानी गयी है और एक सहस्र जप करनेपर उपपातकोंका भी नाश करती है। एक करोड़ जप करनेपर गायत्री देवी अभीष्ट फल प्रदान करती है। जपकर्ता देवत्व और देवराजत्वको भी प्राप्त कर लेता है॥ १०—१३ $\frac{१}{२}$॥

आदिमें ॐकार, तदनन्तर '**भूर्भुवः स्वः**' का उच्चारण करना चाहिये। उसके बाद गायत्री-मन्त्रका एवं अन्तमें पुनः ॐकारका प्रयोग करना चाहिये। जपमें मन्त्रका यही स्वरूप बताया गया है[1]। गायत्री-मन्त्रके विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्द और सविता देवता हैं। उपनयन, जप एवं होममें इनका विनियोग करना चाहिये[2]। गायत्री-मन्त्रके चौबीस अक्षरोंके अधिष्ठातृदेवता क्रमशः ये हैं—अग्नि, वायु, रवि, विद्युत्, यम, जलपति, गुरु, पर्जन्य, इन्द्र, गन्धर्व, पूषा, मित्र, वरुण, त्वष्टा, वसुगण, मरुद्गण, चन्द्रमा, अङ्गिरा, विश्वदेव, अश्विनीकुमार, प्रजापतिसहित समस्त देवगण, रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु। गायत्री-जपके समय उपर्युक्त देवताओंका उच्चारण किया जाय तो वे जपकर्ताके पापोंका विनाश करते हैं॥ १४—१८ $\frac{१}{२}$॥

गायत्री-मन्त्रके एक-एक अक्षरका अपने निम्नलिखित अङ्गोंमें क्रमशः न्यास करे। पैरोंके दोनों अङ्गुष्ठ, गुल्फद्वय, नलक (दोनों पिण्डलियाँ), घुटने, दोनों जाँघें, उपस्थ, वृषण, कटिभाग, नाभि, उदर, स्तनमण्डल, हृदय, ग्रीवा, मुख (अधरोष्ठ), तालु, नासिका, नेत्रद्वय, भ्रूमध्य, ललाट, पूर्व आनन (उत्तरोष्ठ), दक्षिण पार्श्व, उत्तर पार्श्व, सिर और सम्पूर्ण मुखमण्डल। गायत्रीके चौबीस अक्षरोंके वर्ण क्रमशः इस प्रकार हैं—पीत, श्याम, कपिल, मरकतमणिसदृश, अग्नितुल्य, रुक्मसदृश, विद्युत्प्रभ, धूम्र, कृष्ण, रक्त, गौर, इन्द्रनीलमणिसदृश, स्फटिकमणितुल्य, स्वर्णिम, पाण्डु, पुखराजतुल्य, अखिलद्युति, हेमाभधूम्र, रक्तनील, रक्तकृष्ण, सुवर्णाभ, शुक्ल, कृष्ण और पलाशवर्ण। गायत्री ध्यान करनेपर पापोंका अपहरण करती और हवन करनेपर सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको प्रदान करती है। गायत्री-मन्त्रसे तिलोंका होम सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला है। शान्तिकी इच्छा रखनेवाला जौका और दीर्घायु चाहनेवाला घृतका हवन करे। कर्मकी सिद्धिके

१. ॐकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च॥
गायत्रीं प्रणवश्चान्ते जपे चैव मुदाहृताम्। (२१५।१४-१५)
—इसके अनुसार जपनीय मन्त्रका पाठ यों होगा—'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।'

२. गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवताग्निर्मुखमुपनयने जपे होमे वा विनियोगः।

लिये सरसोंका, ब्रह्मतेजकी प्राप्तिके लिये दुग्धका, पुत्रकी कामना करनेवाला दधिका और अधिक धान्य चाहनेवाला अगहनीके चावलका हवन करे। ग्रहपीड़ाकी शान्तिके लिये खैर वृक्षकी समिधाओंका, धनकी कामना करनेवाला बिल्वपत्रोंका, लक्ष्मी चाहनेवाला कमल-पुष्पोंका, आरोग्यका इच्छुक और महान् उत्पातसे आतङ्कित मनुष्य दूर्वाका, सौभाग्याभिलाषी गुग्गुलका और विद्याकामी खीरका हवन करे। दस हजार आहुतियोंसे उपर्युक्त कामनाओंकी सिद्धि होती है और एक लाख आहुतियोंसे साधक मनोऽभिलषित वस्तुको प्राप्त करता है। एक करोड़ आहुतियोंसे होता ब्रह्महत्याके महापातकसे मुक्त हो अपने कुलका उद्धार करके श्रीहरिस्वरूप हो जाता है। ग्रह-यज्ञ-प्रधान होम हो, अर्थात् ग्रहोंकी शान्तिके लिये हवन किया जा रहा हो तो उसमें भी गायत्री-मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ देनेपर अभीष्ट फलकी सिद्धि होती है॥ १९—३०॥

संध्या-विधि

गायत्रीका आवाहन करके ॐकारका उच्चारण करना चाहिये। गायत्री मन्त्रसहित ॐकारका उच्चारण करके शिखा बाँधे। फिर आचमन करके हृदय, नाभि और दोनों कंधोंका स्पर्श करे। प्रणवके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, अग्नि अथवा परमात्मा देवता हैं। इसका सम्पूर्ण कर्मोंके आरम्भमें प्रयोग होता है[1]। निम्नलिखित मन्त्रसे गायत्री देवीका ध्यान करे—

शुक्ला चाग्निमुखी दिव्या कात्यायनसगोत्रजा।
त्रैलोक्यवरणा दिव्या पृथिव्याधारसंयुता॥
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा॥

तदनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रसे गायत्री देवीका आवाहन करे—

'ॐ तेजोऽसि महोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामाऽसि। विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुः ओम् अभि भूः।'

आगच्छ वरदे देवि जपे मे संनिधौ भव।
गायन्तं त्रायसे यस्माद् गायत्री त्वं ततः स्मृता॥

समस्त व्याहृतियोंके ऋषि प्रजापति ही हैं; वे सब—व्यष्टि और समष्टि दोनों रूपोंसे परब्रह्मस्वरूप एकाक्षर ॐकारमें स्थित हैं।

सप्तव्याहृतियोंके क्रमशः ये ऋषि हैं—विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ तथा कश्यप। उनके देवता क्रमशः ये हैं—अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र और विश्वदेव। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती—ये क्रमशः सात व्याहृतियोंके छन्द हैं। इन व्याहृतियोंका प्राणायाम और होममें विनियोग होता है[2]।

ॐ आपो हि ष्ठा मयो भुवः, ॐ ता न ऊर्जे दधातन, ॐ महेरणाय चक्षसे, ॐ यो वः शिवतमो रसः, ॐ तस्य भाजयतेह नः, ॐ उशतीरिव मातरः, ॐ तस्मा अरं गमाम वः, ॐ यस्य क्षयायः जिन्वथ, ॐ आपो जनयथा च नः।

इन तीन ऋचाओंका तथा **'ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः।'** इस मन्त्रका **'हिरण्यवर्णाः शुचयः'** इत्यादि पावमानी ऋचाओंका उच्चारण करके (पवित्रों अथवा दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंद्वारा) जलके आठ छींटे ऊपर उछाले। इससे जीवनभरके पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ३१—४१॥

---

१. ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो वर्णः सर्वकर्मारम्भे विनियोगः।

२. सप्तव्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगोतमात्रिवसिष्ठकश्यपा ऋषयो गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्नि-वाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवता अनादिष्टप्रायश्चित्ते प्राणायामे विनियोगः।

जलके भीतर '**ऋतं च०**'—इस अघमर्षण-मन्त्रका तीन बार जप करे[1]।

'**आपो हि ष्ठा**' आदि तीन ऋचाओंके सिन्धुद्वीप ऋषि, गायत्री छन्द और जल देवता माने गये हैं। ब्राह्मस्नानके लिये मार्जनमें इसका विनियोग किया जाता है[2]।

(अघमर्षण-मन्त्रका विनियोग इस प्रकार करना चाहिये—) इस अघमर्षण-सूक्तके अघमर्षण ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और भाववृत्त देवता हैं। पापनि:सारणके कर्ममें इसका प्रयोग किया जाता है[3]।

'**ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।**' यह गायत्री-मन्त्रका शिरोभाग है। इसके प्रजापति ऋषि हैं। यह छन्दरहित यजुर्मन्त्र है; क्योंकि यजुर्वेदके मन्त्र किसी नियत अक्षरवाले छन्दमें आबद्ध नहीं हैं। शिरोमन्त्रके ब्रह्मा, अग्नि, वायु और सूर्य देवता माने गये हैं[4]। प्राणायामसे वायु, वायुसे अग्नि और अग्निसे जलकी उत्पत्ति होती है तथा उसी जलसे शुद्धि होती है। इसलिये जलका आचमन निम्नलिखित मन्त्रसे करे—

अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु। तपो यज्ञो वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्[5]॥

'**उदुत्यं जातवेदसं०**'—इस मन्त्रके प्रस्कण्व ऋषि कहे गये हैं। इसका गायत्री छन्द और सूर्य देवता हैं। इसका अतिरात्र और अग्निष्टोम-यागमें विनियोग होता है (परंतु संध्योपासनामें इसका सूर्योपस्थान-कर्ममें विनियोग किया जाता है[6])।

'**चित्रं देवानां०**'—इस ऋचाके कौत्स ऋषि कहे गये हैं। इसका छन्द त्रिष्टुप् और देवता सूर्य माने गये हैं। यहाँ इसका भी विनियोग सूर्योपस्थानमें ही है[7]॥ ४२—५०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'संध्याविधिका वर्णन' नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१५॥

दो सौ सोलहवाँ अध्याय

गायत्री-मन्त्रके तात्पर्यार्थका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! इस प्रकार संध्याका विधान करके गायत्रीका जप और स्मरण करे। यह अपना गान करनेवाले साधकोंके शरीर और प्राणोंका त्राण करती है, इसलिये इसे 'गायत्री' कहा गया है। सविता (सूर्य)-से इसका प्रकाशन—प्राकट्य हुआ है, इसलिये यह 'सावित्री' कहलाती है। वाक्स्वरूपा होनेसे 'सरस्वती' नामसे भी प्रसिद्ध है॥ १-२॥

'तत्' पदसे ज्योति:स्वरूप परब्रह्म परमात्मा अभिहित है। 'भर्ग:' पद तेजका वाचक है; क्योंकि 'भा' धातु दीप्त्यर्थक है और उसीसे 'भर्ग' शब्द सिद्ध है। 'भातीति भर्ग:'—इस प्रकार इसकी व्युत्पत्ति है। अथवा 'भ्रस्ज पाके'—इस धातुसूत्रके अनुसार पाकार्थक 'भ्रस्ज' धातुसे भी

---

१. ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥

२. आपो हिष्ठेत्यादि तृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः, गायत्री छन्दः, आपो देवता ब्राह्मस्नानाय मार्जने विनियोगः।

३. अघमर्षणसूक्तस्याघमर्षण ऋषिरनुष्टुप्छन्दो भाववृत्तो देवता अघमर्षणे विनियोगः।

४. शिरसः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपदा गायत्री छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवता यजुःप्राणायामे विनियोगः।

५. इसका पाठ आजकलकी संध्याप्रतियोंमें इस प्रकार उपलब्ध होता है—
ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्॥

६. उदुत्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्गायत्री छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

७. चित्रमित्यस्य कौत्स ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

'भर्ग' शब्द निष्पन्न होता है; क्योंकि सूर्यदेवका तेज ओषधि आदिको पकाता है। 'भ्राज्' धातु भी दीप्त्यर्थक होता है। 'भ्राजते इति भर्गः'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'भ्राज' धातुसे भी 'भर्ग' शब्द बनता है। 'बहुलं छन्दसि'—इस वैदिक व्याकरणसूत्रके अनुसार उक्त सभी धातुओंसे आवश्यक प्रत्यय, आगम एवं विकारकी ऊहा करनेसे 'भर्ग' शब्द बन सकता है। 'वरेण्य'का अर्थ है—'सम्पूर्ण तेजोंसे श्रेष्ठ परमपदस्वरूप'। अथवा स्वर्ग एवं मोक्षकी कामना करनेवालोंके द्वारा सदा ही वरणीय होनेके कारण भी वह 'वरेण्य' कहलाता है; क्योंकि 'वृञ्' धातु वरणार्थक है। 'धीमहि' पदका यह अभिप्राय है कि 'हम जाग्रत् और सुषुप्ति आदि अवस्थाओंसे अतीत नित्य शुद्ध, बुद्ध, एकमात्र सत्य एवं ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमेश्वरका मुक्तिके लिये ध्यान करते हैं'॥ ३—६½॥

जगत्‌की सृष्टि आदिके कारण भगवान् श्रीविष्णु ही वह ज्योति हैं। कुछ लोग शिवको वह ज्योति मानते हैं, कुछ लोग शक्तिको मानते हैं और कोई सूर्यको तथा कुछ अग्निहोत्री वेदज्ञ अग्निको वह ज्योति मानते हैं। वस्तुतः अग्नि आदि रूपोंमें स्थित विष्णु ही वेद-वेदाङ्गोंमें 'ब्रह्म' माने गये हैं। इसलिये 'देवस्य सवितुः'—अर्थात् जगत्‌के उत्पादक श्रीविष्णुदेवका ही वह परमपद माना गया है; क्योंकि वे स्वयं ज्योतिःस्वरूप भगवान् श्रीहरि महत्तत्त्व आदिका प्रसव (उत्पत्ति) करते हैं। वे ही पर्जन्य, वायु, आदित्य एवं शीत-ग्रीष्म आदि ऋतुओंद्वारा अन्नका पोषण करते हैं। अग्निमें विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्यको प्राप्त होती है और सूर्यसे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजाओंकी उत्पत्ति होती है। 'धीमहि' पद धारणार्थक 'डुधाञ्' धातुसे भी सिद्ध होता है। इसलिये हम उस तेजका मनसे धारण-चिन्तन करते हैं—यह भी अर्थ होगा। (यः) परमात्मा श्रीविष्णुका वह तेज (नः) हम सब प्राणियोंकी (धियः) बुद्धि-वृत्तियोंको (प्रचोदयात्) प्रेरित करे। वे ईश्वर ही कर्मफलका भोग करनेवाले समस्त प्राणियोंके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परिणामोंसे युक्त समस्त कर्मोंमें विष्णु, सूर्य और अग्निरूपसे स्थित हैं। यह प्राणी ईश्वरकी प्रेरणासे ही शुभाशुभ कर्मानुसार स्वर्ग अथवा नरकको प्राप्त होता है। श्रीहरि द्वारा महत्तत्त्व आदि रूपसे निर्मित यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वरका आवासस्थान है। वे सर्वसमर्थ हंसस्वरूप परम पुरुष स्वर्गादि लोकोंसे क्रीड़ा करते हैं, इसलिये वे 'देव'* कहलाते हैं। आदित्यमें जो 'भर्ग' नामसे प्रसिद्ध दिव्य तेज है, वह उन्हींका स्वरूप है। मोक्ष चाहनेवाले पुरुषोंको जन्म-मरणके कष्टसे और दैहिक, दैविक तथा भौतिक त्रिविध दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये ध्यानस्थ होकर इन परमपुरुषका सूर्यमण्डलमें दर्शन करना चाहिये। वे ही 'तत्त्वमसि' आदि औपनिषद महावाक्योंद्वारा प्रतिपादित सच्चित्स्वरूप परब्रह्म हैं। सम्पूर्ण लोकोंका निर्माण करनेवाले सविता देवताका जो सबके लिये वरणीय भर्ग है, वह विष्णुका परमपद है और वही गायत्रीका ब्रह्मरूप 'चतुर्थ पाद' है। 'धीमहि' पदसे यह अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये कि देहादिकी जाग्रत्-अवस्थामें सामान्य जीवसे लेकर ब्रह्मपर्यन्त मैं ही ब्रह्म हूँ और आदित्यमण्डलमें जो पुरुष है, वह भी मैं ही हूँ—मैं अनन्त सर्वतः परिपूर्ण ओम् (सच्चिदानन्द) हूँ। 'प्रचोदयात्' पदके कर्तारूपसे उन परमेश्वरको ग्रहण करना चाहिये, जो सदा यज्ञ आदि शुभ कर्मोंके प्रवर्तक हैं॥ ७—१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गायत्री-मन्त्रके तात्पर्यका वर्णन' नामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१६॥

* 'देव' शब्द क्रीडार्थक 'दिवु' धातुसे बनता है।

दो सौ सत्रहवाँ अध्याय

गायत्रीसे निर्वाणकी प्राप्ति

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! किसी अन्य वसिष्ठने गायत्री-जपपूर्वक लिङ्गमूर्ति शिवकी स्तुति करके भगवान् शंकरसे निर्वाणस्वरूप परब्रह्मकी प्राप्ति की॥ १॥

(वसिष्ठने कहा —) कनकलिङ्गको नमस्कार, वेदलिङ्गको नमस्कार, परमलिङ्गको नमस्कार और आकाशलिङ्गको नमस्कार है। मैं सहस्रलिङ्ग, वह्निलिङ्ग, पुराणलिङ्ग और वेदलिङ्ग शिवको बारंबार नमस्कार करता हूँ। पाताललिङ्ग, ब्रह्मलिङ्ग, सप्तद्वीपोर्ध्वलिङ्गको बारंबार नमस्कार है। मैं सर्वात्मलिङ्ग, सर्वलोकाङ्गलिङ्ग, अव्यक्तलिङ्ग, बुद्धिलिङ्ग, अहंकारलिङ्ग, भूतलिङ्ग, इन्द्रियलिङ्ग, तन्मात्रलिङ्ग, पुरुषलिङ्ग, भावलिङ्ग, रजोर्ध्वलिङ्ग, सत्त्वलिङ्ग, भवलिङ्ग, त्रैगुण्यलिङ्ग, अनागतलिङ्ग, तेजोलिङ्ग, वायूर्ध्वलिङ्ग, श्रुतिलिङ्ग, अथर्वलिङ्ग, समलिङ्ग, यज्ञाङ्गलिङ्ग, यज्ञलिङ्ग, तत्त्वलिङ्ग और देवानुगतलिङ्गरूप आप शंकरको बारंबार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझे परमयोगका उपदेश कीजिये और मेरे समान पुत्र प्रदान कीजिये। भगवन्! मुझे अविनाशी परब्रह्म एवं परमशान्तिकी प्राप्ति कराइये। मेरा वंश कभी क्षीण न हो और मेरी बुद्धि सदा धर्ममें लगी रहे॥ २—१२॥

अग्निदेव कहते हैं— प्राचीनकालमें श्रीशैलपर वसिष्ठके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये और वसिष्ठको वर देकर वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गायत्री-निर्वाणका कथन' नामक दो सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१७॥

दो सौ अठारहवाँ अध्याय

राजाके अभिषेककी विधि

अग्निदेव कहते हैं— वसिष्ठ! पूर्वकालमें परशुरामजीके पूछनेपर पुष्करने उनसे जिस प्रकार राजधर्मका वर्णन किया था, वही मैं तुमसे बतला रहा हूँ॥ १॥

पुष्करने कहा— राम! मैं सम्पूर्ण राजधर्मोंसे संगृहीत करके राजाके धर्मका वर्णन करूँगा। राजाको प्रजाका रक्षक, शत्रुओंका नाशक और दण्डका उचित उपयोग करनेवाला होना चाहिये। वह प्रजाजनोंसे कहे कि 'धर्म-मार्गपर स्थित रहनेवाले आप सब लोगोंकी मैं रक्षा करूँगा' और अपनी इस प्रतिज्ञाका सदा पालन करे। राजाको वर्षफल बतानेवाले एक ज्यौतिषी तथा ब्राह्मण पुरोहितका वरण कर लेना चाहिये। साथ ही सम्पूर्ण राजशास्त्रीय विषयों तथा आत्माका ज्ञान रखनेवाले मन्त्रियोंका और धार्मिक लक्षणोंसे सम्पन्न राजमहिषीका भी वरण करना उचित है। राज्यभार ग्रहण करनेके एक वर्ष बाद राजाको सब सामग्री एकत्रित करके अच्छे समयमें विशेष समारोहके साथ अपना अभिषेक कराना चाहिये। पहलेवाले राजाकी मृत्यु होनेपर शीघ्र ही राजासन ग्रहण करना उचित है; ऐसे समयमें कालका कोई नियम नहीं है। ज्यौतिषी और पुरोहितके द्वारा तिल, सर्षप आदि सामग्रियोंका उपयोग करते हुए राजा स्नान करे तथा भद्रासनपर विराजमान होकर समूचे राज्यमें राजाकी विजय घोषित करे। फिर अभयकी घोषणा कराकर राज्यके समस्त कैदियोंको

बन्धनसे मुक्त कर दे। पुरोहितके द्वारा अभिषेक होनेसे पहले इन्द्र देवताकी शान्ति करानी चाहिये। अभिषेकके दिन राजा उपवास करके वेदीपर स्थापित की हुई अग्निमें मन्त्रपाठपूर्वक हवन करे। विष्णु, इन्द्र, सविता, विश्वेदेव और सोम-देवतासम्बन्धी वैदिक ऋचाओंका तथा स्वस्त्ययन, शान्ति, आयुष्य तथा अभय देनवाले मन्त्रोंका पाठ करे॥ २—८॥

तत्पश्चात् अग्निके दक्षिण किनारे अपराजिता देवी तथा सुवर्णमय कलशकी, जिसमें जल गिरानेके लिये अनेकों छिद्र बने हुए हों, स्थापना करके चन्दन और फूलोंके द्वारा उनका पूजन करे। यदि अग्निकी शिखा दक्षिणावर्त हो, तपाये हुए सोनेके समान उसकी उत्तम कान्ति हो, रथ और मेघके समान उससे ध्वनि निकलती हो, धुआँ बिलकुल नहीं दिखायी देता हो, अग्निदेव अनुकूल होकर हविष्य ग्रहण करते हों, होमाग्निसे उत्तम गन्ध फैल रही हो, अग्निसे स्वस्तिकके आकारकी लपटें निकलती हों, उसकी शिखा स्वच्छ हो और ऊँचेतक उठती हो तथा उसके भीतरसे चिनगारियाँ नहीं छूटती हों तो ऐसी अग्नि-ज्वाला श्रेष्ठ एवं हितकर मानी गयी है॥ ९—११॥

राजा और आगके मध्यसे बिल्ली, मृग तथा पक्षी नहीं जाने चाहिये। राजा पहले पर्वतशिखरकी मृत्तिकासे अपने मस्तककी शुद्धि करे। फिर बाँबीकी मिट्टीसे दोनों कान, भगवान् विष्णुके मन्दिरकी धूलिसे मुख, इन्द्रके मन्दिरकी मिट्टीसे ग्रीवा, राजाके आँगनकी मृत्तिकासे हृदय, हाथीके दाँतोंद्वारा खोदी हुई मिट्टीसे दाहिनी बाँह, बैलके सींगसे उठायी हुई मृत्तिकाद्वारा बायीं भुजा, पोखरेकी मिट्टीसे पीठ, दो नदियोंके संगमकी मृत्तिकासे पेट तथा नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टीसे अपनी दोनों पसलियोंका शोधन करे। वेश्याके दरवाजेकी मिट्टीसे राजाके कटिभागकी शुद्धि की जाती है, यज्ञशालाकी मृत्तिकासे वह दोनों ऊरु, गोशालाकी मिट्टीसे दोनों घुटनों, घुड़सारकी मिट्टीसे दोनों जाँघ तथा रथके पहियेकी मृत्तिकासे दोनों चरणोंकी शुद्धि करे। इसके बाद पञ्चगव्यके द्वारा राजाके मस्तककी शुद्धि करनी चाहिये। तदनन्तर चार अमात्य भद्रासनपर बैठे हुए राजाका कलशोंद्वारा अभिषेक करें। ब्राह्मणजातीय सचिव पूर्व दिशाकी ओरसे घृतपूर्ण सुवर्णकलशद्वारा अभिषेक आरम्भ करे। क्षत्रिय दक्षिणकी ओर खड़ा होकर दूधसे भरे हुए चाँदीके कलशसे, वैश्य पश्चिम दिशामें स्थित हो ताम्र कलश एवं दहीसे तथा शूद्र उत्तरकी ओरसे मिट्टीके घड़ेके जलसे राजाका अभिषेक करे॥ १२—१९॥

तदनन्तर बह्वृचों (ऋग्वेदी विद्वानों)-में श्रेष्ठ ब्राह्मण मधुसे और 'छन्दोग' अर्थात् सामवेदी विप्र कुशके जलसे नरपतिका अभिषेक करे। इसके बाद पुरोहित जल गिरानेके अनेकों छिद्रोंसे युक्त (सुवर्णमय) कलशके पास जा, सदस्योंके बीच विधिवत् अग्निरक्षाका कार्य सम्पादन करके, राज्याभिषेकके लिये जो मन्त्र बताये गये हैं, उनके द्वारा अभिषेक करे। उस समय ब्राह्मणोंको वेद-मन्त्रोच्चारण करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् पुरोहित वेदीके निकट जाय और सुवर्णके बने हुए सौ छिद्रोंवाले कलशसे अभिषेक आरम्भ करे। '**या ओषधीः०**'— इत्यादि मन्त्रसे ओषधियोंद्वारा, '**अश्वेत्युक्त्वाः०**'— इत्यादि मन्त्रोंसे गन्धोंद्वारा, '**पुष्पवतीः०**'— आदि मन्त्रसे फूलोंद्वारा, '**ब्राह्मणः०**'— इत्यादि मन्त्रसे बीजोंद्वारा, '**आशुः शिशानः०**' आदि मन्त्रसे रत्नोंद्वारा तथा '**ये देवाः०**'— इत्यादि मन्त्रसे कुशयुक्त जलोंद्वारा अभिषेक करे। यजुर्वेदी और अथर्ववेदी ब्राह्मण '**गन्धद्वारां दुराधर्षां**'— इत्यादि मन्त्रसे गोरोचनद्वारा मस्तक तथा कण्ठमें तिलक करे। इसके बाद अन्यान्य ब्राह्मण सब तीर्थोंके जलसे अभिषेक

करें॥ २०—२६॥

उस समय कुछ लोग गीत और बाजे आदिके शब्दोंके साथ चँवर और व्यजन धारण करें। राजाके सामने सर्वौषधियुक्त कलश लेकर खड़े हों। राजा पहले उस कलशको देखें, फिर दर्पण तथा घृत आदि माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन करें। इसके बाद विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओं तथा ग्रहपतियोंका पूजन करके राजा व्याघ्रचर्मयुक्त आसनपर बैठे। उस समय पुरोहित मधुपर्क आदि देकर राजाके मस्तकपर मुकुट बाँधे। पाँच प्रकारके चमड़ोंके आसनपर बैठकर राजाको मुकुट बँधाना चाहिये। '**ध्रुवाद्यौः०**'—इत्यादि मन्त्रके द्वारा उन आसनोंपर बैठे। वृष, वृषभांश, वृक, व्याघ्र और सिंह—इन्हीं पाँचोंके चर्मका उस समय आसनके लिये उपयोग किया जाता है। अभिषेकके बाद प्रतीहार अमात्य और सचिव आदिको दिखाये—प्रजाजनोंसे उनका परिचय दे। तदनन्तर राजा गौ, बकरी, भेड़ तथा गृह आदि दान करके सांवत्सर (ज्यौतिषी) और पुरोहितका पूजन करे। फिर पृथ्वी, गौ तथा अन्न आदि देकर अन्यान्य ब्राह्मणोंकी भी पूजा करे। तत्पश्चात् अग्निकी प्रदक्षिणा करके गुरु (पुरोहित)-को प्रणाम करे। फिर बैलकी पीठका स्पर्श करके, गौ और बछड़ेकी पूजाके अनन्तर अभिमन्त्रित अश्वपर आरूढ़ होवे। उससे उतरकर हाथीकी पूजा करके, उसके ऊपर सवार हो और सेना साथ लेकर प्रदक्षिण-क्रमसे सड़कपर कुछ दूरतक यात्रा करे। इसके बाद दान आदिके द्वारा सबको सम्मानित करके विदा कर दे और स्वयं राजधानीमें प्रवेश करे॥ २७—३५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'राज्याभिषेकका कथन' नामक दो सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१८॥

दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय

राजाके अभिषेकके समय पढ़नेयोग्य मन्त्र

पुष्करने कहा—अब मैं राजा और देवता आदिके अभिषेक-सम्बन्धी मन्त्रोंका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाले हैं। कलशसे कुशयुक्त जलद्वारा राजाका अभिषेक करे; इससे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है॥ १॥

(उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये—) "राजन्! ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सम्पूर्ण देवता तुम्हारा अभिषेक करें। भगवान् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, इन्द्र आदि दस दिक्पाल, रुद्र, धर्म, मनु, दक्ष, रुचि तथा श्रद्धा—ये सभी सदा तुम्हें विजय प्रदान करनेवाले हों। भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि और कश्यप आदि ऋषि-महर्षि प्रजाका शासन करनेवाले भूपतिकी रक्षा करें। अपनी प्रभासे प्रकाशित होनेवाले 'बर्हिषद्' और 'अग्निष्वात्त' नामवाले पितर तुम्हारा पालन करें। क्रव्याद (राक्षस), आवाहन किये हुए आज्यपा (घृतपान करनेवाले देवता और पितर), सुकाली (सुकाल लानेवाले देवता) तथा धर्मप्रिया लक्ष्मी आदि देवियाँ प्रवृद्ध अग्नियोंके साथ तुम्हारा अभिषेक करें। अनेकों पुत्रोंवाले प्रजापति, कश्यपके आदित्य आदि प्रिय पुत्रगण, अग्निनन्दन कृशाश्व तथा अरिष्टनेमिकी पत्नियाँ भी तुम्हारा अभिषेक करें। चन्द्रमाकी अश्विनी आदि भार्याएँ, पुलहकी प्रिय पत्नियाँ और भूता, कपिशा, दंष्ट्री, सुरसा, सरमा, दनु, श्येनी, भाषी, क्रौञ्ची, धृतराष्ट्री तथा शुकी आदि देवियाँ एवं सूर्यके सारथि अरुण—ये सब

तुम्हारे अभिषेकका कार्य सम्पन्न करें। आयति, नियति, रात्रि, निद्रा, लोकरक्षामें तत्पर रहनेवाली उमा, मेना और शची आदि देवियाँ, धूमा, ऊर्णा, नैर्ऋती, जया, गौरी, शिवा, ऋद्धि, वेला, नड्वला, असिक्नी, ज्योत्स्ना, देवाङ्गनाएँ तथा वनस्पति—ये सब तुम्हारा पालन करें॥ २—११॥

"महाकल्प, कल्प, मन्वन्तर, युग, संवत्सर, वर्ष, दोनों अयन, ऋतु, मास, पक्ष, रात-दिन, संध्या, तिथि, मुहूर्त तथा कालके विभिन्न अवयव (छोटे-छोटे भेद) तुम्हारी रक्षा करें। सूर्य आदि ग्रह और स्वायम्भुव आदि मनु तुम्हारी रक्षा करें। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, ब्रह्मपुत्र, धर्मपुत्र, रुद्रपुत्र, दक्षपुत्र, रौच्य तथा भौत्य—ये चौदह मनु तुम्हारे रक्षक हों। विश्वभुक्, विपश्चित्, शिखी, विभु, मनोजव, ओजस्वी, बलि, अद्भुत शान्तियाँ, वृष, ऋतधामा, दिवःस्पृक्, कवि, इन्द्र, रैवन्त, कुमार कार्तिकेय, वत्सविनायक, वीरभद्र, नन्दी, विश्वकर्मा, पुरोजव, देववैद्य अश्विनीकुमार तथा ध्रुव आदि आठ वसु—ये सभी प्रधान देवता यहाँ पदार्पण करके तुम्हारे अभिषेकका कार्य सम्पन्न करें। अङ्गिराके कुलमें उत्पन्न दस देवता और चारों वेद सिद्धिके लिये तुम्हारा अभिषेक करें। आत्मा, आयु, मन, दक्ष, मद, प्राण, हविष्मान्, गरिष्ठ, ऋत और सत्य—ये तुम्हारी रक्षा करें तथा क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम और धुरि—ये तुम्हें विजय प्रदान करें। पुरूरवा, आर्द्रवा, विश्वेदेव, रोचन, अङ्गारक (मङ्गल) आदि ग्रह, सूर्य, निर्ऋति तथा यम—ये सब तुम्हारी रक्षा करें। अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, धूमकेतु, रुद्रके पुत्र, भरत, मृत्यु, कापालि, किंकणि, भवन, भावन, स्वजन्य, स्वजन, क्रतुश्रवा, मूर्धा, याजन और उशना—ये तुम्हारी रक्षा करें। प्रसव, अव्यय, दक्ष, भृगुवंशी ऋषि, देवता, मनु, अनुमन्ता, प्राण, नव, बलवान् अपान वायु, वीतिहोत्र, नय, साध्य, हंस, विभु, प्रभु और नारायण—संसारके हितमें लगे रहनेवाले ये श्रेष्ठ देवता तुम्हारा पालन करें। धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता, भास्कर और विष्णु—ये बारह सूर्य तुम्हारी रक्षा करें। एकज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति, चतुर्ज्योति, एकशक्र, द्विशक्र, महाबली त्रिशक्र, इन्द्र, पतिकृत्, मित, सम्मित, महाबली अमित, ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, अतिमित्र, अनुमित्र, पुरुमित्र, अपराजित, ऋत, ऋतवाक्, धाता, विधाता, धारण, ध्रुव, इन्द्रके परम मित्र महातेजस्वी विधारण, इदृक्ष, अदृक्ष, एतादृक्, अमिताशन, क्रीडित, सदृक्ष, सरभ, महातपा, धर्ता, धुर्य्य, धुरि, भीम, अभिमुक्त, अक्षपात, सह, धृति, वसु, अनाधृष्य, राम, काम, जय और विराट्—ये उन्चास मरुत् नामक देवता तुम्हारा अभिषेक करें तथा तुम्हें लक्ष्मी प्रदान करें। चित्राङ्गद, चित्ररथ, चित्रसेन, कलि, ऊर्णायु, उग्रसेन, धृतराष्ट्र, नन्दक, हाहा, हूहू, नारद, विश्वावसु और तुम्बुरु—ये गन्धर्व तुम्हारे अभिषेकका कार्य सम्पन्न करें और तुम्हें विजयी बनावें। प्रधान-प्रधान मुनि तथा अनवद्या, सुकेशी, मेनका, सहजन्या, क्रतुस्थला, घृताची, विश्वाची, पुञ्जिकस्थला, प्रम्लोचा, उर्वशी, रम्भा, पञ्चचूड़ा, तिलोत्तमा, चित्रलेखा, लक्ष्मणा, पुण्डरीका और वारुणी—ये दिव्य अप्सराएँ तुम्हारी रक्षा करें॥ १२—३८॥

"प्रह्लाद, विरोचन, बलि, बाण और उसका पुत्र—ये तथा दूसरे-दूसरे दानव और राक्षस तुम्हारे अभिषेकका कार्य सिद्ध करें। हेति, प्रहेति, विद्युत्, स्फूर्जथु, अग्रक, यक्ष, सिद्ध, मणिभद्र और नन्दन—ये सब तुम्हारी रक्षा करें। पिङ्गाक्ष, द्युतिमान्, पुष्पवन्त, जयावह, शङ्ख, पद्म, मकर और कच्छप—ये निधियाँ तुम्हें विजय प्रदान

करें। ऊर्ध्वकेश आदि पिशाच, भूमि आदिके निवासी भूत और माताएँ, महाकाल एवं नृसिंहको आगे करके तुम्हारा पालन करें। गुह, स्कन्द, विशाख, नैगमेय—ये तुम्हारा अभिषेक करें। भूतल एवं आकाशमें विचरनेवाली डाकिनी तथा योगिनियाँ, गरुड, अरुण तथा सम्पाति आदि पक्षी तुम्हारा पालन करें। अनन्त आदि बड़े-बड़े नाग, शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, शङ्ख, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, धनंजय, कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक तथा अञ्जन नामक नाग सदा और सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें। ब्रह्माजीका वाहन हंस, भगवान् शंकरका वृषभ, भगवती दुर्गाका सिंह और यमराजका भैंसा—ये सभी वाहन तुम्हारा पालन करें। अश्वराज उच्चैःश्रवा, धन्वन्तरि वैद्य, कौस्तुभ-मणि, शङ्खराज पाञ्चजन्य, वज्र, शूल, चक्र और नन्दक खड्ग आदि अस्त्र तुम्हारी रक्षा करें। दृढ़ निश्चय रखनेवाले धर्म, चित्रगुप्त, दण्ड, पिङ्गल, मृत्यु, काल, वालखिल्य आदि मुनि, व्यास और वाल्मीकि आदि महर्षि, पृथु, दिलीप, भरत, दुष्यन्त, अत्यन्त बलवान् शत्रुजित्, मनु, ककुत्स्थ, अनेना, युवनाश्व, जयद्रथ, मान्धाता, मुचुकुन्द और पृथ्वीपति पुरूरवा—ये सब राजा तुम्हारे रक्षक हों। वास्तुदेवता और पच्चीस तत्त्व तुम्हारी विजयके साधक हों। रुक्मभौम, शिलाभौम, पाताल, नीलमूर्ति, पीतरक्त, क्षिति, श्वेतभौम, रसातल, भूर्लोक, भुवर् आदि लोक तथा जम्बू-द्वीप आदि द्वीप तुम्हें राज्यलक्ष्मी प्रदान करें। उत्तरकुरु, रम्य, हिरण्यक, भद्राश्व, केतुमाल, बलाहक, हरिवर्ष, किंपुरुष, इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यक, गान्धर्व, वारुण और नवम आदि वर्ष तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हें राज्य प्रदान करनेवाले हों। हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान्, मेरु, माल्यवान्, गन्धमादन, महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान् गिरि, विन्ध्य और पारियात्र—ये सभी पर्वत तुम्हें शान्ति प्रदान करें। ऋक् आदि चारों वेद, छहों अङ्ग, इतिहास, पुराण, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद और धनुर्वेद आदि उपवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष, छन्द—ये छः अङ्ग, चार वेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण—ये चौदह विद्याएँ तुम्हारी रक्षा करें॥ ३९—६०॥

"सांख्य, योग, पाशुपत, वेद, पाञ्चरात्र—ये 'सिद्धान्तपञ्चक' कहलाते हैं। इन पाँचोंके अतिरिक्त गायत्री, शिवा, दुर्गा, विद्या तथा गान्धारी नामवाली देवियाँ तुम्हारी रक्षा करें और लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध तथा जलसे भरे हुए समुद्र तुम्हें शान्ति प्रदान करें। चारों समुद्र और नाना प्रकारके तीर्थ तुम्हारी रक्षा करें। पुष्कर, प्रयाग, प्रभास, नैमिषारण्य, गयाशीर्ष, ब्रह्मशिरतीर्थ, उत्तरमानस, कालोदक, नन्दिकुण्ड, पञ्चनदतीर्थ, भृगुतीर्थ, अमरकण्टक, जम्बूमार्ग, विमल, कपिलाश्रम, गङ्गाद्वार, कुशावर्त, विन्ध्य, नीलगिरि, वराह पर्वत, कनखल तीर्थ, कालञ्जर, केदार, रुद्रकोटि, महातीर्थ वाराणसी, बदरिकाश्रम, द्वारका, श्रीशैल, पुरुषोत्तमतीर्थ, शालग्राम, वाराह, सिंधु और समुद्रके संगमका तीर्थ, फल्गुतीर्थ, विन्दुसर, करवीराश्रम, गङ्गानदी, सरस्वती, शतद्रु, गण्डकी, अच्छोदा, विपाशा, वितस्ता, देविका नदी, कावेरी, वरुणा, निश्चिरा, गोमती नदी, पारा, चर्मण्वती, रूपा, महानदी, मन्दाकिनी, तापी, पयोष्णी, वेणा, वैतरणी, गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, अरणी, चन्द्रभागा, शिवा तथा गौरी आदि पवित्र नदियाँ तुम्हारा अभिषेक और पालन करें"॥ ६१—७२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अभिषेक-सम्बन्धी मन्त्रोंका वर्णन' नामक दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१९॥

दो सौ बीसवाँ अध्याय

राजाके द्वारा अपने सहायकोंकी नियुक्ति और उनसे काम लेनेका ढंग

पुष्कर कहते हैं— अभिषेक हो जानेपर उत्तम राजाके लिये यह उचित है कि वह मन्त्रीको साथ लेकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त करे। उसे ब्राह्मण या क्षत्रियको, जो कुलीन और नीतिशास्त्रका ज्ञाता हो, अपना सेनापति बनाना चाहिये। द्वारपाल भी नीतिज्ञ होना चाहिये। इसी प्रकार दूतको भी मृदुभाषी, अत्यन्त बलवान् और सामर्थ्यवान् होना उचित है॥ १-२॥

राजाको पान देनेवाला सेवक, स्त्री या पुरुष कोई भी हो सकता है। इतना अवश्य है कि उसे राजभक्त, क्लेश-सहिष्णु और स्वामीका प्रिय होना चाहिये। सांधिविग्रहिक (परराष्ट्रसचिव*) उसे बनाना चाहिये, जो संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—इन छहों गुणोंका समय और अवसरके अनुसार उपयोग करनेमें निपुण हो। राजाकी रक्षा करनेवाला प्रहरी हमेशा हाथमें तलवार लिये रहे। सारथि सेना आदिके विषयमें पूरी जानकारी रखे। रसोइयोंके अध्यक्षको राजाका हितैषी और चतुर होनेके साथ ही सदा रसोईघरमें उपस्थित रहना चाहिये। राजसभाके सदस्य धर्मके ज्ञाता हों। लिखनेका काम करनेवाला पुरुष कई प्रकारके अक्षरोंका ज्ञाता तथा हितैषी हो। द्वार-रक्षामें नियुक्त पुरुष ऐसे होने चाहिये, जो स्वामीके हितमें संलग्न हों और इस बातकी अच्छी तरह जानकारी रखें कि महाराज कब-कब उन्हें अपने पास बुलाते हैं। धनाध्यक्ष ऐसा मनुष्य हो, जो रत्न आदिकी परख कर सके और धन बढ़ानेके साधनोंमें तत्पर रहे। राजवैद्यको आयुर्वेदका पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। इसी प्रकार गजाध्यक्षको भी गजविद्यासे परिचित होना आवश्यक है। हाथी-सवार परिश्रमसे थकनेवाला न हो। घोड़ोंका अध्यक्ष अश्वविद्याका विद्वान् होना चाहिये। दुर्गके अध्यक्षको भी हितैषी एवं बुद्धिमान् होना आवश्यक है। शिल्पी अथवा कारीगर वास्तुविद्याका ज्ञाता हो। जो मशीनसे हथियार चलाने, हाथसे शस्त्रोंका प्रयोग करने, शस्त्रको न छोड़ने, छोड़े हुए शस्त्रको रोकने या निवारण करनेमें तथा युद्धकी कलामें कुशल और राजाका हित चाहनेवाला हो, उसे ही अस्त्राचार्यके पदपर नियुक्त करना चाहिये। रनिवासका अध्यक्ष वृद्ध पुरुषको बनाना चाहिये। पचास वर्षकी स्त्रियाँ और सत्तर वर्षके बूढ़े पुरुष अन्तःपुरके सभी कार्योंमें लगाये जा सकते हैं। शस्त्रागारमें ऐसे पुरुषको रखना चाहिये, जो सदा सजग रहकर पहरा देता रहे। भृत्योंके कार्योंको समझकर उनके लिये तदनुकूल जीविकाका प्रबन्ध करना उचित है। राजाको चाहिये कि वह उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कार्योंका विचार करके उनमें ऐसे ही पुरुषोंको नियुक्त करे। पृथ्वीपर विजय चाहनेवाला भूपाल हितैषी सहायकोंका संग्रह करे। धर्मके कार्योंमें धर्मात्मा पुरुषोंको, युद्धमें शूरवीरोंको और धनोपार्जनके कार्योंमें अर्थकुशल व्यक्तियोंको लगावे। इस बातका ध्यान रखे कि सभी कार्योंमें नियुक्त हुए पुरुष शुद्ध आचार-विचार रखनेवाले हों॥ ३—१२॥

स्त्रियोंकी देख-भालमें नपुंसकोंको नियुक्त करे। कठोर कर्मोंमें तीखे स्वभाववाले पुरुषोंको लगावे। तात्पर्य यह कि राजा धर्म-अर्थ अथवा कामके साधनमें जिस पुरुषको जहाँके लिये शुद्ध एवं उपयोगी समझे, उसकी वहीं नियुक्ति करे।

---

* वह मन्त्री, जिसको दूसरे देशके राजाओंसे सुलहकी बातचीत करने या युद्ध छेड़नेका अधिकार दिया गया हो।

निकृष्ट श्रेणीके कार्योंमें वैसे ही पुरुषोंको लगावे। राजाके लिये उचित है कि वह तरह-तरहके उपायोंसे मनुष्योंकी परीक्षा करके उन्हें यथायोग्य कार्योंमें नियोजित करे। मन्त्रीसे सलाह ले, कुछ व्यक्तियोंको यथोचित वृत्ति देकर हाथियोंके जंगलमें तैनात करे तथा उनका पता लगाते रहनेके लिये कई उत्साही अध्यक्षोंको नियुक्त करे। जिसको जिस काममें निपुण देखे, उसको उसीमें लगावे और बाप-दादोंके समयसे चले आते हुए भृत्योंको सभी तरहके कार्योंमें नियुक्त करे। केवल उत्तराधिकारीके कार्योंमें उनकी नियुक्ति नहीं करे; क्योंकि वहाँ वे सब-के-सब एक समान हैं। जो लोग दूसरे राजाके आश्रयसे हटकर अपने पास शरण लेनेकी इच्छासे आवें, वे दुष्ट हों या साधु, उन्हें यत्नपूर्वक आश्रय दे। दुष्ट साबित होनेपर उनका विश्वास न करे और उनकी जीविकावृत्तिको अपने ही अधीन रखे। जो लोग दूसरे देशोंसे अपने पास आये हों, उनके विषयमें गुप्तचरोंद्वारा सभी बातें जानकर उनका यथावत् सत्कार करे। शत्रु, अग्नि, विष, साँप और तलवार एक ओर तथा दुष्ट स्वभाववाले भृत्य दूसरी ओर, इनमें दुष्ट भृत्योंको ही अधिक भयंकर समझना चाहिये। राजाको चारचक्षु होना उचित है। अर्थात् उसे गुप्तचरोंद्वारा सभी बातें देखनी—उनकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। इसलिये वह हमेशा सबकी देख-भालके लिये गुप्तचर तैनात किये रहे। गुप्तचर ऐसे हों, जिन्हें दूसरे लोग पहचानते न हों, जिनका स्वभाव शान्त एवं कोमल हो तथा जो परस्पर एक-दूसरेसे भी अपरिचित हों। उनमें कोई वैश्यके रूपमें हो, कोई मन्त्र-तन्त्रमें कुशल, कोई ज्यौतिषी, कोई वैद्य, कोई संन्यास-वेषधारी और कोई बलाबलका विचार करनेवाले व्यक्तिके रूपमें हो। राजाको चाहिये कि किसी एक गुप्तचरकी बातपर विश्वास न करे। जब बहुतोंके मुखसे एक तरहकी बात सुने, तभी उसे विश्वसनीय समझे। भृत्योंके हृदयमें राजाके प्रति अनुराग है या विरक्ति, किस मनुष्यमें कौन-से गुण तथा अवगुण हैं, कौन शुभचिन्तक हैं और कौन अशुभ चाहनेवाले—अपने भृत्यवर्गको वशमें रखनेके लिये राजाको ये सभी बातें जाननी चाहिये। वह ऐसा कर्म करे, जो प्रजाका अनुराग बढ़ानेवाला हो। जिससे लोगोंके मनमें विरक्ति हो, ऐसा कोई काम न करे। प्रजाका अनुराग बढ़ानेवाली लक्ष्मीसे युक्त राजा ही वास्तवमें राजा है। वह सब लोगोंका रञ्जन करने—उनकी प्रसन्नता बढ़ानेके कारण ही 'राजा' कहलाता है॥ १३—२४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'राजाकी सहायसम्पत्तिका वर्णन' नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२०॥

दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय

अनुजीवियोंका राजाके प्रति कर्तव्यका वर्णन

पुष्कर कहते हैं— भृत्यको राजाकी आज्ञाका उसी प्रकार पालन करना चाहिये, जैसे शिष्य गुरुकी और साध्वी स्त्रियाँ अपने पतिकी आज्ञाका पालन करती हैं। राजाकी बातपर कभी आक्षेप न करे, सदा ही उसके अनुकूल और प्रिय वचन बोले। यदि कोई हितकी बात बतानी हो और वह सुननेमें अप्रिय हो तो उसे एकान्तमें राजासे कहना चाहिये। किसी आयके काममें नियुक्त होनेपर राजकीय धनका अपहरण न करे; राजाके सम्मानकी उपेक्षा न करे। उसकी वेश-भूषा और बोल-चालकी नकल करना उचित नहीं है। अन्तःपुरके सेवकोंके अध्यक्षका कर्त्तव्य है कि

वह ऐसे पुरुषोंके साथ न बैठे, जिनका राजाके साथ वैर हो तथा जो राजदरबारसे अपमानपूर्वक निकाले गये हों। भृत्यको राजाकी गुप्त बातोंको दूसरोंपर प्रकट नहीं करना चाहिये। अपनी कोई कुशलता दिखाकर राजाको विशेष सम्मानित एवं प्रसन्न करना चाहिये। यदि राजा कोई गुप्त बात सुनावें तो उसे लोगोंमें प्रकाशित न करे। यदि वे दूसरेको किसी कामके लिये आज्ञा दे रहे हों तो स्वयं ही उठकर कहे—'महाराज! मुझे आदेश दिया जाय, कौन-सा काम करना है, मैं उसे करूँगा।' राजाके दिये हुए वस्त्र-आभूषण तथा रत्न आदिको सदा धारण किये रहे। बिना आज्ञाके दरवाजेपर अथवा और किसी अयोग्य स्थानपर, जहाँ राजाकी दृष्टि पड़ती हो, न बैठे। जँभाई लेना, थूकना, खाँसना, क्रोध प्रकट करना, खाटपर बैठना, भौंहें टेढ़ी करना, अधोवायु छोड़ना तथा डकार लेना आदि कार्य राजाके निकट रहनेपर न करे। उनके सामने अपना गुण प्रकट करनेके लिये दूसरोंको ही युक्तिपूर्वक नियुक्त करे। शठता, लोलुपता, चुगली, नास्तिकता, नीचता तथा चपलता—इन दोषोंका राजसेवकोंको सदा त्याग करना चाहिये। पहले स्वयं प्रयत्न करके अपनेमें वेदविद्या एवं शिल्पकलाकी योग्यताका सम्पादन करे। उसके बाद अपना धन बढ़ानेकी चेष्टा करनेवाले पुरुषको अभ्युदयके लिये राजाकी सेवामें प्रवृत्त होना चाहिये। उनके प्रिय पुत्र एवं मन्त्रियोंको सदा नमस्कार करना उचित है। केवल मन्त्रियोंके साथ रहनेसे राजाका अपने ऊपर विश्वास नहीं होता; अतः उनके हार्दिक अभिप्रायके अनुकूल सदा प्रिय कार्य करे। राजाके स्वभावको समझनेवाले पुरुषके लिये उचित है कि वह विरक्त राजाको त्याग दे और अनुरक्त राजासे ही आजीविका प्राप्त करनेकी चेष्टा करे। बिना पूछे राजाके सामने कोई बात न कहे; किंतु आपत्तिके समय ऐसा करनेमें कोई हर्ज नहीं है। राजा प्रसन्न हो तो वह सेवकके विनययुक्त वचनको मानता है, उसकी प्रार्थनाको स्वीकार करता है। प्रेमी सेवकको किसी रहस्य-स्थान (अन्तःपुर) आदिमें देख ले तो भी उसपर शङ्का-संदेह नहीं करता है। वह दरबारमें आये तो राजा उसकी कुशल पूछता है, उसे बैठनेके लिये आसन देता है। उसकी चर्चा सुनकर वह प्रसन्न होता है। वह कोई अप्रिय बात भी कह दे तो वह बुरा नहीं मानता, उलटे प्रसन्न होता है। उसकी दी हुई छोटी-मोटी वस्तु भी राजा बड़े आदरसे ले लेता है और बातचीतमें उसे याद रखता है। उक्त लक्षणोंसे राजा अनुरक्त है या विरक्त यह जानकर अनुरक्त राजाकी सेवा करे। इसके विपरीत जो विरक्त है, उसका साथ छोड़ दे॥ १—१४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अनुजीविवृत्त-कथन' नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२१॥

दो सौ बाईसवाँ अध्याय

राजाके दुर्ग, कर्तव्य तथा साध्वी स्त्रीके धर्मका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—अब मैं दुर्ग बनानेके विषयमें कहूँगा। राजाको दुर्गदेश (दुर्गम प्रदेश अथवा सुदृढ़ एवं विशाल किले)-में निवास करना चाहिये। साथ रहनेवाले मनुष्योंमें वैश्यों और शूद्रोंकी संख्या अधिक होनी चाहिये। दुर्ग ऐसे स्थानमें रहे, जहाँ शत्रुओंका जोर न चल सके। दुर्गमें थोड़े-से ब्राह्मणोंका भी रहना आवश्यक है। राजाके रहनेके लिये वही देश श्रेष्ठ माना गया

है, जहाँ बहुत-से काम करनेवाले लोग (किसान-मजदूर) रहते हों, जहाँ पानीके लिये वर्षाकी राह नहीं देखनी पड़ती हो, नदी-तालाब आदिसे ही पर्याप्त जल प्राप्त होता रहता हो। जहाँ शत्रु पीड़ा न दे सकें, जो फल-फूल और धन-धान्यसे सम्पन्न हो, जहाँ शत्रु-सेनाकी गति न हो सके और सर्प तथा लुटेरोंका भी भय न हो। बलवान् राजाको निम्नाङ्कित छः प्रकारके दुर्गोंमेंसे किसी एकका आश्रय लेकर निवास करना चाहिये। भृगुनन्दन! धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, जलदुर्ग और पर्वतदुर्ग—ये ही छः[1] प्रकारके दुर्ग हैं। इनमें पर्वतदुर्ग सबसे उत्तम है। वह शत्रुओंके लिये अभेद्य तथा रिपुवर्गका भेदन करनेवाला है। दुर्ग ही राजाका पुर या नगर है। वहाँ हाट-बाजार तथा देवमन्दिर आदिका होना आवश्यक है। जिसके चारों ओर यन्त्र लगे हों, जो अस्त्र-शस्त्रोंसे भरा हो, जहाँ जलका सुपास हो तथा जिसके सब ओर पानीसे भरी खाइयाँ हों, वह दुर्ग उत्तम माना गया है॥ १—६॥

अब मैं राजाकी रक्षाके विषयमें कुछ निवेदन करूँगा—राजा पृथ्वीका पालन करनेवाला है, अतः विष आदिसे उसकी रक्षा करनी चाहिये। शिरीष वृक्षकी जड़, छाल, पत्ता, फूल और फल—इन पाँचों अङ्गोंको गोमूत्रमें पीसकर सेवन करनेसे विषका निवारण होता है। शतावरी, गुडुचि और चौंराई विषका नाश करनेवाली है। कोषातकी (कड़वी तरोई), कह्लारी (करियारी), ब्राह्मी, चित्रपटोलिका (कड़वी परोरी), मण्डूकपर्णी (ब्राह्मीका एक भेद), वाराहीकन्द, आँवला, आनन्दक, भाँग और सोमराजी (बकुची)—ये दवाएँ विष दूर करनेवाली हैं। विषनाशक माणिक्य और मोती आदि रत्न भी विषका निवारण करनेवाले हैं[2]॥ ७—१०॥

राजाको वास्तुके लक्षणोंसे युक्त दुर्गमें रहकर देवताओंका पूजन, प्रजाका पालन, दुष्टोंका दमन तथा दान करना चाहिये। देवताके धन आदिका अपहरण करनेसे राजाको एक कल्पतक नरकमें रहना पड़ता है। उसे देवपूजामें तत्पर रहकर देवमन्दिरोंका निर्माण कराना चाहिये। देवालयोंकी रक्षा और देवताओंकी स्थापना भी राजाका कर्तव्य है। देवविग्रह मिट्टीका भी बनाया जाता है। मिट्टीसे काठका, काठसे ईंटका, ईंटसे पत्थरका और पत्थरसे सोने तथा रत्नका बना हुआ विग्रह पवित्र माना गया है। प्रसन्नतापूर्वक देवमन्दिर बनवानेवाले पुरुषको भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है। देवमन्दिरमें चित्र बनवावे, गाने-बजाने

१. बालूसे भरी हुई मरुभूमिको 'धन्वदुर्ग' कहते हैं। ग्रीष्मकालमें यह शत्रुओंके लिये दुर्गम होता है। जमीनके अन्दर जो निवास करनेयोग्य स्थान बनवाया जाता है, उसे 'महीदुर्ग' कहते हैं। अपने निवास-स्थानके चारों ओर अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित भारी सेनाका होना 'नरदुर्ग' कहा गया है। दूरतक घने वृक्षों और पानीसे घिरे हुए प्रदेशों अथवा दुर्गम पर्वतमालाओंसे घिरे हुए स्थानको क्रमशः 'वृक्षदुर्ग', 'जलदुर्ग' एवं 'पर्वतदुर्ग' कहा जाता है।

२. यहाँ लिखी हुई दवाओंका प्रयोग किसी अच्छे वैद्यकी सलाह लिये बिना नहीं करना चाहिये; क्योंकि यहाँ संक्षेपमें औषधोंका नाममात्र बताया गया है। सेवन-विधि आयुर्वेदके अन्य ग्रन्थोंमें देखनी चाहिये। उपर्युक्त दवाओंमें शतावरीकी जड़, गुरुचिकी लत्ती और चौराईकी जड़का विषनिवारणके लिये उपयोग किया जाता है। कोषातकी या कड़वी तरोईका फल, बीज इस कार्यके लिये उपयोगी है। एक वैद्यका कहना है कि कड़वी तरोईका दो बीज पावभर दूधमें अच्छी तरह निचोड़े और उसे छानकर पी ले तो वमन और विरेचन—दोनों होते हैं और तबतक होते रहते हैं, जबतक कि पेटके अंदरका दोष पूर्णरूपसे निकल नहीं जाता। करियारी भी एक प्रकारका विष है और 'विषस्य विषमौषधम्'के अनुसार उपयोगमें लाया जाता है। ब्राह्मीकी गुणकारिता तो प्रसिद्ध ही है। कड़वी परोरीको भी 'त्रिदोषगरनाशनम्' बताया गया है। इस कार्यमें इसका मूल ही ग्राह्य है। वाराहीकन्द संजीवनकारी औषधोंमें गिना गया है। यह अष्टवर्गमें प्रतिनिधि ओषधिके रूपमें गृहीत है। श्री और वृद्धि नामक दवाके स्थानपर इसका उपयोग किया जाता है। विष-निवारणके कार्यमें इसका मूल ग्राह्य है। इसी प्रकार आँवलेका फल, भाँगकी पत्ती और बकुचीके फल विष दूर करनेके लिये उपयोगी होते हैं। विषनाशक रसोंमें मोती और माणिक्य आदिका ग्रहण है। आयुर्वेदोक्त रीतिसे तैयार किया हुआ इनका भस्म विधिपूर्वक सेवन करनेसे लाभकारी होता है।

आदिका प्रबन्ध करे, दर्शनीय वस्तुओंका दान दे तथा तेल, घी, मधु और दूध आदिसे देवताको नहलावे तो मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है। ब्राह्मणोंका पालन और सम्मान करे; उनका धन न छीने। यदि राजा ब्राह्मणका एक सोना, एक गौ अथवा एक अंगुल जमीन भी छीन ले, तो उसे महाप्रलय होनेतक नरकमें डूबे रहना पड़ता है। ब्राह्मण सब प्रकारके पापोंमें प्रवृत्त तथा दुराचारी हो तो भी उससे द्वेष नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणकी हत्यासे बढ़कर भारी पाप दूसरा कोई नहीं है। महाभाग ब्राह्मण चाहें तो जो देवता नहीं हैं, उन्हें भी देवता बना दें और देवताको भी देवपदसे नीचे उतार दें; अतः सदा ही उनको नमस्कार करना चाहिये॥ ११—१७ ½ ॥

यदि राजाके अत्याचारसे ब्राह्मणीको रुलाई आ जाय तो वह उसके कुल, राज्य तथा प्रजा—सबका नाश कर डालती है। इसलिये धर्मपरायण राजाको उचित है कि वह साध्वी स्त्रियोंका पालन करे। स्त्रीको घरके काम-काजमें चतुर और प्रसन्न होना चाहिये। वह घरके प्रत्येक सामानको साफ-सुथरा रखे; खर्च करनेमें खुले हाथवाली न हो। कन्याको उसका पिता जिसे दान कर दे, वही उसका पति है। अपने पतिकी उसे सदा सेवा करनी चाहिये। स्वामीकी मृत्यु हो जानेपर ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाली स्त्री स्वर्गलोकमें जाती है। वह दूसरेके घरमें रहना पसंद न करे और लड़ाई-झगड़ेसे दूर रहे। जिसका पति परदेशमें हो, वह स्त्री शृङ्गार न करे, सदा अपने स्वामीके हितचिन्तनमें लगी रहकर देवताओंकी आराधना करे। केवल मङ्गलके लिये सौभाग्यचिह्नके रूपमें दो-एक आभूषण धारण किये रहे। जो स्त्री स्वामीके मरनेपर उसके साथ ही चिताकी आगमें प्रवेश कर जाती है, उसे भी स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। लक्ष्मीकी पूजा और घरकी सफाई आदि रखना गृहिणीका मुख्य कार्य है। कार्तिककी द्वादशीको विष्णुकी पूजा करके बछड़ेसहित गौका दान करना चाहिये। सावित्रीने अपने सदाचार और व्रतके प्रभावसे पतिकी मृत्युसे रक्षा की थी। मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमीको सूर्यकी पूजा करनेसे स्त्रीको पुत्रोंकी प्राप्ति होती है; इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है॥ १८—२६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दुर्ग-सम्पत्ति-वर्णन तथा नारीधर्मका कथन' नामक दो सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२२॥

दो सौ तेईसवाँ अध्याय

राष्ट्रकी रक्षा तथा प्रजासे कर लेने आदिके विषयमें विचार

पुष्कर कहते हैं—(राज्यका प्रबन्ध इस प्रकार करना चाहिये—) राजाको प्रत्येक गाँवका एक-एक अधिपति नियुक्त करना चाहिये। फिर दस-दस गाँवोंका तथा सौ-सौ गाँवोंका अध्यक्ष नियुक्त करे। सबके ऊपर एक ऐसे पुरुषको नियुक्त करे, जो समूचे राष्ट्रका शासन कर सके। उन सबके कार्योंके अनुसार उनके लिये पृथक्-पृथक् भोग (भरण-पोषणके लिये वेतन आदि)-का विभाजन करना चाहिये तथा प्रतिदिन गुप्तचरोंके द्वारा उनके कार्योंकी देख-भाल एवं परीक्षण करते रहना चाहिये। यदि गाँवमें कोई दोष उत्पन्न हो—कोई मामला खड़ा हो तो ग्रामाधिपतिको उसे शान्त करना चाहिये। यदि वह उस दोषको दूर करनेमें असमर्थ हो जाय तो दस गाँवोंके अधिपतिके पास जाकर उनसे सब बातें बतावे। पूरी रिपोर्ट सुनकर वह दस गाँवका स्वामी उस

दोषको मिटानेका उपाय करे॥ १—३½॥

जब राष्ट्र भलीभाँति सुरक्षित होता है, तभी राजाको उससे धन आदिकी प्राप्ति होती है। धनवान् धर्मका उपार्जन करता है, धनवान् ही कामसुखका उपभोग करता है। जैसे गर्मीमें नदीका पानी सूख जाता है, उसी प्रकार धनके बिना सब कार्य चौपट हो जाते हैं। संसारमें पतित और निर्धन मनुष्योंमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। लोग पतित मनुष्यके हाथसे कोई वस्तु नहीं लेते और दरिद्र अपने अभावके कारण स्वयं ही नहीं दे पाता। धनहीनकी स्त्री भी उसकी आज्ञाके अधीन नहीं रहती; अतः राष्ट्रको पीड़ा पहुँचानेवाला—उसे कंगाल बनानेवाला राजा अधिक कालतक नरकमें निवास करता है। जैसे गर्भवती पत्नी अपने सुखका खयाल छोड़कर गर्भके बच्चेको सुख पहुँचानेकी चेष्टा करती है, उसी प्रकार राजाको भी सदा प्रजाकी रक्षाका ध्यान रखना चाहिये। जिसकी प्रजा सुरक्षित नहीं है, उस राजाके यज्ञ और तपसे क्या लाभ? जिसने प्रजाकी भलीभाँति रक्षा की है, उसके लिये स्वर्गलोक अपने घरके समान हो जाता है। जिसकी प्रजा अरक्षित-अवस्थामें कष्ट उठाती है, उस राजाका निवासस्थान है—नरक। राजा अपनी प्रजाके पुण्य और पापमेंसे भी छठा भाग ग्रहण करता है। रक्षा करनेसे उसको प्रजाके धर्मका अंश प्राप्त होता है और रक्षा न करनेसे वह लोगोंके पापका भागी होता है। जैसे परस्त्रीलम्पट दुराचारी पुरुषोंसे डरी हुई पतिव्रता स्त्रीकी रक्षा करना धर्म है, उसी प्रकार राजाके प्रिय व्यक्तियों, चोरों और विशेषतः राजकीय कर्मचारियोंके द्वारा चूसी जाती हुई प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये। उनके भयसे रक्षित होनेपर प्रजा राजाके काम आती है। यदि उसकी रक्षा नहीं की गयी तो वह पूर्वोक्त मनुष्योंका ही ग्रास बन जाती है। इसलिये राजा दुष्टोंका दमन करे और शास्त्रमें बताये अनुसार प्रजासे कर ले। राज्यकी आधी आय सदा खजानेमें रख दिया करे और आधा ब्राह्मणको दे दे। श्रेष्ठ ब्राह्मण उस निधिको पाकर सब-का-सब अपने हाथमें ले ले और उसमेंसे चौथा, आठवाँ तथा सोलहवाँ भाग निकालकर क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको दे। धनको धर्मके अनुसार सुपात्रके हाथमें ही देना चाहिये। झूठ बोलनेवाले मनुष्यको दण्ड देना उचित है। राजा उसके धनका आठवाँ भाग दण्डके रूपमें ले ले। जिस धनका स्वामी लापता हो, उसे राजा तीन वर्षोंतक अपने अधिकारमें रखे। तीन वर्षके पहले यदि धनका स्वामी आ जाय तो वह उसे ले सकता है। उससे अधिक समय बीत जानेपर राजा स्वयं ही उस धनको ले ले। जो मनुष्य (नियत समयके भीतर आकर) 'यह मेरा धन है'—ऐसा कहकर उसका अपनेसे सम्बन्ध बतलाता है, वह विधिपूर्वक (राजाके सामने जाकर) उस धनका रूप और उसकी संख्या बतलावे। इस प्रकार अपनेको स्वामी सिद्ध कर देनेपर वह उस धनको पानेका अधिकारी होता है। जो धन छोटे बालकके हिस्सेका हो, उसकी राजा तबतक रक्षा करता रहे, जबतक कि उसका समावर्तन-संस्कार न हो जाय, अथवा जबतक उसकी बाल्यावस्था न निवृत्त हो जाय। इसी प्रकार जिनके कुलमें कोई न हो और उनके बच्चे छोटे हों, ऐसी स्त्रियोंकी भी रक्षा आवश्यक है॥ ४—१९॥

पतिव्रता स्त्रियाँ भी यदि विधवा तथा रोगिणी हों तो उनकी रक्षा भी इसी प्रकार करनी चाहिये। यदि उनके जीते-जी कोई बन्धु-बान्धव उनके धनका अपहरण करें तो धर्मात्मा राजाको उचित है कि उन बान्धवोंको चोरका दण्ड दे। यदि साधारण चोरोंने प्रजाका धन चुराया हो तो राजा स्वयं उतना धन प्रजाको दे तथा जिन्हें चोरोंसे

रक्षा करनेका काम सौंपा गया हो, उनसे चुराया हुआ धन राजा वसूल करे। जो मनुष्य चोरी न होनेपर भी अपने धनको चुराया हुआ बताता हो, वह दण्डनीय है; उसे राज्यसे बाहर निकाल देना चाहिये। यदि घरका धन घरवालोंने ही चुराया हो तो राजा अपने पाससे उसको न दे। अपने राज्यके भीतर जितनी दूकानें हों, उनसे उनकी आयका बीसवाँ हिस्सा राजाको टैक्सके रूपमें लेना चाहिये। परदेशसे माल मँगानेमें जो खर्च और नुकसान बैठता हो, उसका ब्यौरा बतानेवाला बीजक देखकर तथा मालपर दिये जानेवाले टैक्सका विचार करके प्रत्येक व्यापारीपर कर लगाना चाहिये, जिससे उसको लाभ होता रहे—वह घाटेमें न पड़े। आयका बीसवाँ भाग ही राजाको लेना चाहिये। यदि कोई राजकर्मचारी इससे अधिक वसूल करता हो तो उसे दण्ड देना उचित है। स्त्रियों और साधु-संन्यासियोंसे नावकी उतराई (सेवा) नहीं लेनी चाहिये। यदि मल्लाहोंकी गलतीसे नावपर कोई चीज नुकसान हो जाय तो वह मल्लाहोंसे ही दिलानी चाहिये। राजा शूकधान्यका[1] छठा भाग और शिम्बिधान्यका[2] आठवाँ भाग करके रूपमें ग्रहण करे। इसी प्रकार जंगली फल-मूल आदिमेंसे देश-कालके अनुरूप उचित कर लेना चाहिये। पशुओंका पाँचवाँ और सुवर्णका छठा भाग राजाके लिये ग्राह्य है। गन्ध, ओषधि, रस, फूल, मूल, फल, पत्र, शाक, तृण, बाँस, वेणु, चर्म, बाँसको चीरकर बनाये हुए टोकरे तथा पत्थरके बर्तनोंपर और मधु, मांस एवं घीपर भी आमदनीका छठा भाग ही कर लेना उचित है॥ २०—२९॥

ब्राह्मणोंसे कोई प्रिय वस्तु अथवा कर नहीं लेना चाहिये। जिस राजाके राज्यमें श्रोत्रिय ब्राह्मण भूखसे कष्ट पाता है, उसका राज्य बीमारी, अकाल और लुटेरोंसे पीड़ित होता रहता है। अतः ब्राह्मणकी विद्या और आचरणको जानकर उसके लिये अनुकूल जीविकाका प्रबन्ध करे तथा जैसे पिता अपने औरस पुत्रका पालन करता है, उसी प्रकार राजा विद्वान् और सदाचारी ब्राह्मणकी सर्वथा रक्षा करे। जो राजासे सुरक्षित होकर प्रतिदिन धर्मका अनुष्ठान करता है, उस ब्राह्मणके धर्मसे राजाकी आयु बढ़ती है तथा उसके राष्ट्र एवं खजानेकी भी उन्नति होती है। शिल्पकारोंको चाहिये कि महीनेमें एक दिन बिना पारिश्रमिक लिये केवल भोजन स्वीकार करके राजाका काम करें। इसी प्रकार दूसरे लोगोंको भी, जो राज्यमें रहकर अपने शरीरके परिश्रमसे जीविका चलाते हैं, महीनेमें एक दिन राजाका काम करना चाहिये॥ ३०—३४॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'राजधर्मका कथन' नामक दो सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२३॥

दो सौ चौबीसवाँ अध्याय

अन्तःपुरके सम्बन्धमें राजाके कर्त्तव्य; स्त्रीकी विरक्ति और अनुरक्तिकी परीक्षा तथा सुगन्धित पदार्थोंके सेवनका प्रकार

पुष्कर कहते हैं— अब मैं अन्तःपुरके विषयमें विचार करूँगा। धर्म, अर्थ और काम—ये तीन पुरुषार्थ 'त्रिवर्ग' कहलाते हैं। इनकी एक-दूसरेके द्वारा रक्षा करते हुए स्त्रीसहित राजाओंको इनका

१. 'शूकधान्य' वह अन्न है, जिसके दाने बालों या सीकोंसे लगते हैं—जैसे गेहूँ, जौ आदि।

२. वह अन्न, जिसके पौधेमें फली (छीमी) लगती हो—जैसे चना, मटर आदि।

सेवन करना चाहिये। 'त्रिवर्ग' एक महान् वृक्षके समान है। 'धर्म' उसकी जड़, 'अर्थ' उसकी शाखाएँ और 'काम' उसका फल है। मूलसहित उस वृक्षकी रक्षा करनेसे ही राजा फलका भागी हो सकता है। राम! स्त्रियाँ कामके अधीन होती हैं, उन्हींके लिये रत्नोंका संग्रह होता है। विषयसुखकी इच्छा रखनेवाले राजाको स्त्रियोंका सेवन करना चाहिये, परंतु अधिक मात्रामें नहीं। आहार, मैथुन और निद्रा—इनका अधिक सेवन निषिद्ध है; क्योंकि इनसे रोग उत्पन्न होता है। उन्हीं स्त्रियोंका सेवन करे अथवा पलंगपर बैठावे, जो अपनेमें अनुराग रखनेवाली हों। परंतु जिस स्त्रीका आचरण दुष्ट हो, जो अपने स्वामीकी चर्चा भी पसंद नहीं करती, बल्कि उनके शत्रुओंसे एकता स्थापित करती है, उद्दण्डतापूर्वक गर्व धारण किये रहती है, चुम्बन करनेपर अपना मुँह पोंछती या धोती है, स्वामीकी दी हुई वस्तुका अधिक आदर नहीं करती, पतिके पहले सोती है, पहले सोकर भी उनके जागनेके बाद ही जागती है, जो स्पर्श करनेपर अपने शरीरको कँपाने लगती है, एक-एक अङ्गपर अवरोध उपस्थित करती है, उनके प्रिय वचनको भी बहुत कम सुनती है और सदा उनसे पराङ्मुख रहती है, सामने जाकर कोई वस्तु दी जाय, तो उसपर दृष्टि नहीं डालती, अपने जघन (कटिके अग्रभाग)-को अत्यन्त छिपाने—पतिके स्पर्शसे बचानेकी चेष्टा करती है, स्वामीको देखते ही जिसका मुँह उतर जाता है, जो उनके मित्रोंसे भी विमुख रहती है, वे जिन-जिन स्त्रियोंके प्रति अनुराग रखते हैं, उन सबकी ओरसे जो मध्यस्थ (न अनुरक्त न विरक्त) दिखायी देती है तथा जो शृङ्गारका समय उपस्थित जानकर भी शृङ्गार-धारण नहीं करती, वह स्त्री 'विरक्त' है। उसका परित्याग करके अनुरागिणी स्त्रीका सेवन करना चाहिये। अनुरागवती स्त्री स्वामीको देखते ही प्रसन्नतासे खिल उठती है, दूसरी ओर मुख किये होनेपर भी कनखियोंसे उनकी ओर देखा करती है, स्वामीको निहारते देख अपनी चञ्चल दृष्टि अन्यत्र हटा ले जाती है, परंतु पूरी तरह हटा नहीं पाती तथा भृगुनन्दन! अपने गुप्त अङ्गोंको भी वह कभी-कभी व्यक्त कर देती है और शरीरका जो अंश सुन्दर नहीं है, उसे प्रयत्नपूर्वक छिपाया करती है, स्वामीके देखते-देखते छोटे बच्चेका आलिङ्गन और चुम्बन करने लगती है, बातचीतमें भाग लेती और सत्य बोलती है, स्वामीका स्पर्श पाकर जिसके अंगोंमें रोमाञ्च और स्वेद प्रकट हो जाते हैं, जो उनसे अत्यन्त सुलभ वस्तु ही माँगती है और स्वामीसे थोड़ा पाकर भी अधिक प्रसन्नता प्रकट करती है, उनका नाम लेते ही आनन्दविभोर हो जाती तथा विशेष आदर करती है, स्वामीके पास अपनी अंगुलियोंके चिह्नसे युक्त फल भेजा करती है तथा स्वामीकी भेजी हुई कोई वस्तु पाकर उसे आदरपूर्वक छातीसे लगा लेती है, अपने आलिंगनोंद्वारा मानो स्वामीके शरीरपर अमृतका लेप कर देती है, स्वामीके सो जानेपर सोती और पहले ही जग जाती है तथा स्वामीके ऊरुओंका स्पर्श करके उन्हें सोतेसे जगाती है॥ १—१७½॥

राम! दहीकी मलाईके साथ थोड़ा-सा कपित्थ (कैथ)-का चूर्ण मिला देनेसे जो घी तैयार होता है, उसकी गन्ध उत्तम होती है। घी, दूध आदिके साथ जौ, गेहूँ आदिके आटेका मेल होनेसे उत्तम खाद्य-पदार्थ तैयार होता है। अब भिन्न-भिन्न द्रव्योंमें गन्ध छोड़नेका प्रकार दिखलाया जाता है। शौच, आचमन, विरेचन, भावना, पाक, बोधन, धूपन और वासन—ये आठ प्रकारके कर्म बतलाये गये हैं। कपित्थ, बिल्व, जामुन, आम और करवीरके पल्लवोंसे जलको शुद्ध करके उसके द्वारा जो किसी द्रव्यको धोकर या अभिषिक्त करके पवित्र किया जाता है, वह उस द्रव्यका 'शौचन' (शोधन अथवा पवित्रीकरण) कहलाता

है। इन पल्लवोंके अभावमें कस्तूरीमिश्रित जलके द्वारा द्रव्योंकी शुद्धि होती है। नख, कूट, घन (नागरमोथा), जटामांसी, स्पृक्क, शैलेयज (शिलाजीत), जल, कुम्कुम (केसर), लाक्षा (लाह), चन्दन, अगुरु, नीरद, सरल, देवदारु, कपूर, कान्ता, वाल (सुगन्धबाला), कुन्दुरुक, गुग्गुल, श्रीनिवास और करायल—ये धूपके इक्कीस द्रव्य हैं। इन इक्कीस धूप-द्रव्योंमेंसे अपनी इच्छाके अनुसार दो-दो द्रव्य लेकर उनमें करायल मिलावे। फिर सबमें नख (एक प्रकारका सुगन्धद्रव्य), पिण्याक (तिलकी खली) और मलय-चन्दनका चूर्ण मिलाकर सबको मधुसे युक्त करे। इस प्रकार अपने इच्छानुसार विधिवत् तैयार किये हुए धूपयोग होते हैं। त्वचा (छाल), नाड़ी (डंठल), फल, तिलका तेल, केसर, ग्रन्थिपर्वा, शैलेय, तगर, विष्णुक्रान्ता, चोल, कर्पूर, जटामांसी, मुरा, कूट—ये सब स्नानके लिये उपयोगी द्रव्य हैं। इन द्रव्योंमेंसे अपनी इच्छाके अनुसार तीन द्रव्य लेकर उनमें कस्तूरी मिला दे। इन सबसे मिश्रित जलके द्वारा यदि स्नान करे तो वह कामदेवको बढ़ानेवाला होता है। त्वचा, मुरा, नलद—इन सबको समान मात्रामें लेकर इनमें आधा सुगन्धबाला मिला दे। फिर इनके द्वारा स्नान करनेपर शरीरसे कमलकी-सी गन्ध उत्पन्न होती है। इनके ऊपर यदि तेल लगाकर स्नान करे तो शरीरका रंग कुमकुमके समान हो जाता है। यदि उपर्युक्त द्रव्योंमें आधा तगर मिला दिया जाय तो शरीरसे चमेलीके फूलकी भाँति सुगन्ध आती है। उनमें द्वयामक नामवाली औषध मिला देनेसे मौलसिरीके फूलोंकी-सी मनोहारिणी सुगन्ध प्रकट होती है। तिलके तेलमें मंजिष्ठ, तगर, चोल, त्वचा, व्याघ्रनख, नख और गन्थपत्र छोड़ देनेसे बहुत ही सुन्दर और सुगन्धित तेल तैयार हो जाता है। यदि तिलोंको सुगन्धित फूलोंसे वासित करके उनका तेल पेरा जाय तो निश्चय ही वह तेल फूलके समान ही सुगन्धित होता है। इलायची, लवंग, काकोल (कबाबचीनी), जायफल और कर्पूर—ये स्वतन्त्ररूपसे एक-एक भी यदि जायफलकी पत्तीके साथ खाये जायँ तो मुँहको सुगन्धित रखनेवाले होते हैं। कर्पूर, केसर, कान्ता, कस्तूरी, मेउड़का फल, कबाबचीनी, इलायची, लवंग, जायफल, सुपारी, त्वक्पत्र, त्रुटि (छोटी इलायची), मोथा, लता, कस्तूरी, लवंगके काँटे, जायफलके फल और पत्ते, कटुकफल—इन सबको एक-एक पैसेभर एकत्रित करके इनका चूर्ण बना ले और उसमें चौथाई भाग वासित किया हुआ खैरसार मिलावे। फिर आमके रसमें घोटकर इनकी सुन्दर-सुन्दर गोलियाँ बना ले। वे सुगन्धित गोलियाँ मुँहमें रखनेपर मुख-सम्बन्धी रोगोंका विनाश करनेवाली होती है। पूर्वोक्त पाँच पल्लवोंके जलसे धोयी हुई सुपारीको यथाशक्ति ऊपर बतायी हुई गोलीके द्रव्योंसे वासित कर दिया जाय तो वह मुँहको सुगन्धित रखनेवाली होती है। कटुक और दाँतनको यदि तीन दिनतक गोमूत्रमें भिगोकर रखा जाय तो वे सुपारीकी ही भाँति मुँहमें सुगन्ध उत्पन्न करनेवाले होते हैं। त्वचा और जंगी हरेंको बराबर मात्रामें लेकर उनमें आधा भाग कर्पूर मिला दे तो वे मुँहमें डालनेपर पानके समान मनोहर गन्ध उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार राजा अपने सुगन्ध आदि गुणोंसे स्त्रियोंको वशीभूत करके सदा उनकी रक्षा करे। कभी उनपर विश्वास न करे। विशेषतः पुत्रकी मातापर तो बिलकुल विश्वास न करे। सारी रात स्त्रीके घरमें न सोवे; क्योंकि उनका दिलाया हुआ विश्वास बनावटी होता है॥ १८—४२॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'राजधर्मका कथन' नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२४॥

दो सौ पचीसवाँ अध्याय

राज-धर्म—राजपुत्र-रक्षण आदि

पुष्कर कहते हैं—राजाको अपने पुत्रकी रक्षा करनी चाहिये तथा उसे धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और धनुर्वेदकी शिक्षा देनी चाहिये। साथ ही अनेक प्रकारके शिल्पोंकी शिक्षा देनी भी आवश्यक है। शिक्षक विश्वसनीय और प्रिय वचन बोलनेवाले होने चाहिये। राजकुमारकी शरीर-रक्षाके लिये कुछ रक्षकोंको नियुक्त करना भी आवश्यक है। क्रोधी, लोभी तथा अपमानित पुरुषोंके संगसे उसको दूर रखना चाहिये। गुणोंका आधान करना सहज नहीं होता, अतः इसके लिये राजकुमारको सुखोंसे बाँधना चाहिये। जब पुत्र शिक्षित हो जाय तो उसे सभी अधिकारोंमें नियुक्त करे। मृगया, मद्यपान और जुआ—ये राज्यका नाश करनेवाले दोष हैं। राजा इनका परित्याग करे॥ १—४॥

दिनका सोना, व्यर्थ घूमना और कटुभाषण करना छोड़ दे। परायी निन्दा, कठोर दण्ड और अर्थदूषणका भी परित्याग करे। सुवर्ण आदिकी खानोंका विनाश और दुर्ग आदिकी मरम्मत न कराना—ये अर्थके दूषण कहे गये हैं। धनको थोड़ा-थोड़ा करके अनेकों स्थानोंपर रखना, अयोग्य देश और अयोग्य कालमें अपात्रको दान देना तथा बुरे कामोंमें धन लगाना—यह सब भी अर्थका दूषण (धनका दुरुपयोग) है। काम, क्रोध, मद, मान, लोभ और दर्पका त्याग करे। तत्पश्चात् भृत्योंको जीतकर नगर और देशके लोगोंको वशमें करे। इसके बाद बाह्यशत्रुओंको जीतनेका प्रयत्न करे। बाह्यशत्रु भी तीन प्रकारके होते हैं—एक तो वे हैं, जिनके साथ पुस्तैनी दुश्मनी हो; दूसरे प्रकारके शत्रु हैं—अपने राज्यकी सीमापर रहनेवाले सामन्त तथा तीसरे हैं—कृत्रिम—अपने बनाये हुए शत्रु। इनमें पूर्व-पूर्व शत्रु गुरु (भारी या अधिक भयानक) हैं। महाभाग! मित्र भी तीन प्रकारके बतलाये जाते हैं—बाप-दादोंके समयके मित्र, शत्रुके सामन्त तथा कृत्रिम॥ ५—१०॥

धर्मज्ञ परशुरामजी! राजा, मन्त्री, जनपद, दुर्ग, दण्ड (सेना), कोष और मित्र—ये राज्यके सात अंग कहलाते हैं। राज्यकी जड़ है—स्वामी (राजा), अतः उसकी विशेषरूपसे रक्षा होनी चाहिये। राज्याङ्गके विद्रोहीको मार डालना उचित है। राजाको समयानुसार कठोर भी होना चाहिये और कोमल भी। ऐसा करनेसे राजाके दोनों लोक सुधरते हैं। राजा अपने भृत्योंके साथ हँसी-परिहास न करे; क्योंकि सबके साथ हँस-हँसकर बातें करनेवाले राजाको उसके सेवक अपमानित कर बैठते हैं। लोगोंको मिलाये रखनेके लिये राजाको बनावटी व्यसन भी रखना चाहिये। वह मुसकाकर बोले और ऐसा बर्ताव करे, जिससे सब लोग प्रसन्न रहें। दीर्घसूत्री (कार्यारम्भमें विलम्ब करनेवाले) राजाके कार्यकी अवश्य हानि होती है, परंतु राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापकर्म तथा अप्रिय भाषणमें दीर्घसूत्री (विलम्ब लगानेवाले) राजाकी प्रशंसा होती है। राजाको अपनी मन्त्रणा गुप्त रखनी चाहिये। उसके गुप्त रहनेसे राजापर कोई आपत्ति नहीं आती॥ ११—१६॥

राजाका राज्य-सम्बन्धी कोई कार्य पूरा हो जानेपर ही दूसरोंको मालूम होना चाहिये। उसका प्रारम्भ कोई भी जानने न पावे। मनुष्यके आकार, इशारे, चाल-ढाल, चेष्टा, बातचीत तथा नेत्र और मुखके विकारोंसे उसके भीतरकी बात पकड़में आ जाती है। राजा न तो अकेले ही किसी गुप्त विषयपर विचार करे और न अधिक मनुष्योंको ही साथ रखे। बहुतोंसे सलाह अवश्य ले, किंतु

अलग-अलग। (सबको एक साथ बुलाकर नहीं।) मन्त्रीको चाहिये कि राजाके गुप्त विचारको दूसरे मन्त्रियोंपर भी न प्रकट करे। मनुष्योंका सदा कहीं, किसी एकपर ही विश्वास जमता है, इसलिये एक ही विद्वान् मन्त्रीके साथ बैठकर राजाको गुप्त मन्त्रका निश्चय करना चाहिये। विनयका त्याग करनेसे राजाका नाश हो जाता है और विनयकी रक्षासे उसे राज्यकी प्राप्ति होती है। तीनों वेदोंके विद्वानोंसे त्रयीविद्या, सनातन दण्डनीति, आन्वीक्षिकी (अध्यात्मविद्या) तथा अर्थशास्त्रका ज्ञान प्राप्त करे। साथ ही वार्ता (कृषि, गोरक्षा एवं वाणिज्य आदि)-के प्रारम्भ करनेका ज्ञान लोकसे प्राप्त करे। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला राजा ही प्रजाको अधीन रखनेमें समर्थ होता है। देवताओं और समस्त ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये तथा उन्हें दान भी देना चाहिये। ब्राह्मणको दिया हुआ दान अक्षय निधि है; उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। संग्राममें पीठ न दिखाना, प्रजाका पालन करना और ब्राह्मणोंको दान देना—ये राजाके लिये परम कल्याणकी बातें हैं। दीनों, अनाथों, वृद्धों तथा विधवा स्त्रियोंके योगक्षेमका निर्वाह तथा उनके लिये आजीविकाका प्रबन्ध करे। वर्ण और आश्रम-धर्मकी रक्षा तथा तपस्वियोंका सत्कार राजाका कर्त्तव्य है। राजा कहीं भी विश्वास न करे, किंतु तपस्वियोंपर अवश्य विश्वास करे। उसे यथार्थ युक्तियोंके द्वारा दूसरोंपर अपना विश्वास जमा लेना चाहिये। राजा बगुलेकी भाँति अपने स्वार्थका विचार करे और (अवसर पानेपर) सिंहके समान पराक्रम दिखावे। भेड़ियेकी तरह झपटकर शत्रुको विदीर्ण कर डाले, खरगोशकी भाँति छलाँगें भरते हुए अदृश्य हो जाय और सूअरकी भाँति दृढ़तापूर्वक प्रहार करे। राजा मोरकी भाँति विचित्र आकार धारण करे, घोड़ेके समान दृढ़ भक्ति रखनेवाला हो और कोयलकी तरह मीठे वचन बोले। कौएकी तरह सबसे चौकन्ना रहे; रातमें ऐसे स्थानपर रहे, जो दूसरोंको मालूम न हो; जाँच या परख किये बिना भोजन और शय्याको ग्रहण न करे। अपरिचित स्त्रीके साथ समागम न करे; बेजान-पहचानकी नावपर न चढ़े। अपने राष्ट्रकी प्रजाको चूसनेवाला राजा राज्य और जीवन—दोनोंसे हाथ धो बैठता है। महाभाग! जैसे पाला हुआ बछड़ा बलवान् होनेपर काम करनेके योग्य होता है, उसी प्रकार सुरक्षित राष्ट्र राजाके काम आता है। यह सारा कर्म दैव और पुरुषार्थके अधीन है। इनमें दैव तो अचिन्त्य है, किंतु पुरुषार्थमें कार्य करनेकी शक्ति है। राजाके राज्य, पृथ्वी तथा लक्ष्मीकी उत्पत्तिका एकमात्र कारण है—प्रजाका अनुराग। (अतः राजाको चाहिये कि वह सदा प्रजाको संतुष्ट रखे।) ॥ १७—३३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'राजधर्मका कथन' नामक दो सौ पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२५ ॥

दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय

पुरुषार्थकी प्रशंसा; साम आदि उपायोंका प्रयोग तथा राजाकी विविध देवरूपताका प्रतिपादन

पुष्कर कहते हैं— परशुरामजी! दूसरे शरीरसे उपार्जित किये हुए अपने ही कर्मका नाम 'दैव' समझिये। इसलिये मेधावी पुरुष पुरुषार्थको ही श्रेष्ठ बतलाते हैं। दैव प्रतिकूल हो तो उसका पुरुषार्थसे निवारण किया जा सकता है तथा पहलेके सात्त्विक कर्मसे पुरुषार्थके बिना भी

सिद्धि प्राप्त हो सकती है। भृगुनन्दन! पुरुषार्थ ही दैवकी सहायतासे समयपर फल देता है। दैव और पुरुषार्थ—ये दोनों मनुष्यको फल देनेवाले हैं। पुरुषार्थद्वारा की हुई कृषिसे वर्षाका योग प्राप्त होनेपर समयानुसार फलकी प्राप्ति होती है। अतः धर्मानुष्ठानपूर्वक पुरुषार्थ करे; आलसी न बने और दैवका भरोसा करके बैठा न रहे॥ १—४॥

साम आदि उपायोंसे आरम्भ किये हुए सभी कार्य सिद्ध होते हैं। साम, दान, भेद, दण्ड, माया, उपेक्षा और इन्द्रजाल—ये सात उपाय बतलाये गये हैं। इनका परिचय सुनिये। तथ्य और अतथ्य—दो प्रकारका 'साम' कहा गया है। उनमें 'अतथ्य साम' साधु पुरुषोंके लिये कलंकका ही कारण होता है। अच्छे कुलमें उत्पन्न, सरल, धर्मपरायण और जितेन्द्रिय पुरुष सामसे ही वशमें होते हैं। अतथ्य सामके द्वारा तो राक्षस भी वशीभूत हो जाते हैं। उनके किये हुए उपकारोंका वर्णन भी उन्हें वशमें करनेका अच्छा उपाय है। जो लोग आपसमें द्वेष रखनेवाले तथा कुपित, भयभीत एवं अपमानित हैं, उनमें भेदनीतिका प्रयोग करे और उन्हें अत्यन्त भय दिखावे। अपनी ओरसे उन्हें आशा दिखावे तथा जिस दोषसे वे दूसरे लोग डरते हों, उसीको प्रकट करके उनमें भेद डाले। शत्रुके कुटुम्बमें भेद डालनेवाले पुरुषकी रक्षा करनी चाहिये। सामन्तका क्रोध बाहरी कोप है तथा मन्त्री, अमात्य और पुत्र आदिका क्रोध भीतरी क्रोधके अन्तर्गत है; अतः पहले भीतरी कोपको शान्त करके सामन्त आदि शत्रुओंके बाह्य कोपको जीतनेका प्रयत्न करे॥ ५—११॥

सभी उपायोंमें 'दान' श्रेष्ठ माना गया है। दानसे इस लोक और परलोक—दोनोंमें सफलता प्राप्त होती है। ऐसा कोई भी नहीं है, जो दानसे वशमें न हो जाता हो। दानी मनुष्य ही परस्पर सुसंगठित रहनेवाले लोगोंमें भी भेद डाल सकता है। साम, दान और भेद—इन तीनोंसे जो कार्य न सिद्ध हो सके, उसे 'दण्ड'के द्वारा सिद्ध करना चाहिये। दण्डमें सब कुछ स्थित है। दण्डका अनुचित प्रयोग अपना ही नाश कर डालता है। जो दण्डके योग्य नहीं हैं, उनको दण्ड देनेवाला, तथा जो दण्डनीय हैं, उनको दण्ड न देनेवाला राजा नष्ट हो जाता है। यदि राजा दण्डके द्वारा सबकी रक्षा न करे तो देवता, दैत्य, नाग, मनुष्य, सिद्ध, भूत और पक्षी—ये सभी अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन कर जायँ। चूँकि यह उद्दण्ड पुरुषोंका दमन करता और अदण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देता है, इसलिये दमन और दण्डके कारण विद्वान् पुरुष इसे 'दण्ड' कहते हैं॥ १२—१६॥

जब राजा अपने तेजसे इस प्रकार तप रहा हो कि उसकी ओर देखना कठिन हो जाय, तब वह 'सूर्यवत्' होता है। जब वह दर्शन देनेमात्रसे जगत्‌को प्रसन्न करता है, तब 'चन्द्रतुल्य' माना जाता है। राजा अपने गुप्तचरोंके द्वारा समस्त संसारमें व्याप्त रहता है, इसलिये वह 'वायुरूप' है तथा दोष देखकर दण्ड देनेके कारण 'सर्वसमर्थ यमराज'के समान माना गया है। जिस समय वह खोटी बुद्धिवाले दुष्टजनको अपने कोपसे दग्ध करता है, उस समय साक्षात् 'अग्निदेव'का रूप होता है तथा जब ब्राह्मणोंको दान देता है, उस समय उस दानके कारण वह धनाध्यक्ष 'कुबेर-तुल्य' हो जाता है। देवता आदिके निमित्त घृत आदि हविष्यकी घनी धारा बरसानेके कारण वह 'वरुण' माना गया है। भूपाल अपने 'क्षमा' नामक गुणसे जब सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करता है, उस समय 'पृथ्वीका स्वरूप' जान पड़ता है तथा उत्साह, मन्त्र और प्रभुशक्ति आदिके द्वारा वह सबका पालन करता है, इसलिये साक्षात् 'भगवान् विष्णु'का स्वरूप है॥ १७—२०॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सामादि उपायोंका कथन' नामक दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२६॥

दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय

अपराधोंके अनुसार दण्डके प्रयोग

पुष्कर कहते हैं— राम! अब मैं दण्डनीतिका प्रयोग बतलाऊँगा, जिससे राजाको उत्तम गति प्राप्त होती है। तीन जौका एक 'कृष्णल' समझना चाहिये, पाँच कृष्णलका एक 'माष' होता है, साठ कृष्णल (अथवा बारह माष) 'आधे कर्ष'के बराबर बताये गये हैं। सोलह माषका एक 'सुवर्ण' माना गया है। चार सुवर्णका एक 'निष्क' और दस निष्कका एक 'धरण' होता है। यह ताँबे, चाँदी और सोनेका मान बताया गया है॥ १—३॥

परशुरामजी! ताँबेका जो 'कर्ष' होता है, उसे विद्वानोंने 'कार्षिक' और 'कार्षापण' नाम दिया है। ढाई सौ पण (पैसे) 'प्रथम साहस' दण्ड माना गया है, पाँच सौ पण 'मध्यम साहस' और एक हजार पण 'उत्तम साहस' दण्ड बताया गया है। चोरोंके द्वारा जिसके धनकी चोरी नहीं हुई है तो भी जो चोरीका धन वापस देनेवाले राजाके पास जाकर झूठ ही यह कहता है कि 'मेरा इतना धन चुराया गया है', उसके कथनकी असत्यता सिद्ध होनेपर उससे उतना ही धन दण्डके रूपमें वसूल करना चाहिये। जो मनुष्य चोरीमें गये हुए धनके विपरीत जितना धन बतलाता है, अथवा जो जितना झूठ बोलता है—उन दोनोंसे राजाको दण्डके रूपमें दूना धन वसूल करना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही धर्मको नहीं जानते। झूठी गवाही देनेवाले क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन तीनों वर्णोंको कठोर दण्ड देना चाहिये; किंतु ब्राह्मणको केवल राज्यसे बाहर कर देना उचित है। उसके लिये दूसरे किसी दण्डका विधान नहीं है। धर्मज्ञ! जिसने धरोहर हड़प ली हो, उसपर धरोहरके रूपमें रखे हुए वस्त्र आदिकी कीमतके बराबर दण्ड लगाना चाहिये; ऐसा करनेसे धर्मकी हानि नहीं होती। जो धरोहरको नष्ट करा देता है, अथवा जो धरोहर रखे बिना ही किसीसे कोई वस्तु माँगता है—उन दोनोंको चोरके समान दण्ड देना चाहिये; या उनसे दूना जुर्माना वसूल करना चाहिये। यदि कोई पुरुष अनजानमें दूसरेका धन बेच देता है तो वह (भूल स्वीकार करनेपर) निर्दोष माना गया है; परंतु जो जान-बूझकर अपना बताते हुए दूसरेका सामान बेचता है, वह चोरके समान दण्ड पानेका अधिकारी है। जो अग्रिम मूल्य लेकर भी अपने हाथका काम बनाकर न दे, वह भी दण्ड देनेके ही योग्य है। जो देनेकी प्रतिज्ञा करके न दे, उसपर राजाको सुवर्ण (सोलह माष)-का दण्ड लगाना चाहिये। जो मजदूरी लेकर काम न करे, उसपर आठ कृष्णल जुर्माना लगाना चाहिये। जो असमयमें भृत्यका त्याग करता है, उसपर भी उतना ही दण्ड लगाना चाहिये। कोई वस्तु खरीदने या बेचनेके बाद जिसको कुछ पश्चात्ताप हो, वह धनका स्वामी दस दिनके भीतर दाम लौटाकर माल ले सकता है। (अथवा खरीददारको ही यदि माल पसंद न आवे तो वह दस दिनके भीतर उसे लौटाकर दाम ले सकता है।) दस दिनसे अधिक हो जानेपर यह आदान-प्रदान नहीं हो सकता। अनुचित आदान-प्रदान करनेवालेपर राजाको छः सौका दण्ड लगाना चाहिये॥ ४—१४½॥

जो वरके दोषोंको न बताकर किसी कन्याका वरण करता है, उसको वचनद्वारा दी हुई कन्या भी नहीं दी हुईके ही समान है। राजाको चाहिये कि उस व्यक्तिपर दो सौका दण्ड लगावे। जो एकको कन्या देनेकी बात कहकर फिर दूसरेको

दे डालता है, उसपर राजाको उत्तम साहस (एक हजार पण)-का दण्ड लगाना चाहिये। वाणीद्वारा कहकर उसे कार्य-रूपमें सत्य करनेसे निस्संदेह पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो किसी वस्तुको एक जगह देनेकी प्रतिज्ञा करके उसे लोभवश दूसरेके हाथ बेच देता है, उसपर छः सौका दण्ड लगाना चाहिये। जो ग्वाला मालिकसे भोजन-खर्च और वेतन लेकर भी उसकी गाय उसे नहीं लौटाता, अथवा अच्छी तरह उसका पालन-पोषण नहीं करता, उसपर राजा सौ सुवर्णका दण्ड लगावे। गाँवके चारों ओर सौ धनुषके घेरेमें तथा नगरके चारों ओर दो सौ या तीन सौ धनुषके घेरेमें खेती करनी चाहिये, जिसे खड़ा हुआ ऊँट न देख सके। जो खेत चारों ओरसे घेरा न गया हो, उसकी फसलको किसीके द्वारा नुकसान पहुँचनेपर दण्ड नहीं दिया जा सकता। जो भय दिखाकर दूसरोंके घर, पोखरे, बगीचे अथवा खेतको हड़पनेकी चेष्टा करता है, उसके ऊपर राजाको पाँच सौका दण्ड लगाना चाहिये। यदि उसने अनजानमें ऐसा किया हो तो दो सौका ही दण्ड लगाना उचित है। सीमाका भेदन करनेवाले सभी लोगोंको प्रथम श्रेणीके साहस (ढाई सौ पण)-का दण्ड देना चाहिये॥ १५—२२॥

परशुरामजी! ब्राह्मणको नीचा दिखानेवाले क्षत्रियपर सौका दण्ड लगाना उचित है। इसी अपराधके लिये वैश्यसे दो सौ जुर्माना वसूल करे और शूद्रको कैदमें डाल दे। क्षत्रियको कलंकित करनेपर ब्राह्मणको पचासका दण्ड, वैश्यपर दोषारोपण करनेसे पचीसका और शूद्रको कलंक लगानेपर उसे बारहका दण्ड देना उचित है। यदि वैश्य क्षत्रियका अपमान करे तो उसपर प्रथम साहस (ढाई सौ पण)-का दण्ड लगाना चाहिये और शूद्र यदि क्षत्रियको गाली दे तो उसकी जीभको सजा देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको उपदेश करनेवाला शूद्र भी दण्डका भागी होता है। जो अपने शास्त्रज्ञान और देश आदिका झूठा परिचय दे, उसे दूने साहसका दण्ड देना उचित है। जो श्रेष्ठ पुरुषोंको पापाचारी कहकर उनके ऊपर आक्षेप करे, वह उत्तम साहसका दण्ड पानेके योग्य है। यदि वह यह कहकर कि 'मेरे मुँहसे प्रमादवश ऐसी बात निकल गयी है', अपना प्रेम प्रकट करे तो उसके लिये दण्ड घटाकर आधा कर देना चाहिये। माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, श्वशुर तथा गुरुपर आक्षेप करनेवाला और गुरुजनोंको रास्ता न देनेवाला पुरुष भी सौका दण्ड पानेके योग्य है। जो मनुष्य अपने जिस अंगसे दूसरे ऊँचे लोगोंका अपराध करे, उसके उसी अंगको बिना विचारे शीघ्र ही काट डालना चाहिये। जो घमंडमें आकर किसी उच्च पुरुषकी ओर थूके, राजाको उसके ओठ काट लेना उचित है। इसी प्रकार यदि वह उसकी ओर मुँह करके पेशाब करे तो उसका लिङ्ग और उधर पीठ करके अपशब्द करे तो उसकी गुदा काट लेनेके योग्य है। इतना ही नहीं, यदि वह ऊँचे आसनपर बैठा हो तो उस नीचके शरीरके निचले भागको दण्ड देना उचित है। जो मनुष्य दूसरेके जिस-किसी अंगको घायल करे, उसके भी उसी अंगको कुतर डालना चाहिये। गौ, हाथी, घोड़े और ऊँटको हानि पहुँचानेवाले मनुष्योंके आधे हाथ और पैर काट लेने चाहिये। जो किसी (पराये) वृक्षके फल तोड़े, उसपर सुवर्णका दण्ड लगाना उचित है। जो रास्ता, खेतकी सीमा अथवा जलाशय आदिको

काटकर नष्ट करे, उससे नुकसानका दूना दण्ड दिलाना चाहिये। जो जान-बूझकर या अनजानमें जिसके धनका अपहरण करे, वह पहले उसके धनको लौटाकर उसे संतुष्ट करे। उसके बाद राजाको भी जुर्माना दे। जो कुएँपरसे दूसरेकी रस्सी और घड़ा चुरा लेता तथा पाँसले नष्ट कर देता है, उसे एक मासतक कैदकी सजा देनी चाहिये। प्राणियोंको मारनेपर भी यही दण्ड देना उचित है। जो दस घड़ेसे अधिक अनाजकी चोरी करता है, वह प्राणदण्ड देनेके योग्य है। बाकीमें भी अर्थात् दस घड़ेसे कम अनाजकी चोरी करनेपर भी, जितने घड़े अन्नकी चोरी करे, उससे ग्यारह गुना अधिक उस चोरपर दण्ड लगाना चाहिये। सोने-चाँदी आदि द्रव्यों, पुरुषों तथा स्त्रियोंका अपहरण करनेपर अपराधीको वधका दण्ड देना चाहिये। चोर जिस-जिस अंगसे जिस प्रकार मनुष्योंके प्रतिकूल चेष्टा करता है, उसके उसी-उसी अंगको वैसी ही निष्ठुरताके साथ कटवा डालना राजाका कर्तव्य है। इससे चोरोंको चेतावनी मिलती है। यदि ब्राह्मण बहुत थोड़ी मात्रामें शाक और धान्य आदि ग्रहण करता है तो वह दोषका भागी नहीं होता। गो-सेवा तथा देव-पूजाके लिये भी कोई वस्तु लेनेवाला ब्राह्मण दण्डके योग्य नहीं है। जो दुष्ट पुरुष किसीका प्राण लेनेके लिये उद्यत हो, उसका वध कर डालना चाहिये। दूसरोंके घर और क्षेत्रका अपहरण करनेवाले, परस्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवाले, आग लगानेवाले, जहर देनेवाले तथा हथियार उठाकर मारनेको उद्यत हुए पुरुषको प्राणदण्ड देना ही उचित है॥ २३—३९॥

राजा गौओंको मारनेवाले तथा आततायी पुरुषोंका वध करे। परायी स्त्रीसे बातचीत न करे और मना करनेपर किसीके घरमें न घुसे। स्वेच्छासे पतिका वरण करनेवाली स्त्री राजाके द्वारा दण्ड पानेके योग्य नहीं है, किंतु यदि नीच वर्णका पुरुष ऊँचे वर्णकी स्त्रीके साथ समागम करे तो वह वधके योग्य है। जो स्त्री अपने स्वामीका उल्लंघन (करके दूसरेके साथ व्यभिचार) करे, उसको कुत्तोंसे नोचवा देना चाहिये। जो सजातीय परपुरुषके सम्पर्कसे दूषित हो चुकी हो, उसे (सम्पत्तिके अधिकारसे वञ्चित करके) शरीर-निर्वाहमात्रके लिये अन्न देना चाहिये। पतिके ज्येष्ठ भ्रातासे व्यभिचार करके दूषित हुई नारीके मस्तकका बाल मुँडवा देना चाहिये। यदि ब्राह्मण वैश्यजातिकी स्त्रीसे और क्षत्रिय नीच जातिकी स्त्रीके साथ समागम करें तो उनके लिये भी यही दण्ड है। शूद्राके साथ व्यभिचार करनेवाले क्षत्रिय और वैश्यको प्रथम साहस (ढाई सौ पण)-का दण्ड देना उचित है। यदि वेश्या एक पुरुषसे वेतन लेकर लोभवश दूसरेके पास चली जाय तो वह दूना वेतन वापस करे और दण्ड भी दूना दे। स्त्री, पुत्र, दास, शिष्य तथा सहोदर भाई यदि अपराध करें तो उन्हें रस्सी अथवा बाँसकी छड़ीसे पीट देना चाहिये। प्रहार पीठपर ही करना उचित है, मस्तकपर नहीं। मस्तकपर प्रहार करनेवालेको चोरका दण्ड मिलता है॥ ४०—४६॥

जो रक्षाके कामपर नियुक्त होकर प्रजासे रुपये ऐंठते हों, उनका सर्वस्व छीनकर राजा उन्हें अपने राज्यसे बाहर कर दे। जो लोग किसी कार्यार्थीके द्वारा उसके निजी कार्यमें नियुक्त होकर वह कार्य चौपट कर डालते हैं, राजाको उचित है कि उन क्रूर और निर्दयी पुरुषोंका सारा धन छीन ले। यदि कोई मन्त्री अथवा प्राड्विवाक (न्यायाधीश) विपरीत कार्य करे तो राजा उसका सर्वस्व लेकर उसे अपने राज्यसे बाहर निकाल दे। गुरुपत्नीगामीके शरीरपर भगका चिह्न अंकित करा दे। सुरापान करनेवाले महापातकीके ऊपर शराबखानेके झंडेका चिह्न दगवा दे। चोरी

करनेवालेपर कुत्तेका नाखून गोदवा दे और ब्रह्महत्या करनेवालेके भालपर नरमुण्डका चिह्न अंकित कराना चाहिये। पापाचारी नीचोंको राजा मरवा डाले और ब्राह्मणोंको देश-निकाला दे दे तथा महापातकी पुरुषोंका धन वरुण देवताके अर्पण कर दे (जलमें डाल दे)। गाँवमें भी जो लोग चोरोंको भोजन देते हों तथा चोरीका माल रखनेके लिये घर और खजानेका प्रबन्ध करते हों, उन सबका भी वध करा देना उचित है। अपने राज्यके भीतर अधिकारके कार्यपर नियुक्त हुए सामन्त नरेश भी यदि पापमें प्रवृत्त हों तो उनका अधिकार छीन लेना चाहिये। जो चोर रातमें सेंध लगाकर चोरी करते हैं, राजाको उचित है कि उनके दोनों हाथ काटकर उन्हें तीखी शूलीपर चढ़ा दे। इसी प्रकार पोखरा तथा देवमन्दिर नष्ट करनेवाले पुरुषोंको भी प्राणदण्ड दे। जो बिना किसी आपत्तिके सड़कपर पेशाब, पाखाना आदि अपवित्र वस्तु छोड़ता है, उसपर कार्षापणोंका दण्ड लगाना चाहिये तथा उसीसे वह अपवित्र वस्तु फेंकवाकर वह जगह साफ करानी चाहिये। प्रतिमा तथा सीढ़ीको तोड़नेवाले मनुष्योंपर पाँच सौ कर्षका दण्ड लगाना चाहिये। जो अपने प्रति समान बर्ताव करनेवालोंके साथ विषमताका बर्ताव करता है, अथवा किसी वस्तुकी कीमत लगानेमें बेईमानी करता है, उसपर मध्यम साहस (पाँच सौ कर्ष)-का दण्ड लगाना चाहिये। जो लोग बनियोंसे बहुमूल्य पदार्थ लेकर उसकी कीमत रोक लें, राजा उनपर पृथक्-पृथक् उत्तम साहस (एक हजार कर्ष)-का दण्ड लगावे। जो वैश्य अपने सामानोंको खराब करके, अर्थात् बढ़िया चीजोंमें घटिया चीजें मिलाकर उन्हें मनमाने दामपर बेचे, वह मध्यम साहस (पाँच सौ कर्ष)-का दण्ड पानेके योग्य है। जालसाजको उत्तम साहस (एक हजार कर्ष)-का और कलहपूर्वक अपकार करनेवालेको उससे दूना दण्ड देना उचित है। अभक्ष्य-भक्षण करनेवाले ब्राह्मण अथवा शूद्रपर कृष्णलका दण्ड लगाना चाहिये। जो तराजूपर शासन करता है, अर्थात् डंडी मारकर कम तौल देता है, जालसाजी करता है तथा ग्राहकोंको हानि पहुँचाता है—इन सबको—और जो इनके साथ व्यवहार करता है, उसको भी उत्तम साहसका दण्ड दिलाना चाहिये। जो स्त्री जहर देनेवाली, आग लगानेवाली तथा पति, गुरु, ब्राह्मण और संतानकी हत्या करनेवाली हो, उसके हाथ, कान, नाक और ओठ कटवाकर, बैलकी पीठपर चढ़ाकर उसे राज्यसे बाहर निकाल देना चाहिये। खेत, घर, गाँव और जंगल नष्ट करनेवाले तथा राजाकी पत्नीसे समागम करनेवाले मनुष्य घास-फूसकी आगमें जला देने योग्य हैं। जो राजाकी आज्ञाको घटा-बढ़ाकर लिखता है तथा परस्त्रीगामी पुरुषों और चोरोंको बिना दण्ड दिये ही छोड़ देता है, वह उत्तम साहसके दण्डका अधिकारी है। राजाकी सवारी और आसनपर बैठनेवालेको भी उत्तम साहसका ही दण्ड देना चाहिये। जो न्यायानुसार पराजित होकर भी अपनेको अपराजित मानता है, उसे सामने आनेपर फिर जीते और उसपर दूना दण्ड लगावे। जो आमन्त्रित नहीं है, उसको बुलाकर लानेवाला पुरुष वधके योग्य है। जो अपराधी दण्ड देनेवाले पुरुषके हाथसे छूटकर भाग जाता है, वह पुरुषार्थसे हीन है। दण्डकर्ताको उचित है कि ऐसे भीरु मनुष्यको शारीरिक दण्ड न देकर उसपर धनका दण्ड लगावे॥ ४७—६७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दण्ड-प्रणयनका कथन' नामक दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२७॥

दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

युद्ध-यात्राके सम्बन्धमें विचार

पुष्कर कहते हैं—जब राजा यह समझ ले कि किसी बलवान् आक्रन्द[1] (राजा)-के द्वारा मेरा पार्ष्णिग्राह[2] राजा पराजित कर दिया गया है तो वह सेनाको युद्धके लिये यात्रा करनेकी आज्ञा दे। पहले इस बातको समझ ले कि मेरे सैनिक खूब हृष्ट-पुष्ट हैं, भृत्योंका भलीभाँति भरण-पोषण हुआ है, मेरे पास अधिक सेना मौजूद है तथा मैं मूलकी रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ हूँ; इसके बाद सैनिकोंसे घिरकर शिविरमें जाय। जिस समय शत्रुपर कोई संकट पड़ा हो, दैवी और मानुषी आदि बाधाओंसे उसका नगर पीड़ित हो, तब युद्धके लिये यात्रा करनी चाहिये। जिस दिशामें भूकम्प आया हो, जिसे केतुने अपने प्रभावसे दूषित किया हो, उसी ओर आक्रमण करे। जब सेनामें शत्रुको नष्ट करनेका उत्साह हो, योद्धाओंके मनमें विपक्षियोंके प्रति क्रोधका भाव प्रकट हुआ हो, शुभसूचक अंग फड़क रहे हों, अच्छे स्वप्न दिखायी देते हों तथा उत्तम निमित्त और शकुन हो रहे हों, तब शत्रुके नगरपर चढ़ाई करनी चाहिये। यदि वर्षाकालमें यात्रा करनी हो तो जिसमें पैदल और हाथियोंकी संख्या अधिक हो, ऐसी सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दे। हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें ऐसी सेना ले जाय, जिसमें रथ और घोड़ोंकी संख्या अधिक हो। वसन्त और शरद्के आरम्भमें चतुरंगिणी सेनाको युद्धके लिये नियुक्त करे। जिसमें पैदलोंकी संख्या अधिक हो, वही सेना सदा शत्रुओंपर विजय पाती है। यदि शरीरके दाहिने भागमें कोई अंग फड़क रहा हो तो उत्तम है। बायें अंग, पीठ तथा हृदयका फड़कना अच्छा नहीं है। इस प्रकार शरीरके चिह्नों, फोड़े-फुंसियों तथा फड़कने

१-२. अग्निपुराणके दो सौ तैंतीसवें और दो सौ चालीसवें अध्यायोंमें, महाभारत-शान्तिपर्वमें तथा 'कामन्दक-नीतिसार'के आठवें सर्गमें द्वादश राजमण्डलका वर्णन आया है। उसमें 'विजिगीषु'को बीचमें रखकर उसके सम्मुखकी दिशामें पाँच राजमण्डलोंका और पीछेकी दिशामें चार राजमण्डलोंका विचार किया गया है। अगल-बगलके दो बड़े राज्य, 'मध्यम' और 'उदासीन मण्डल' कहे गये हैं। यथा—

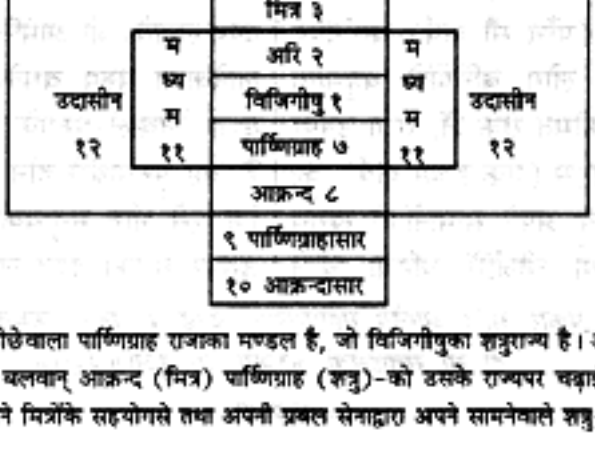

इस चित्रमें विजिगीषुके पीछेवाला पार्ष्णिग्राह राजाका मण्डल है, जो विजिगीषुका शत्रुराज्य है। आक्रन्द विजिगीषुका मित्र होता है। पुष्कर कहते हैं—जब कोई बलवान् आक्रन्द (मित्र) पार्ष्णिग्राह (शत्रु)-को उसके राज्यपर चढ़ाई करके दबा दे तो उस शत्रुके दुर्बल पड़ जानेपर विजिगीषु अपने मित्रोंके सहयोगसे तथा अपनी प्रबल सेनाद्वारा अपने सामनेवाले शत्रु-राज्यपर चढ़ाई कर सकता है।

आदिके शुभाशुभ फलोंको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। स्त्रियोंके लिये इसके विपरीत फल बताया गया है। उनके बायें अंगका फड़कना शुभ होता है॥ १—८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धयात्राका वर्णन' नामक दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२८॥

दो सौ उनतीसवाँ अध्याय

अशुभ और शुभ स्वप्नोंका विचार

पुष्कर कहते हैं— अब मैं शुभाशुभ स्वप्नोंका वर्णन करूँगा तथा दुःस्वप्न-नाशके उपाय भी बतलाऊँगा। नाभिके सिवा शरीरके अन्य अंगोंमें तृण और वृक्षोंका उगना, काँसके बर्तनोंका मस्तकपर रखकर फोड़ा जाना, माथा मुँड़ाना, नग्न होना, मैले कपड़े पहनना, तेल लगना, कीचड़ लपेटना, ऊँचेसे गिरना, विवाह होना, गीत सुनना, वीणा आदिके बाजे सुनकर मन बहलाना, हिंडोलेपर चढ़ना, पद्म और लोहोंका उपार्जन, सर्पोंको मारना, लाल फूलसे भरे हुए वृक्षों तथा चाण्डालको देखना, सूअर, कुत्ते, गदहे और ऊँटोंपर चढ़ना, चिड़ियोंके मांसका भक्षण करना, तेल पीना, खिचड़ी खाना, माताके गर्भमें प्रवेश करना, चितापर चढ़ना, इन्द्रके उपलक्ष्यमें खड़ी की हुई ध्वजाका टूट पड़ना, सूर्य और चन्द्रमाका गिरना, दिव्य, अन्तरिक्ष और भूलोकमें होनेवाले उत्पातोंका दिखायी देना, देवता, ब्राह्मण, राजा और गुरुओंका कोप होना, नाचना, हँसना, व्याह करना, गीत गाना, वीणाके सिवा अन्य प्रकारके बाजोंका स्वयं बजाना, नदीमें डूबकर नीचे जाना, गोबर, कीचड़ तथा स्याही मिलाये हुए जलसे स्नान करना, कुमारी कन्याओंका आलिंगन, पुरुषोंका एक-दूसरेके साथ मैथुन, अपने अंगोंकी हानि, वमन और विरेचन करना, दक्षिण दिशाकी ओर जाना, रोगसे पीड़ित होना, फलोंकी हानि, धातुओंका भेदन, घरोंका गिरना, घरोंमें झाड़ू देना, पिशाचों, राक्षसों, वानरों तथा चाण्डाल आदिके साथ खेलना, शत्रुसे अपमानित होना, उसकी ओरसे संकटका प्राप्त होना, गेरुआ वस्त्र धारण करना, गेरुए वस्त्रोंसे खेलना, तेल पीना या उसमें नहाना, लाल फूलोंकी माला पहनना और लाल ही चन्दन लगाना—ये सब बुरे स्वप्न हैं। इन्हें दूसरोंपर प्रकट न करना अच्छा है। ऐसे स्वप्न देखकर फिरसे सो जाना चाहिये। इसी प्रकार स्वप्नदोषकी शान्तिके लिये स्नान, ब्राह्मणोंका पूजन, तिलोंका हवन, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्यके गणोंकी पूजा, स्तुतिका पाठ तथा पुरुषसूक्त आदिका जप करना उचित है। रातके पहले प्रहरमें देखे हुए स्वप्न एक वर्षतक फल देनेवाले होते हैं, दूसरे प्रहरके स्वप्न छः महीनेमें, तीसरे प्रहरके तीन महीनेमें, चौथे प्रहरके पंद्रह दिनोंमें और अरुणोदयकी वेलामें देखे हुए स्वप्न दस ही दिनोंमें अपना फल प्रकट करते हैं॥ १—१७॥

यदि एक ही रातमें शुभ और अशुभ—दोनों ही प्रकारके स्वप्न दिखायी पड़ें तो उनमें जिसका पीछे दर्शन होता है, उसीका फल बतलाना चाहिये। अतः शुभ स्वप्न देखनेके पश्चात् सोना अच्छा नहीं माना जाता है। स्वप्नमें पर्वत, महल, हाथी, घोड़े और बैलपर चढ़ना हितकर होता है। परशुरामजी! यदि पृथ्वीपर या आकाशमें सफेद फूलोंसे भरे हुए वृक्षोंका दर्शन हो, अपनी नाभिसे वृक्ष अथवा तिनका उत्पन्न हो, अपनी भुजाएँ और मस्तक अधिक दिखायी दें, सिरके बाल पक जायँ तो उसका फल उत्तम होता है। सफेद फूलोंकी माला और श्वेत वस्त्र धारण करना, चन्द्रमा, सूर्य और ताराओंको पकड़ना, परिमार्जन करना, इन्द्रकी ध्वजाका आलिंगन करना, ध्वजाको

ऊँचे उठाना, पृथ्वीपर पड़ती हुई जलकी धाराको अपने ऊपर रोकना, शत्रुओंकी बुरी दशा देखना, वाद-विवाद, जूआ तथा संग्राममें अपनी विजय देखना, खीर खाना, रक्तका देखना, खूनसे नहाना, सुरा, मद्य अथवा दूध पीना, अस्त्रोंसे घायल होकर धरतीपर छटपटाना, आकाशका स्वच्छ होना तथा गाय, भैंस, सिंहिनी, हथिनी और घोड़ीको मुँहसे दुहना—ये सब उत्तम स्वप्न हैं। देवता, ब्राह्मण और गुरुओंकी प्रसन्नता, गौओंके सींग अथवा चन्द्रमासे गिरे हुए जलके द्वारा अपना अभिषेक होना—ये स्वप्न राज्य प्रदान करनेवाले हैं, ऐसा समझना चाहिये। परशुरामजी! अपना राज्याभिषेक होना, अपने मस्तकका काटा जाना, मरना, आगमें पड़ना, गृह आदिमें लगी हुई आगके भीतर जलना, राजचिह्नोंका प्राप्त होना, अपने हाथसे वीणा बजाना—ऐसे स्वप्न भी उत्तम एवं राज्य प्रदान करनेवाले हैं। जो स्वप्नके अन्तिम भागमें राजा, हाथी, घोड़ा, सुवर्ण, बैल तथा गायको देखता है, उसका कुटुम्ब बढ़ता है। बैल, हाथी, महलकी छत, पर्वत-शिखर तथा वृक्षपर चढ़ना, रोना, शरीरमें घी और विष्ठाका लग जाना तथा अगम्या स्त्रीके साथ समागम करना—ये सब शुभ स्वप्न हैं॥ १८—३१॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शुभाशुभ स्वप्न एवं दुःस्वप्न-निवारण' नामक दो सौ उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२९॥

दो सौ तीसवाँ अध्याय

अशुभ और शुभ शकुन

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! श्वेत वस्त्र, स्वच्छ जल, फलसे भरा हुआ वृक्ष, निर्मल आकाश, खेतमें लगे हुए अन्न और काला धान्य—इनका यात्राके समय दिखायी देना अशुभ है। रुई, तृणमिश्रित सूखा गोबर (कंडा), धन, अङ्गार, गृह, करायल, मूँड़ मुड़ाकर तेल लगाया हुआ नग्न साधु, लोहा, कीचड़, चमड़ा, बाल, पागल मनुष्य, हिंजड़ा, चाण्डाल, श्वपच आदि, बन्धनकी रक्षा करनेवाले मनुष्य, गर्भिणी स्त्री, विधवा, तिलकी खली, मृत्यु, भूसी, राख, खोपड़ी, हड्डी और फूटा हुआ बर्तन—युद्धयात्राके समय इनका दिखायी देना अशुभ माना जाता है। बाजोंका वह शब्द, जिसमें फूटे हुए झाँझकी भयंकर ध्वनि सुनायी पड़ती हो, अच्छा नहीं माना गया है। 'चले आओ'—यह शब्द यदि सामनेकी ओरसे सुनायी पड़े तो उत्तम है, किंतु पीछेकी ओरसे शब्द हो तो अशुभ माना गया है। 'जाओ'—यह शब्द यदि पीछेकी ओरसे हो तो उत्तम है; किंतु आगेकी ओरसे हो तो निन्दित होता है। 'कहाँ जाते हो? ठहरो, न जाओ; वहाँ जानेसे तुम्हें क्या लाभ है?'—ऐसे शब्द अनिष्टकी सूचना देनेवाले हैं। यदि ध्वजा आदिके ऊपर चील आदि मांसाहारी पक्षी बैठ जायँ, घोड़े, हाथी आदि वाहन लड़खड़ाकर गिर पड़ें, हथियार टूट जायँ, हार आदिके द्वारा मस्तकपर चोट लगे तथा छत्र और वस्त्र आदिको कोई गिरा दे तो ये सब अपशकुन मृत्युका कारण बनते हैं। भगवान् विष्णुकी पूजा और स्तुति करनेसे अमंगलका नाश होता है। यदि दूसरी बार इन अपशकुनोंका दर्शन हो तो घर लौट जाय॥ १—८ ½॥

यात्राके समय श्वेत पुष्पोंका दर्शन श्रेष्ठ माना गया है। भरे हुए घड़ेका दिखायी देना तो बहुत ही उत्तम है। मांस, मछली, दूरका कोलाहल, अकेला वृद्ध पुरुष, पशुओंमें बकरे, गौ, घोड़े तथा हाथी, देवप्रतिमा, प्रज्वलित अग्नि, दूर्वा, ताजा गोबर, वेश्या, सोना, चाँदी, रत्न, बच, सरसों आदि ओषधियाँ, मूँग, आयुधोंमें तलवार, छाता, पीढ़ा, राजचिह्न, जिसके पास कोई रोता न हो ऐसा शव, फल, घी, दही, दूध, अक्षत, दर्पण, मधु, शंख, ईख, शुभसूचक वचन, भक्त पुरुषोंका

गाना-बजाना, मेघकी गम्भीर गर्जना, बिजलीकी चमक तथा मनका संतोष—ये सब शुभ शकुन हैं। एक ओर सब प्रकारके शुभ शकुन और दूसरी ओर मनकी प्रसन्नता—ये दोनों बराबर हैं॥ ९—१३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शकुन-वर्णन' नामक दो सौ तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३०॥

दो सौ इकतीसवाँ अध्याय

शकुनके भेद तथा विभिन्न जीवोंके दर्शनसे होनेवाले शुभाशुभ फलका वर्णन

पुष्कर कहते हैं— राजाके ठहरने, जाने अथवा प्रश्न करनेके समय होनेवाले शकुन उसके देश और नगरके लिये शुभ और अशुभ फलकी सूचना देते हैं। शकुन दो प्रकारके होते हैं— 'दीप्त' और 'शान्त'। दैवका विचार करनेवाले ज्यौतिषियोंने सम्पूर्ण दीप्त शकुनोंका फल अशुभ तथा शान्त शकुनोंका फल शुभ बतलाया है। वेलादीप्त, दिग्दीप्त, देशदीप्त, क्रियादीप्त, रुतदीप्त और जातिदीप्तके भेदसे दीप्त शकुन छः प्रकारके बताये गये हैं। उनमें पूर्व-पूर्वको अधिक प्रबल समझना चाहिये। दिनमें विचरनेवाले प्राणी रात्रिमें और रात्रिमें चलनेवाले प्राणी दिनमें विचरते दिखायी दें तो उसे 'वेलादीप्त' जानना चाहिये। इसी प्रकार जिस समय नक्षत्र, लग्न और ग्रह आदि क्रूर अवस्थाको प्राप्त हो जायँ, वह भी 'वेलादीप्त'के ही अन्तर्गत है। सूर्य जिस दिशाको जानेवाले हों, वह 'धूमिता', जिसमें मौजूद हों, वह 'ज्वलिता' तथा जिसे छोड़ आये हों, वह 'अंगारिणी' मानी गयी है। ये तीन दिशाएँ 'दीप्त' और शेष पाँच दिशाएँ 'शान्त' कहलाती हैं। दीप्त दिशामें जो शकुन हो, उसे 'दिग्दीप्त' कहा गया है। यदि गाँवमें जंगली और जंगलमें ग्रामीण पशु-पक्षी आदि मौजूद हों तो वह निन्दित देश है। इसी प्रकार जहाँ निन्दित वृक्ष हों, वह स्थान भी निन्द्य एवं अशुभ माना गया है॥ १—७॥

विप्रवर! अशुभ देशमें जो शकुन होता है, उसे 'देशदीप्त' समझना चाहिये। अपने वर्णधर्मके विपरीत अनुचित कर्म करनेवाला पुरुष 'क्रियादीप्त' बतलाया गया है। (उसका दिखायी देना 'क्रियादीप्त' शकुनके अन्तर्गत है।) फटी हुई भयंकर आवाजका सुनायी पड़ना 'रुतदीप्त' कहलाता है। केवल मांसभोजन करनेवाले प्राणीको 'जातिदीप्त' समझना चाहिये। (उसका दर्शन भी 'जातिदीप्त' शकुन है।) दीप्त अवस्थाके विपरीत जो शकुन हो, वह 'शान्त' बतलाया गया है। उसमें भी उपर्युक्त सभी भेद यत्नपूर्वक जानने चाहिये। यदि शान्त और दीप्तके भेद मिले हुए हों तो उसे 'मिश्र शकुन' कहते हैं। इस प्रकार विचारकर उसका फलाफल बतलाना चाहिये॥ ८—१०॥

गौ, घोड़े, ऊँट, गदहे, कुत्ते, सारिका (मैना), गृहगोधिका (गिरगिट), चटक (गौरैया), भास (चील या मुर्गा) और कछुए आदि प्राणी 'ग्रामवासी' कहे गये हैं। बकरा, भेड़ा, तोता, गजराज, सूअर, भैंसा और कौआ—ये ग्रामीण भी होते हैं और जंगली भी। इनके अतिरिक्त और सभी जीव जंगली कहे गये हैं। बिल्ली और मुर्गा भी ग्रामीण तथा जंगली होते हैं; उनके रूपमें भेद होता है, इसीसे वे सदा पहचाने जाते हैं। गोकर्ण (खच्चर), मोर, चक्रवाक, गदहे, हारीत, कौए, कुलाह, कुक्कुभ, बाज, गीदड़, खञ्जरीट, वानर, शतघ्न, चटक, कोयल, नीलकण्ठ (श्येन), कपिञ्जल (चातक), तीतर, शतपत्र, कबूतर, खञ्जन, दात्यूह (जलकाक), शुक, राजीव, मुर्गा, भरदूल और सारंग—ये दिनमें चलनेवाले प्राणी हैं। वागुरी, उल्लू, शरभ, क्रौञ्च, खरगोश, कछुआ, लोमासिका और पिंगलिका—ये रात्रिमें चलनेवाले प्राणी

बताये गये हैं। हंस, मृग, बिलाव, नेवला, रीछ, सर्प, वृकारि, सिंह, व्याघ्र, ऊँट, ग्रामीण सूअर, मनुष्य, श्वाविद, वृषभ, गोमायु, वृक, कोयल, सारस, घोड़े, गोधा और कौपीनधारी पुरुष—ये दिन और रात दोनोंमें चलनेवाले हैं॥ ११—१९॥

युद्ध और युद्धकी यात्राके समय यदि ये सभी जीव झुंड बाँधकर सामने आवें तो विजय दिलानेवाले बताये गये हैं; किंतु यदि पीछेसे आवें तो मृत्युकारक माने गये हैं। यदि नीलकण्ठ अपने घोंसलेसे निकलकर आवाज देता हुआ सामने स्थित हो जाय तो वह राजाको अपमानकी सूचना देता है और जब वह वामभागमें आ जाय तो कलहकारक एवं भोजनमें बाधा डालनेवाला होता है। यात्राके समय उसका दर्शन उत्तम माना गया है; उसके बायें अंगका अवलोकन भी उत्तम है। यदि यात्राके समय मोर जोर-जोरसे आवाज दे तो चोरोंके द्वारा अपने धनकी चोरी होनेका संदेश देता है॥ २०—२२॥

परशुरामजी! प्रस्थानकालमें यदि मृग आगे-आगे चले तो वह प्राण लेनेवाला होता है। रीछ, चूहा, सियार, बाघ, सिंह, बिलाव, गदहे—ये यदि प्रतिकूल दिशामें जाते हों, गदहा जोर-जोरसे रेंकता हो और कपिञ्जल पक्षी बायीं अथवा दाहिनी ओर स्थित हो तो ये सभी उत्तम माने गये हैं। किंतु कपिञ्जल पक्षी यदि पीछेकी ओर हो तो उसका फल निन्दित है। यात्राकालमें तीतरका दिखायी देना अच्छा नहीं है। मृग, सूअर और चितकबरे हिरन-ये यदि बायें होकर फिर दाहिने हो जायँ तो सदा कार्यसाधक होते हैं। इसके विपरीत यदि दाहिनेसे बायें चले जायँ तो निन्दित माने गये हैं। बैल, घोड़े, गीदड़, बाघ, सिंह, बिलाव और गदहे यदि दाहिनेसे बायें जायँ तो ये मनोवाञ्छित वस्तुकी सिद्धि करनेवाले होते हैं, ऐसा समझना चाहिये। शृगाल, श्याममुख, छुच्छू (छछूँदर), पिंगला, गृहगोधिका, शूकरी, कोयल तथा पुंल्लिङ्ग नाम धारण करनेवाले जीव यदि वाम-भागमें हों तथा स्त्रीलिंग नामवाले जीव, भास, कारुष, बंदर, श्रीकर्ण, छित्त्वर, कपि, पिप्पीक, रुरु और श्येन—ये दक्षिण दिशामें हों तो शुभ हैं। यात्राकालमें जातिक, सर्प, खरगोश, सूअर तथा गोधाका नाम लेना भी शुभ माना गया है॥ २३—२९॥

रीछ और वानरोंका विपरीत दिशामें दिखायी देना अनिष्टकारक होता है। प्रस्थान करनेपर जो कार्यसाधक बलवान् शकुन प्रतिदिन दिखायी देता हो, उसका फल विद्वान् पुरुषोंको उसी दिनके लिये बतलाना चाहिये, अर्थात् जिस-जिस दिन शकुन दिखायी देता है, उसी-उसी दिन उसका फल होता है। परशुरामजी! पागल, भोजनार्थी बालक तथा वैरी पुरुष यदि गाँव या नगरकी सीमाके भीतर दिखायी दें तो इनके दर्शनका कोई फल नहीं होता है, ऐसा समझना चाहिये। यदि सियारिन एक, दो, तीन या चार बार आवाज लगावे तो वह शुभ मानी गयी है। इसी प्रकार पाँच और छः बार बोलनेपर वह अशुभ और सात बार बोलनेपर शुभ बतायी गयी है। सात बारसे अधिक बोले तो उसका कोई फल नहीं होता। यदि रास्तेमें सूर्यकी ओर उठती हुई कोई ऐसी ज्वाला दिखायी दे, जिसपर दृष्टि पड़ते ही मनुष्योंके रोंगटे खड़े हो जायँ और सेनाके वाहन भयभीत हो उठें, तो वह भय बढ़ानेवाली—महान् भयकी सूचना देनेवाली होती है, ऐसा समझना चाहिये। यदि पहले किसी उत्तम देशमें सारंगका दर्शन हो तो वह मनुष्यके लिये एक वर्षतक शुभकी सूचना देता है। उसे देखनेसे अशुभमें भी शुभ होता है। अतः यात्राके प्रथम दिन मनुष्य ऐसे गुणवाले किसी सारंगका दर्शन करे तथा अपने लिये एक वर्षतक उपर्युक्त रूपसे शुभ फलकी प्राप्ति होनेवाली समझे॥ ३०—३६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शकुन-वर्णन' नामक दो सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३१॥

दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय

कौए, कुत्ते, गौ, घोड़े और हाथी आदिके द्वारा होनेवाले शुभाशुभ शकुनोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—जिस मार्गसे बहुतेरे कौए शत्रुके नगरमें प्रवेश करें, उसी मार्गसे घेरा डालनेपर उस नगरके ऊपर अपना अधिकार प्राप्त होता है। यदि किसी सेना या समुदायमें बायीं ओरसे भयभीत कौआ रोता हुआ प्रवेश करे तो वह आनेवाले अपार भयकी सूचना देता है। छाया (तम्बू, रावटी आदि), अङ्ग, वाहन, उपानह, छत्र और वस्त्र आदिके द्वारा कौएको कुचल डालनेपर अपने लिये मृत्युकी सूचना मिलती है। उसकी पूजा करनेपर अपनी भी पूजा होती है तथा अन्न आदिके द्वारा उसका इष्ट करनेपर अपना भी शुभ होता है। यदि कौआ दरवाजेपर बारंबार आया-जाया करे तो वह उस घरके किसी परदेशी व्यक्तिके आनेकी सूचना देता है तथा यदि वह कोई लाल या जली हुई वस्तु मकानके ऊपर डाल देता है तो उससे आग लगनेकी सूचना मिलती है॥ १—४॥

भृगुनन्दन! यदि वह मनुष्यके आगे कोई लाल वस्तु डाल देता है तो उसके कैद होनेकी बात बतलाता है और यदि कोई पीले रंगका द्रव्य सामने गिराता है तो उससे सोने-चाँदीकी प्राप्ति सूचित होती है। सारांश यह कि वह जिस द्रव्यको अपने पास ला देता है, उसकी प्राप्ति और जिस द्रव्यको अपने यहाँसे उठा ले जाता है, उसकी हानिकी ओर संकेत करता है। यदि वह अपने आगे कच्चा मांस लाकर डाल दे तो धनकी, मिट्टी गिरावे तो पृथ्वीकी और कोई रत्न डाल दे तो महान् साम्राज्यकी प्राप्ति होती है। यदि यात्रा करनेवालेकी अनुकूल दिशा (सामने)-की ओर कौआ जाय तो वह कल्याणकारी और कार्यसाधक होता है, परंतु यदि प्रतिकूल दिशाकी ओर जाय तो उसे कार्यमें बाधा डालनेवाला तथा भयंकर जानना चाहिये। यदि कौआ सामने काँव-काँव करता हुआ आ जाय तो वह यात्राका विघातक होता है। कौएका वामभागमें होना शुभ माना गया है और दाहिने भागमें होनेपर वह कार्यका नाश करता है। वामभागमें होकर कौआ यदि अनुकूल दिशाकी ओर चले तो 'श्रेष्ठ' और दाहिने होकर अनुकूल दिशाकी ओर चले तो 'मध्यम' माना जाता है; किंतु वामभागमें होकर यदि वह विपरीत दिशाकी ओर जाय तो यात्राका निषेध करता है। यात्राकालमें घरपर कौआ आ जाय तो वह अभीष्ट कार्यकी सिद्धि सूचित करता है। यदि वह एक पैर उठाकर एक आँखसे सूर्यकी ओर देखे तो भय देनेवाला होता है। यदि कौआ किसी वृक्षके खोखलेमें बैठकर आवाज दे तो वह महान् अनर्थका कारण है। ऊसर भूमिमें बैठा हो तो भी अशुभ होता है, किंतु यदि वह कीचड़में लिपटा हुआ हो तो उत्तम माना गया है। परशुरामजी! जिसकी चोंचमें मल आदि अपवित्र वस्तुएँ लगी हों, वह कौआ दीख जाय तो सभी कार्योंका साधक होता है। कौएकी भाँति अन्य पक्षियोंका भी फल जानना चाहिये॥ ५—१३॥

यदि सेनाकी छावनीके दाहिने भागमें कुत्ते आ जायँ तो वे ब्राह्मणोंके विनाशकी सूचना देते हैं। इन्द्रध्वजके स्थानमें हों तो राजाका और गोपुर (नगरद्वार) पर हों तो नगराधीशकी मृत्यु सूचित करते हैं। घरके भीतर भूँकता हुआ कुत्ता आवे तो गृहस्वामीकी मृत्युका कारण होता है। वह जिसके बायें अङ्गको सूँघता है, उसके कार्यकी सिद्धि होती है। यदि दाहिने अङ्ग और बायीं भुजाको सूँघे तो भय उपस्थित होता है। यात्रीके सामनेकी

ओरसे आवे तो यात्रामें विघ्न डालनेवाला होता है। भृगुनन्दन! यदि कुत्ता राह रोककर खड़ा हो तो मार्गमें चोरोंका भय सूचित करता है; मुँहमें हड्डी लिये हो तो उसे देखकर यात्रा करनेपर कोई लाभ नहीं होता तथा रस्सी या चिथड़ा मुखमें रखनेवाला कुत्ता भी अशुभसूचक होता है। जिसके मुँहमें जूता या मांस हो, ऐसा कुत्ता सामने हो तो शुभ होता है। यदि उसके मुँहमें कोई अमाङ्गलिक वस्तु तथा केश आदि हो तो उससे अशुभकी सूचना मिलती है। कुत्ता जिसके आगे पेशाब करके चला जाता है, उसके ऊपर भय आता है; किन्तु मूत्र त्यागकर यदि वह किसी शुभ स्थान, शुभ वृक्ष तथा माङ्गलिक वस्तुके समीप चला जाय तो वह उस पुरुषके कार्यका साधक होता है। परशुरामजी! कुत्तेकी ही भाँति गीदड़ आदि भी समझने चाहिये॥ १४—२०॥

यदि गौएँ अकारण ही डकराने लगें तो समझना चाहिये कि स्वामीके ऊपर भय आनेवाला है। रातमें उनके बोलनेसे चोरोंका भय सूचित होता है और यदि वे विकृत स्वरमें क्रन्दन करें तो मृत्युकी सूचना मिलती है। यदि रातमें बैल गर्जना करे तो स्वामीका कल्याण होता है और साँड आवाज दे तो राजाको विजय प्रदान करता है। यदि अपनी दी हुई तथा अपने घरपर मौजूद रहनेवाली गौएँ अभक्ष्य-भक्षण करें और अपने बछड़ोंपर भी स्नेह करना छोड़ दें तो गर्भक्षयकी सूचना देनेवाली मानी गयी हैं। पैरोंसे भूमि खोदनेवाली, दीन तथा भयभीत गौएँ भय लानेवाली होती हैं। जिनका शरीर भीगा हो, रोम-रोम प्रसन्नतासे खिला हो और सींगोंमें मिट्टी लगी हुई हो, वे गौएँ शुभ होती हैं। विज्ञ पुरुषको भैंस आदिके सम्बन्धमें भी यही सब शकुन बताना चाहिये॥ २१—२४½॥

जीन कसे हुए अपने घोड़ेपर दूसरेका चढ़ना, उस घोड़ेका जलमें बैठना और भूमिपर एक ही जगह चक्कर लगाना अनिष्टका सूचक है। बिना किसी कारणके घोड़ेका सो जाना विपत्तिमें डालनेवाला होता है। यदि अकस्मात् जई और गुड़की ओरसे घोड़ेको अरुचि हो जाय, उसके मुँहसे खून गिरने लगे तथा उसका सारा बदन काँपने लगे तो ये सब अच्छे लक्षण नहीं हैं; इनसे अशुभकी सूचना मिलती है। यदि घोड़ा बगुलों, कबूतरों और सारिकाओंसे खिलवाड़ करे तो मृत्युका संदेश देता है। उसके नेत्रोंसे आँसू बहे तथा वह जीभसे अपना पैर चाटने लगे तो विनाशका सूचक होता है। यदि वह बायें टापसे धरती खोदे, बायीं करवटसे सोये अथवा दिनमें नींद ले तो शुभकारक नहीं माना जाता। जो घोड़ा एक बार मूत्र करनेवाला हो, अर्थात् जिसका मूत्र एक बार थोड़ा-सा निकलकर फिर रुक जाय तथा निद्राके कारण जिसका मुँह मलिन हो रहा हो, वह भय उपस्थित करनेवाला होता है। यदि वह चढ़ने न दे अथवा चढ़ते समय उलटे घरमें चला जाय या सवारकी बायीं पसलीका स्पर्श करने लगे तो वह यात्रामें विघ्न पड़नेकी सूचना देता है। यदि शत्रु-योद्धाको देखकर हींसने लगे और स्वामीके चरणोंका स्पर्श करे तो वह विजय दिलानेवाला होता है॥ २५—३१॥

यदि हाथी गाँवमें मैथुन करे तो उस देशके लिये हानिकारक होता है। हथिनी गाँवमें बच्चा दे या पागल हो जाय तो राजाके विनाशकी सूचना देती है। यदि हाथी चढ़ने न दे, उलटे हथिसारमें चला जाय या मदकी धारा बहाने लगे तो वह राजाका घातक होता है। यदि दाहिने पैरको बायेंपर रखे और सूँड़से दाहिने दाँतका मार्जन करे तो वह शुभ होता है॥ ३२—३४॥

अपना बैल, घोड़ा अथवा हाथी शत्रुकी सेनामें चला जाय तो अशुभ होता है। यदि थोड़ी ही दूरमें बादल घिरकर अधिक वर्षा करे तो सेनाका

नाश होता है। यात्राके समय अथवा युद्धकालमें ग्रह और नक्षत्र प्रतिकूल हों, सामनेसे हवा आ रही हो और छत्र आदि गिर जायँ तो भय उपस्थित होता है। लड़नेवाले योद्धा हर्ष और उत्साहमें भरे हों और ग्रह अनुकूल हों तो यह विजयका लक्षण है। यदि कौए और मांसाहारी जीव-जन्तु योद्धाओंका तिरस्कार करें तो मण्डलका नाश होता है। पूर्व, पश्चिम एवं ईशान दिशा प्रसन्न तथा शान्त हों तो प्रिय और शुभ फलकी प्राप्ति करानेवाली होती हैं॥ ३५—३७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शकुन-वर्णन' नामक दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३२॥

दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय

यात्राके मुहूर्त और द्वादश राजमण्डलका विचार

पुष्कर कहते हैं—अब मैं राजधर्मका आश्रय लेकर सबकी यात्राके विषयमें बताऊँगा। जब शुक्र अस्त हों अथवा नीच स्थानमें स्थित हों, विकलाङ्ग (अन्ध) हों, शत्रु-राशिपर विद्यमान हों अथवा वे प्रतिकूल स्थानमें स्थित या विध्वस्त हों तो यात्रा नहीं करनी चाहिये। बुध प्रतिकूल स्थानमें स्थित हों तथा दिशाका स्वामी ग्रह भी प्रतिकूल हो तो यात्रा नहीं करनी चाहिये। वैधृति, व्यतीपात, नाग, शकुनि, चतुष्पाद तथा किंस्तुघ्नयोगमें भी यात्राका परित्याग कर देना चाहिये। विपत्, मृत्यु, प्रत्यरि और जन्म—इन ताराओंमें, गण्डयोगमें तथा रिक्ता तिथिमें भी यात्रा न करे॥ १—४॥

उत्तर और पूर्व—इन दोनों दिशाओंकी एकता कही गयी है। इसी तरह पश्चिम और दक्षिण—इन दोनों दिशाओंकी भी एकता मानी गयी है। वायव्यकोणसे लेकर अग्निकोणतक जो परिघ-दण्ड रहता है, उसका उल्लङ्घन करके यात्रा नहीं करनी चाहिये। रवि, सोम और शनैश्चर—ये दिन यात्राके लिये अच्छे नहीं माने गये हैं॥ ५-६॥

कृत्तिकासे लेकर सात नक्षत्रसमूह पूर्व दिशामें रहते हैं। मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशामें रहते हैं, अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशामें रहते हैं तथा धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशामें रहते हैं। (अग्निकोणसे वायुकोणतक परिघ-दण्ड रहा करता है; अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिये, जिससे परिघ-दण्डका उल्लङ्घन न हो।)* पूर्वोक्त नक्षत्र उन-उन दिशाओंके द्वार हैं; सभी द्वार उन-उन दिशाओंके लिये उत्तम हैं। अब मैं तुम्हें छायाका मान बताता हूँ॥ ७ $\frac{1}{2}$॥

रविवारको बीस, सोमवारको सोलह,

* पूर्व नक्षत्रमें पश्चिम या दक्षिण जानेसे परिघदण्डका लङ्घन होगा।

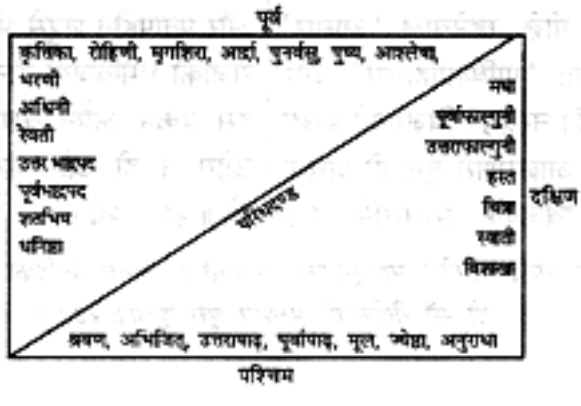

मङ्गलवारको पंद्रह, बुधको चौदह, बृहस्पतिको तेरह, शुक्रको बारह तथा शनिवारको ग्यारह अङ्गुल 'छायामान' कहा गया है, जो सभी कर्मोंके लिये विहित है। जन्म-लग्नमें तथा सामने इन्द्रधनुष उदित हुआ हो तो मनुष्य यात्रा न करे। शुभ शकुन आदि होनेपर श्रीहरिका स्मरण करते हुए विजययात्रा करनी चाहिये॥ ८—१० ½॥

परशुरामजी! अब मैं आपसे मण्डलका विचार बतलाऊँगा; राजाकी सब प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये। राजा, मन्त्री, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र और जनपद—ये राज्यके सात अङ्ग बतलाये जाते हैं। इन सात अङ्गोंसे युक्त राज्यमें विघ्न डालनेवाले पुरुषोंका विनाश करना चाहिये। राजाको उचित है कि अपने सभी मण्डलोंमें वृद्धि करे। अपना मण्डल ही यहाँ सबसे पहला मण्डल है। सामन्त-नरेशोंको ही उस मण्डलका शत्रु जानना चाहिये। 'विजिगीषु' राजाके सामनेका सीमावर्ती सामन्त उसका शत्रु है। उस शत्रु-राज्यसे जिसकी सीमा लगी है, वह उक्त शत्रुका शत्रु होनेसे विजिगीषुका मित्र है। इस प्रकार शत्रु, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र तथा अरिमित्र-मित्र—ये पाँच मण्डलके आगे रहनेवाले हैं। इनका वर्णन किया गया; अब पीछे रहनेवालोंको बताता हूँ; सुनिये॥ ११—१५ ½॥

पीछे रहनेवालोंमें पहला 'पार्ष्णिग्राह' है और उसके पीछे रहनेवाला 'आक्रन्द' कहलाता है। तदनन्तर इन दोनोंके पीछे रहनेवाले 'आसार' होते हैं, जिन्हें क्रमशः 'पार्ष्णिग्राहासार' और 'आक्रन्दासार' कहते हैं। नरश्रेष्ठ! विजयकी इच्छा रखनेवाला राजा, शत्रुके आक्रमणसे युक्त हो अथवा उससे मुक्त, उसकी विजयके सम्बन्धमें कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। विजिगीषु तथा शत्रु दोनोंके असंगठित रहनेपर उनका निग्रह और अनुग्रह करनेमें समर्थ तटस्थ राजा 'मध्यस्थ' कहलाता है। जो बलवान् नरेश इन तीनोंके निग्रह और अनुग्रहमें समर्थ हो, उसे 'उदासीन' कहते हैं। कोई भी किसीका शत्रु या मित्र नहीं है; सभी कारणवश ही एक-दूसरेके शत्रु और मित्र होते हैं। इस प्रकार मैंने आपसे यह बारह राजाओंके मण्डलका वर्णन किया है॥ १६—२०॥

शत्रुओंके तीन भेद जानने चाहिये—कुल्य, अनन्तर और कृत्रिम। इनमें पूर्व-पूर्व शत्रु भारी होता है। अर्थात् 'कृत्रिम'की अपेक्षा 'अनन्तर' और उसकी अपेक्षा 'कुल्य' शत्रु बड़ा माना गया है; उसको दबाना बहुत कठिन होता है। 'अनन्तर' (सीमाप्रान्तवर्ती) शत्रु भी मेरी समझमें 'कृत्रिम' ही है। पार्ष्णिग्राह राजा शत्रुका मित्र होता है; तथापि प्रयत्नसे वह शत्रुका शत्रु भी हो सकता है। इसलिये नाना प्रकारके उपायोंद्वारा अपने पार्ष्णिग्राहको शान्त रखे—उसे अपने वशमें किये रहे। प्राचीन नीतिज्ञ पुरुष मित्रके द्वारा शत्रुको नष्ट करा डालनेकी प्रशंसा करते हैं। सामन्त (सीमा-निवासी) होनेके कारण मित्र भी आगे चलकर शत्रु हो जाता है; अतः विजय चाहनेवाले राजाको उचित है कि यदि अपनेमें शक्ति हो तो स्वयं ही शत्रुका विनाश करे; (मित्रकी सहायता न ले) क्योंकि मित्रका प्रताप बढ़ जानेपर उससे भी भय प्राप्त होता है और प्रतापहीन शत्रुसे भी भय नहीं होता। विजिगीषु राजाको धर्मविजयी होना चाहिये तथा वह लोगोंको इस प्रकार अपने वशमें करे, जिससे किसीको उद्वेग न हो और सबका उसपर विश्वास बना रहे॥ २१—२६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'यात्रामण्डलचिन्ता आदिका कथन' नामक दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३३॥

दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय

दण्ड, उपेक्षा, माया और साम आदि नीतियोंका उपयोग

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! साम, भेद, दान और दण्डकी चर्चा हो चुकी है और अपने राज्यमें दण्डका प्रयोग कैसे करना चाहिये?—यह बात भी बतलायी जा चुकी है। अब शत्रुके देशमें इन चारों उपायोंके उपयोगका प्रकार बतला रहा हूँ॥ १॥

'गुप्त' और 'प्रकाश'—दो प्रकारका दण्ड कहा गया है। लूटना, गाँवको गर्दमें मिला देना, खेती नष्ट कर डालना और आग लगा देना—ये 'प्रकाश दण्ड' हैं। जहर देना, चुपकेसे आग लगाना, नाना प्रकारके मनुष्योंके द्वारा किसीका वध करा देना, सत्पुरुषोंपर दोष लगाना और पानीको दूषित करना—ये 'गुप्त दण्ड' हैं॥ २-३॥

भृगुनन्दन! यह दण्डका प्रयोग बताया गया; अब 'उपेक्षा'की बात सुनिये—जब राजा ऐसा समझे कि युद्धमें मेरा किसीके साथ वैर-विरोध नहीं है, व्यर्थका लगाव अनर्थका ही कारण होगा; संधिका परिणाम भी ऐसा ही (अनर्थकारी) होनेवाला है; सामका प्रयोग यहाँ किया गया, किंतु लाभ न हुआ; दानकी नीतिसे भी केवल धनका क्षय ही होगा तथा भेद और दण्डके सम्बन्धसे भी कोई लाभ नहीं है; उस दशामें 'उपेक्षा'का आश्रय ले (अर्थात् संधि-विग्रहसे अलग हो जाय)। जब ऐसा जान पड़े कि अमुक व्यक्ति शत्रु हो जानेपर भी मेरी कोई हानि नहीं कर सकता तथा मैं भी इस समय इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता, उस समय 'उपेक्षा' कर जाय। उस अवस्थामें राजाको उचित है कि वह अपने शत्रुको अवज्ञा (उपेक्षा)-से ही उपहत करे॥ ४—७॥

अब मायामय (कपटपूर्ण) उपायोंका वर्णन करूँगा। राजा झूठे उत्पातोंका प्रदर्शन करके शत्रुको उद्वेगमें डाले। शत्रुकी छावनीमें रहनेवाले स्थूल पक्षीको पकड़कर उसकी पूँछमें जलता हुआ लूक बाँध दे; वह लूक बहुत बड़ा होना चाहिये। उसे बाँधकर पक्षीको उड़ा दे और इस प्रकार यह दिखावे कि 'शत्रुकी छावनीपर उल्कापात हो रहा है।' इसी प्रकार और भी बहुत-से उत्पात दिखाने चाहिये। भाँति-भाँतिकी माया प्रकट करनेवाले मदारियोंको भेजकर उनके द्वारा शत्रुओंको उद्विग्न करे। ज्यौतिषी और तपस्वी जाकर शत्रुसे कहें कि 'तुम्हारे नाशका योग आया हुआ है।' इस तरह पृथ्वीपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले राजाको उचित है कि अनेकों उपायोंसे शत्रुको भयभीत करे। शत्रुओंपर यह भी प्रकट करा दे कि 'मुझपर देवताओंकी कृपा है—मुझे उनसे वरदान मिल चुका है।' युद्ध छिड़ जाय तो अपने सैनिकोंसे कहे—'वीरो! निर्भय होकर प्रहार करो, मेरे मित्रोंकी सेनाएँ आ पहुँचीं; अब शत्रुओंके पाँव उखड़ गये हैं—वे भाग रहे हैं'—यों कहकर गर्जना करे, किलकारियाँ भरे और योद्धाओंसे कहे—'मेरा शत्रु मारा गया।' देवताओंके आदेशसे वृद्धिको प्राप्त हुआ राजा कवच आदिसे सुसज्जित होकर युद्धमें पदार्पण करे॥ ८—१३ $\frac{1}{2}$॥

अब 'इन्द्रजाल'के विषयमें कहता हूँ। राजा समयानुसार इन्द्रकी मायाका प्रदर्शन करे। शत्रुओंको दिखावे कि 'मेरी सहायताके लिये देवताओंकी चतुरङ्गिणी सेना आ गयी।' फिर शत्रु-सेनापर रक्तकी वर्षा करे और मायाद्वारा यह प्रयत्न करे कि महलके ऊपर शत्रुओंके कटे हुए मस्तक दिखायी दें॥ १४-१५ $\frac{1}{2}$॥

अब मैं छः गुणोंका वर्णन करूँगा; इनमें 'संधि' और 'विग्रह' प्रधान हैं। संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय—ये छः गुण कहे गये हैं। किसी शर्तपर शत्रुके साथ मेल करना

'संधि' कहलाता है। युद्ध आदिके द्वारा उसे हानि पहुँचाना 'विग्रह' है। विजयाभिलाषी राजा जो शत्रुके ऊपर चढ़ाई करता है, उसीका नाम 'यात्रा' अथवा 'यान' है। विग्रह छेड़कर अपने ही देशमें स्थित रहना 'आसन' कहलाता है। (आधी सेनाको किलेमें छिपाकर) आधी सेनाके साथ युद्धकी यात्रा करना 'द्वैधीभाव' कहा गया है। उदासीन अथवा मध्यम राजाकी शरण लेनेका नाम 'संश्रय' है॥ १६—१९ $\frac{1}{2}$॥

जो अपनेसे हीन न होकर बराबर या अधिक प्रबल हो, उसीके साथ संधिका विचार करना चाहिये। यदि राजा स्वयं बलवान् हो और शत्रु अपनेसे हीन—निर्बल जान पड़े, तो उसके साथ विग्रह करना ही उचित है। हीनावस्थामें भी यदि अपना पार्ष्णिग्राह विशुद्ध स्वभावका हो, तभी बलिष्ठ राजाका आश्रय लेना चाहिये। यदि युद्धके लिये यात्रा न करके बैठे रहनेपर भी राजा अपने शत्रुके कार्यका नाश कर सके तो पार्ष्णिग्राहका स्वभाव शुद्ध न होनेपर भी वह विग्रह ठानकर चुपचाप बैठा रहे। अथवा पार्ष्णिग्राहका स्वभाव शुद्ध न होनेपर राजा द्वैधीभाव-नीतिका आश्रय ले। जो निस्संदेह बलवान् राजाके विग्रहका शिकार हो जाय, उसीके लिये संश्रय-नीतिका अवलम्बन उचित माना गया है। यह 'संश्रय' साम आदि सभी गुणोंमें अधम है। संश्रयके योग्य अवस्थामें पड़े हुए राजा यदि युद्धकी यात्रा करें तो वह उनके जन और धनका नाश करनेवाली बतायी गयी है। यदि किसीकी शरण लेनेसे पीछे अधिक लाभकी सम्भावना हो तो राजा संश्रयका अवलम्बन करे। सब प्रकारकी शक्तिका नाश हो जानेपर ही दूसरेकी शरण लेनी चाहिये॥ २०—२५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'षाड्गुण्यका वर्णन' नामक दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३४॥

दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय

राजाकी नित्यचर्या

पुष्कर कहते हैं— परशुरामजी! अब निरन्तर किये जाने योग्य कर्मका वर्णन करता हूँ, जिसका प्रतिदिन आचरण करना उचित है। जब दो घड़ी रात बाकी रहे तो राजा नाना प्रकारके वाद्यों, बन्दीजनोंद्वारा की हुई स्तुतियों तथा मङ्गल-गीतोंकी ध्वनि सुनकर निद्राका परित्याग करे। तत्पश्चात् गूढ़ पुरुषों (गुप्तचरों)-से मिले। वे गुप्तचर ऐसे हों, जिन्हें कोई भी यह न जान सके कि ये राजाके ही कर्मचारी हैं। इसके बाद विधिपूर्वक आय और व्ययका हिसाब सुने। फिर शौच आदिसे निवृत्त होकर राजा स्नानगृहमें प्रवेश करे। वहाँ नरेशको पहले दन्तधावन (दाँतुन) करके फिर स्नान करना चाहिये। तत्पश्चात् संध्योपासना करके भगवान् वासुदेवका पूजन करना उचित है। तदनन्तर राजा पवित्रतापूर्वक अग्निमें आहुति दे; फिर जल लेकर पितरोंका तर्पण करे। इसके बाद ब्राह्मणोंका आशीर्वाद सुनते हुए उन्हें सुवर्णसहित दूध देनेवाली गौ दान दे॥ १—५॥

इन सब कार्योंसे अवकाश पाकर चन्दन और आभूषण धारण करे तथा दर्पणमें अपना मुँह देखे। साथ ही सुवर्णयुक्त घृतमें भी मुँह देखे। फिर दैनिक-कथा आदिका श्रवण करे। तदनन्तर वैद्यकी बतायी हुई दवाका सेवन करके माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श करे। फिर गुरुके पास जाकर उनका दर्शन करे और उनका आशीर्वाद लेकर राजसभामें प्रवेश करे॥ ६-७॥

महाभाग! सभामें विराजमान होकर राजा ब्राह्मणों, अमात्यों तथा मन्त्रियोंसे मिले। साथ ही द्वारपालने जिनके आनेकी सूचना दी हो, उन प्रजाओंको भी बुलाकर उन्हें दर्शन दे; उनसे मिले। फिर इतिहासका श्रवण करके राज्यका कार्य देखे। नाना प्रकारके कार्योंमें जो कार्य अत्यन्त आवश्यक हो, उसका निश्चय करे। तत्पश्चात् प्रजाके मामले-मुकद्दमोंको देखे और मन्त्रियोंके साथ गुप्त परामर्श करे। मन्त्रणा न तो एकके साथ करे, न अधिक मनुष्योंके साथ; न मूर्खोंके साथ और न अविश्वसनीय पुरुषोंके साथ ही करे। उसे सदा गुप्तरूपसे ही करे; दूसरोंपर प्रकट न होने दे। मन्त्रणाको अच्छी तरह छिपाकर रखे, जिससे राज्यमें कोई बाधा न पहुँचे। यदि राजा अपनी आकृतिको परिवर्तित न होने दे—सदा एक रूपमें रहे तो यह गुप्त मन्त्रणाकी रक्षाका सबसे बड़ा उपाय माना गया है; क्योंकि बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष आकार और चेष्टाएँ देखकर ही गुप्तमन्त्रणाका पता लगा लेते हैं। राजाको उचित है कि वह ज्यौतिषियों, वैद्यों और मन्त्रियोंकी बात माने। इससे वह ऐश्वर्यको प्राप्त करता है; क्योंकि ये लोग राजाको अनुचित कार्योंसे रोकते और हितकर कामोंमें लगाते हैं॥ ८—१२½॥

मन्त्रणा करनेके पश्चात् राजाको रथ आदि वाहनोंके हाँकने और शस्त्र चलानेका अभ्यास करते हुए कुछ कालतक व्यायाम करना चाहिये। युद्ध आदिके अवसरोंपर वह स्नान करके भलीभाँति पूजित हुए भगवान् विष्णुका, हवनके पश्चात् प्रज्वलित हुए अग्निदेवका तथा दान-मान आदिसे सत्कृत ब्राह्मणोंका दर्शन करे। दान आदिके पश्चात् वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर राजा भलीभाँति जाँचे-बूझे हुए अन्नका भोजन करे। भोजनके अनन्तर पान खाकर बायीं करवटसे थोड़ी देरतक लेटे। प्रतिदिन शास्त्रोंका चिन्तन और योद्धाओं, अन्न-भण्डार तथा शस्त्रागारका निरीक्षण करे। दिनके अन्तमें सायं-संध्या करके अन्य कार्योंका विचार करे और आवश्यक कामोंपर गुप्तचरोंको भेजकर रात्रिमें भोजनके पश्चात् अन्तःपुरमें जाकर रहे। वहाँ संगीत और वाद्योंसे मनोरञ्जन करके सो जाय तथा दूसरोंके द्वारा आत्मरक्षाका पूरा प्रबन्ध रखे। राजाको प्रतिदिन ऐसा ही करना चाहिये॥ १३—१७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रात्यहिक राजकर्मका कथन' नामक दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३५॥

दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय

संग्राम-दीक्षा—युद्धके समय पालन करनेयोग्य नियमोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! अब मैं रणयात्राकी विधि बतलाते हुए संग्रामकालके लिये उचित कर्तव्योंका वर्णन करूँगा। जब राजाकी युद्धयात्रा एक सप्ताहमें होनेवाली हो, उस समय पहले दिन भगवान् विष्णु और शंकरजीकी पूजा करनी चाहिये। साथ ही मोदक (मिठाई) आदिके द्वारा गणेशजीका पूजन करना उचित है। दूसरे दिन दिक्पालोंकी पूजा करके राजा शयन करे। शय्यापर बैठकर अथवा उसके पहले देवताओंकी पूजा करके निम्नाङ्कित (भाववाले) मन्त्रका स्मरण करे—'भगवान् शिव! आप तीन नेत्रोंसे विभूषित, 'रुद्र'के नामसे प्रसिद्ध, वरदायक, वामन, विकटरूपधारी और स्वप्नके अधिष्ठाता देवता हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। भगवन्! आप देवाधिदेवोंके भी स्वामी, त्रिशूलधारी और वृषभपर सवारी करनेवाले हैं। सनातन परमेश्वर! मेरे सो जानेपर स्वप्नमें आप मुझे यह बता दें कि 'इस युद्धसे मेरा इष्ट होनेवाला है या अनिष्ट?' उस समय

पुरोहितको 'यज्जाग्रतो दूरमुदैति०' (यजु०३४।१)—इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। तीसरे दिन दिशाओंकी रक्षा करनेवाले रुद्रों तथा दिशाओंके अधिपतियोंकी पूजा करे; चौथे दिन ग्रहों और पाँचवें दिन अश्विनीकुमारोंका यजन करे। मार्गमें जो देवी, देवता तथा नदी आदि पड़ें, उनका भी पूजन करना चाहिये। द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा भूमिपर निवास करनेवाले देवताओंको बलि अर्पण करे। रातमें भूतगणोंको भी बलि दे। भगवान् वासुदेव आदि देवताओं तथा भद्रकाली और लक्ष्मी आदि देवियोंकी भी पूजा करे। इसके बाद सम्पूर्ण देवताओंसे प्रार्थना करे॥ १—८॥

'वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह, वराह, शिव, ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजात, सूर्य, सोम, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु, गणेश, कार्तिकेय, चण्डिका, उमा, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, ब्रह्माणी आदि गण, रुद्र, इन्द्रादि देव, अग्नि, नाग, गरुड तथा द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं भूमिपर निवास करनेवाले अन्यान्य देवता मेरी विजयके साधक हों। मेरी दी हुई यह भेंट और पूजा स्वीकार करके सब देवता युद्धमें मेरे शत्रुओंका मर्दन करें। देवगण! मैं माता, पुत्र और भृत्योंसहित आपकी शरणमें आया हूँ। आपलोग शत्रु-सेनाके पीछे जाकर उनका नाश करनेवाले हैं, आपको हमारा नमस्कार है। युद्धमें विजय पाकर यदि लौटूँगा तो आपलोगोंको इस समय जो पूजा और भेंट दी है, उससे भी अधिक मात्रामें पूजा चढ़ाऊँगा'॥ ९—१४॥

छठे दिन राज्याभिषेककी भाँति विजय-स्नान करना चाहिये तथा यात्राके सातवें दिन भगवान् त्रिविक्रम (वामन)-का पूजन करना आवश्यक है। नीराजनके लिये बताये हुए मन्त्रोंद्वारा अपने आयुध और वाहनकी भी पूजा करे। साथ ही ब्राह्मणोंके मुखसे 'पुण्याह' और 'जय' शब्दके साथ निम्नाङ्कित भाववाले मन्त्रका श्रवण करे—'राजन्! द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूमिपर निवास करनेवाले देवता तुम्हें दीर्घायु प्रदान करें। तुम देवताओंके समान सिद्धि प्राप्त करो। तुम्हारी यह यात्रा देवताओंकी यात्रा हो तथा सम्पूर्ण देवता तुम्हारी रक्षा करें।' यह आशीर्वाद सुनकर राजा आगे यात्रा करे। 'धन्वना गा०' (यजु० २।३९) इत्यादि मन्त्रद्वारा धनुष-बाण हाथमें लेकर 'तद्विष्णोः०' (यजु० ६।५) इस मन्त्रका जप करते हुए शत्रुके सामने दाहिना पैर बढ़ाकर बत्तीस पग आगे जाय; फिर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तरमें जानेके लिये क्रमशः हाथी, रथ, घोड़े तथा भार ढोनेमें समर्थ जानवरपर सवार होवे और जुझाऊ बाजोंके साथ आगेकी यात्रा करे; पीछे फिरकर न देखे॥ १५—२०॥

एक कोस जानेके बाद ठहर जाय और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करे। पीछे आती हुई अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए ही राजाको दूसरेके देशमें यात्रा करनी चाहिये। विदेशमें जानेपर भी अपने देशके आचारका पालन करना राजाका कर्तव्य है। वह प्रतिदिन देवताओंका पूजन करे, किसीकी आय नष्ट न होने दे और उस देशके मनुष्योंका कभी अपमान न करे। विजय पाकर पुनः अपने नगरमें लौट आनेपर राजा देवताओंकी पूजा करे और दान दे। जब दूसरे दिन संग्राम छिड़नेवाला हो तो पहले दिन हाथी, घोड़े आदि वाहनोंको नहलावे तथा भगवान् नृसिंहका पूजन करे। रात्रिमें छत्र आदि राजचिह्नों, अस्त्र-शस्त्रों तथा भूतगणोंकी अर्चना करके सबेरे पुनः भगवान् नृसिंहकी एवं सम्पूर्ण वाहन आदिकी पूजा करे। पुरोहितके द्वारा हवन किये हुए अग्निदेवका दर्शन करके स्वयं भी उसमें आहुति डाले और ब्राह्मणोंका सत्कार करके धनुष-बाण ले, हाथी आदिपर सवार हो

युद्धके लिये जाय। शत्रुके देशमें अदृश्य रहकर प्रकृति-कल्पना (मोर्चाबंदी) करे। यदि अपने पास थोड़े-से सैनिक हों तो उन्हें एक जगह संगठित रखकर युद्धमें प्रवृत्त करे और यदि योद्धाओंकी संख्या अधिक हो तो उन्हें इच्छानुसार फैला दे (अर्थात् उन्हें बहुत दूरमें खड़ा करके युद्धमें लगावे)॥ २१—२७॥

थोड़े-से सैनिकोंका अधिक संख्यावाले योद्धाओंके साथ युद्ध करनेके लिये 'सूचीमुख' नामक व्यूह उपयोगी होता है। व्यूह दो प्रकारके बताये गये हैं—प्राणियोंके शरीरकी भाँति और द्रव्यस्वरूप। गरुडव्यूह, मकरव्यूह, चक्रव्यूह, श्येनव्यूह, अर्धचन्द्रव्यूह, वज्रव्यूह, शकटव्यूह, सर्वतोभद्रमण्डलव्यूह और सूचीव्यूह—ये नौ व्यूह प्रसिद्ध हैं। सभी व्यूहोंके सैनिकोंको पाँच भागोंमें विभक्त किया जाता है। दो पक्ष, दो अनुपक्ष और एक पाँचवाँ भाग भी अवश्य रखना चाहिये। योद्धाओंके एक या दो भागोंसे युद्ध करे और तीन भागोंको उनकी रक्षाके लिये रखे। स्वयं राजाको कभी व्यूहमें नियुक्त नहीं करना चाहिये; क्योंकि राजा ही सबकी जड़ है, उस जड़के कट जानेपर सारे राज्यका विनाश हो जाता है; अतः स्वयं राजा युद्धमें प्रवृत्त न हो। वह सेनाके पीछे एक कोसकी दूरीपर रहे। वहाँ रहते हुए राजाका यह कार्य बताया गया है कि वह युद्धसे भागे हुए सिपाहियोंको उत्साहित करके धैर्य बँधावे। सेनाके प्रधान (अर्थात् सेनापति)-के भागने या मारे जानेपर सेना नहीं ठहर पाती। व्यूहमें योद्धाओंको न तो एक-दूसरेसे सटाकर खड़ा करे और न बहुत दूर-दूरपर ही; उनके बीचमें इतनी ही दूरी रहनी चाहिये, जिससे एक-दूसरेके हथियार आपसमें टकराने न पावें॥ २८—३५॥

जो शत्रु-सेनाकी मोर्चाबंदी तोड़ना चाहता हो, वह अपने संगठित योद्धाओंके द्वारा ही उसे तोड़नेका प्रयत्न करे तथा शत्रुके द्वारा भी यदि अपनी सेनाके व्यूह-भेदनके लिये प्रयत्न हो रहा हो तो उसकी रक्षाके लिये संगठित वीरोंको ही नियुक्त करना चाहिये। अपनी इच्छाके अनुसार सेनाका ऐसा व्यूह बनावे, जो शत्रुके व्यूहमें घुसकर उसका भेदन कर सके। हाथीके पैरोंकी रक्षा करनेके लिये चार रथ नियुक्त करे। रथकी रक्षाके लिये चार घुड़सवार, उनकी रक्षाके लिये उतने ही ढाल लेकर युद्ध करनेवाले सिपाही तथा ढालवालोंके बराबर ही धनुर्धर वीरोंको तैनात करे। युद्धमें सबसे आगे ढाल लेनेवाले योद्धाओंको स्थापित करे। उनके पीछे धनुर्धर योद्धा, धनुर्धरोंके पीछे घुड़सवार, घुड़सवारोंके पीछे रथ और रथोंके पीछे राजाको हाथियोंकी सेना नियुक्त करनी चाहिये॥ ३६—३९॥

पैदल, हाथीसवार और घुड़सवारोंको प्रयत्नपूर्वक धर्मानुकूल युद्धमें संलग्न रहना चाहिये। युद्धके मुहानेपर शूरवीरोंको ही तैनात करे, डरपोक स्वभाववाले सैनिकोंको वहाँ कदापि न खड़ा होने दे। शूरवीरोंको आगे खड़ा करके ऐसा प्रबन्ध करे, जिससे वीर स्वभाववाले योद्धाओंको केवल शत्रुओंका जत्थामात्र दिखायी दे (उनके भयंकर पराक्रमपर उनकी दृष्टि न पड़े); तभी वे शत्रुओंको भगानेवाला पुरुषार्थ कर सकते हैं। भीरु पुरुष आगे रहें तो वे भागकर सेनाका व्यूह स्वयं ही तोड़ डालते हैं; अतः उन्हें आगे न रखे। शूरवीर आगे रहनेपर भीरु पुरुषोंको युद्धके लिये सदा उत्साह ही प्रदान करते रहते हैं। जिनका कद ऊँचा, नासिका तोतेके समान नुकीली, दृष्टि सौम्य तथा दोनों भौंहें मिली हुई हों, जो क्रोधी, कलहप्रिय, सदा हर्ष और उत्साहमें भरे रहनेवाले तथा कामपरायण हों, उन्हें शूरवीर समझना चाहिये॥ ४०—४३ $\frac{1}{2}$॥

संगठित वीरोंमेंसे जो मारे जायँ अथवा घायल

हों, उनको युद्धभूमिसे दूर हटाना, युद्धके भीतर जाकर हाथियोंको पानी पिलाना तथा हथियार पहुँचाना—ये सब पैदल सिपाहियोंके कार्य हैं। अपनी सेनाका भेदन करनेकी इच्छा रखनेवाले शत्रुओंसे उसकी रक्षा करना और संगठित होकर युद्ध करनेवाले शत्रु-वीरोंका व्यूह तोड़ डालना—यह ढाल लेकर युद्ध करनेवाले योद्धाओंका कार्य बताया गया है। युद्धमें विपक्षी योद्धाओंको मार भगाना धनुर्धर वीरोंका काम है। अत्यन्त घायल हुए योद्धाको युद्धभूमिसे दूर ले जाना, फिर युद्धमें आना तथा शत्रुकी सेनामें त्रास उत्पन्न करना—यह सब रथी वीरोंका कार्य बतलाया जाता है। संगठित व्यूहको तोड़ना, टूटे हुएको जोड़ना तथा चहारदीवारी, तोरण (सदर दरवाजा), अट्टालिका और वृक्षोंको भङ्ग कर डालना—यह अच्छे हाथीका पराक्रम है। ऊँची-नीची भूमिको पैदल सेनाके लिये उपयोगी जानना चाहिये, रथ और घोड़ोंके लिये समतल भूमि उत्तम है तथा कीचड़से भरी हुई युद्धभूमि हाथियोंके लिये उपयोगी बतायी गयी है॥ ४४—४९ $\frac{१}{२}$॥

इस प्रकार व्यूह-रचना करके जब सूर्य पीठकी ओर हों तथा शुक्र, शनैश्चर और दिक्पाल अपने अनुकूल हों, सामनेसे मन्द-मन्द हवा आ रही हो, उस समय उत्साहपूर्वक युद्ध करे तथा नाम एवं गोत्रकी प्रशंसा करते हुए सम्पूर्ण योद्धाओंमें उत्तेजना भरता रहे। साथ ही यह बात भी बताये कि 'युद्धमें विजय होनेपर उत्तम-उत्तम भोगोंकी प्राप्ति होगी और मृत्यु हो जानेपर स्वर्गका सुख मिलेगा।' वीर पुरुष शत्रुओंको जीतकर मनोवाञ्छित भोग प्राप्त करता है और युद्धमें प्राणत्याग करनेपर उसे परमगति मिलती है। इसके सिवा वह जो स्वामीका अन्न खाये रहता है, उसके ऋणसे छुटकारा पा जाता है; अतः युद्धके समान श्रेष्ठ गति दूसरी कोई नहीं है। शूरवीरोंके शरीरसे जब रक्त निकलता है, तब वे पापमुक्त हो जाते हैं। युद्धमें जो शस्त्र-प्रहार आदिका कष्ट सहना पड़ता है, वह बहुत बड़ी तपस्या है। रणमें प्राणत्याग करनेवाले शूरवीरके साथ हजारों सुन्दरी अप्सराएँ चलती हैं। जो सैनिक हतोत्साह होकर युद्धसे पीठ दिखाते हैं, उनका सारा पुण्य मालिकको मिल जाता है और स्वयं उन्हें पग-पगपर एक-एक ब्रह्महत्याके पापका फल प्राप्त होता है। जो अपने सहायकोंको छोड़कर चल देता है, देवता उसका विनाश कर डालते हैं। जो युद्धसे पीछे पैर नहीं हटाते, उन बहादुरोंके लिये अश्वमेध-यज्ञका फल बताया गया है॥ ५०—५६॥

यदि राजा धर्मपर दृढ़ रहे तो उसकी विजय होती है। योद्धाओंको अपने समान योद्धाओंके साथ ही युद्ध करना चाहिये। हाथीसवार आदि सैनिक हाथीसवार आदिके ही साथ युद्ध करें। भागनेवालोंको न मारें। जो लोग केवल युद्ध देखनेके लिये आये हों, अथवा युद्धमें सम्मिलित होनेपर भी जो शस्त्रहीन एवं भूमिपर गिरे हुए हों, उनको भी नहीं मारना चाहिये। जो योद्धा शान्त हो या थक गया हो, नींदमें पड़ा हो तथा नदी या जंगलके बीचमें उतरा हो, उसपर भी प्रहार न करे। दुर्दिनमें शत्रुके नाशके लिये कूटयुद्ध (कपटपूर्ण संग्राम) करे। दोनों बाहें ऊपर उठाकर जोर-जोरसे पुकारकर कहे—'यह देखो, हमारे शत्रु भाग चले, भाग चले। इधर हमारी ओर मित्रोंकी बहुत बड़ी सेना आ पहुँची; शत्रुओंकी सेनाका संचालन करनेवाला मार गिराया गया। यह सेनापति भी मौतके घाट उतर गया। साथ ही शत्रुपक्षके राजाने भी प्राणत्याग कर दिया'॥ ५७—६०॥

भागते हुए विपक्षी योद्धाओंको अनायास ही मारा जा सकता है। धर्मके जाननेवाले परशुरामजी! शत्रुओंको मोहित करनेके लिये कृत्रिम धूपकी

सुगन्ध भी फैलानी चाहिये। विजयकी पताकाएँ दिखानी चाहिये, बाजोंका भयंकर समारोह करना चाहिये। इस प्रकार जब युद्धमें विजय प्राप्त हो जाय तो देवताओं और ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। अमात्यके द्वारा किये हुए युद्धमें जो रत्न आदि उपलब्ध हों, वे राजाको ही अर्पण करने चाहिये। शत्रुकी स्त्रियोंपर किसीका भी अधिकार नहीं होता। स्त्री शत्रुकी हो तो भी उसकी रक्षा ही करनी चाहिये। संग्राममें सहायकोंसे रहित शत्रुको पाकर उसका पुत्रकी भाँति पालन करना चाहिये। उसके साथ पुनः युद्ध करना उचित नहीं है। उसके प्रति देशोचित आचारादिका पालन करना कर्तव्य है॥ ६१—६४॥

युद्धमें विजय पानेके पश्चात् अपने नगरमें जाकर 'ध्रुव' संज्ञक नक्षत्र (तीनों उत्तरा और रोहिणी)-में राजमहलके भीतर प्रवेश करे। इसके बाद देवताओंका पूजन और सैनिकोंके परिवारके भरण-पोषणका प्रबन्ध करना चाहिये। शत्रुके यहाँसे मिले हुए धनका कुछ भाग भृत्योंको भी बाँट दे। इस प्रकार यह रणकी दीक्षा बतायी गयी है; इसके अनुसार कार्य करनेसे राजाको निश्चय ही विजयकी प्राप्ति होती है॥ ६५-६६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'रणदीक्षा-वर्णन' नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३६॥

दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय

लक्ष्मीस्तोत्र और उसका फल

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी! पूर्वकालमें इन्द्रने राज्यलक्ष्मीकी स्थिरताके लिये जिस प्रकार भगवती लक्ष्मीकी स्तुति की थी, उसी प्रकार राजा भी अपनी विजयके लिये उनका स्तवन करे॥ १॥

इन्द्र बोले—जो सम्पूर्ण लोकोंकी जननी हैं, समुद्रसे जिनका आविर्भाव हुआ है, जिनके नेत्र खिले हुए कमलके समान शोभायमान हैं तथा जो भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान हैं, उन लक्ष्मीदेवीको मैं प्रणाम करता हूँ। जगत्को पवित्र करनेवाली देवि! तुम्हीं सिद्धि हो और तुम्हीं स्वधा, स्वाहा, सुधा, संध्या, रात्रि, प्रभा, भूति, मेधा, श्रद्धा और सरस्वती हो। शोभामयी देवि! तुम्हीं यज्ञविद्या, महाविद्या, गुह्यविद्या तथा मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाली आत्मविद्या हो। आन्वीक्षिकी (दर्शनशास्त्र), त्रयी (ऋक्, साम, यजु), वार्ता (जीविका-प्रधान कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य कर्म) तथा दण्डनीति भी तुम्हीं हो। देवि! तुम स्वयं सौम्यस्वरूपवाली (सुन्दरी) हो; अतः तुमसे व्याप्त होनेके कारण इस जगत्का रूप भी सौम्य—मनोहर दिखायी देता है। भगवति! तुम्हारे सिवा दूसरी कौन स्त्री है, जो कौमोदकी गदा धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णुके अखिल यज्ञमय विग्रहको, जिसका योगीलोग चिन्तन करते हैं, अपना निवासस्थान बना सके। देवि! तुम्हारे त्याग देनेसे समस्त त्रिलोकी नष्टप्राय हो गयी थी; किंतु इस समय पुनः तुम्हारा ही सहारा पाकर यह समृद्धिपूर्ण दिखायी देती है। महाभागे! तुम्हारी कृपादृष्टिसे ही मनुष्योंको सदा स्त्री, पुत्र, गृह, मित्र और धन-धान्य आदिकी प्राप्ति होती है। देवि! जिन पुरुषोंपर आपकी दयादृष्टि पड़ जाती है, उन्हें शरीरकी नीरोगता, ऐश्वर्य, शत्रुपक्षकी हानि और सब प्रकारके सुख—कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं। मातः! तुम सम्पूर्ण भूतोंकी जननी और देवाधिदेव विष्णु सबके पिता हैं। तुमने और भगवान् विष्णुने इस चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है। सबको पवित्र करनेवाली देवि! तुम मेरी मान-प्रतिष्ठा, खजाना, अन्न-भण्डार, गृह,

साज-सामान, शरीर और स्त्री—किसीका भी त्याग न करो। भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें वास करनेवाली लक्ष्मी! मेरे पुत्र, मित्रवर्ग, पशु तथा आभूषणोंको भी न त्यागो। विमलस्वरूपा देवि! जिन मनुष्योंको तुम त्याग देती हो, उन्हें सत्य, समता, शौच तथा शील आदि सद्गुण भी तत्काल ही छोड़ देते हैं। तुम्हारी कृपादृष्टि पड़नेपर गुणहीन मनुष्य भी तुरंत ही शील आदि सम्पूर्ण उत्तम गुणों तथा पीढ़ियोंतक बने रहनेवाले ऐश्वर्यसे युक्त हो जाते हैं। देवि! जिसको तुमने अपनी दयादृष्टिसे एक बार देख लिया, वही श्लाघ्य (प्रशंसनीय), गुणवान्, धन्यवादका पात्र, कुलीन, बुद्धिमान्, शूर और पराक्रमी हो जाता है। विष्णुप्रिये! तुम जगत्की माता हो। जिसकी ओरसे तुम मुँह फेर लेती हो, उसके शील आदि सभी गुण तत्काल दुर्गुणके रूपमें बदल जाते हैं। कमलके समान नेत्रोंवाली देवि! ब्रह्माजीकी जिह्वा भी तुम्हारे गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हो सकती। मुझपर प्रसन्न हो जाओ तथा कभी भी मेरा परित्याग न करो॥ २—१७॥

पुष्कर कहते हैं—इन्द्रके इस प्रकार स्तवन करनेपर भगवती लक्ष्मीने उन्हें राज्यकी स्थिरता और संग्राममें विजय आदिका अभीष्ट वरदान दिया। साथ ही अपने स्तोत्रका पाठ या श्रवण करनेवाले पुरुषोंके लिये भी उन्होंने भोग तथा मोक्ष मिलनेके लिये वर प्रदान किया। अतः मनुष्यको चाहिये कि सदा ही लक्ष्मीके इस स्तोत्रका पाठ और श्रवण करे*॥ १८-१९॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'श्रीस्तोत्रका वर्णन' नामक दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३७॥

---

* पुष्कर उवाच—

राज्यलक्ष्मीस्थिरत्वाय यथेन्द्रेण पुरा श्रियः। स्तुतिः कृता तथा राजा जयार्थं स्तुतिमाचरेत्॥

इन्द्र उवाच—

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्धिसम्भवाम्। श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम्॥
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनि। संध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती॥
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने। आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी॥
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च। सौम्या सौम्यैर्जगद्रूपं त्वयैतद्देवि पूरितम्॥
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः। अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः॥
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम्। विनष्टप्रायमभवत् त्वयेदानीं समेधितम्॥
दाराः पुत्रास्तथागारं सुहृद्धान्यधनादिकम्। भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम्॥
शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम्। देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम्॥
त्वमम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता। त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम्॥
मानं कोषं तथा कोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम्। मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि॥
मा पुत्रान् मा सुहृद्वर्गान् मा पशून् मा विभूषणम्। त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये॥
सत्येन समशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः। त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः संत्यक्ता ये त्वयामले॥
त्वयावलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः। कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि॥
स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्। स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः॥
सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः। पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे॥
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणान् जिह्वापि वेधसः। प्रसीद देवि पद्माक्षि मास्मांस्त्याक्षीः कदाचन॥

पुष्कर उवाच

एवं स्तुता ददौ श्रीश्च वरमिन्द्राय चेप्सितम्। सुस्थिरत्वं च राज्यस्य संग्रामविजयादिकम्॥
स्वस्तोत्रपाठश्रवणकर्तॄणां भुक्तिमुक्तिदम्। श्रीस्तोत्रं सततं तस्मात् पठेच्च शृणुयान्नरः॥

(अग्निपुराण २३७। १—१९)

दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय

श्रीरामके द्वारा उपदिष्ट राजनीति

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! मैंने तुमसे पुष्करकी कही हुई नीतिका वर्णन किया है। अब तुम लक्ष्मणके प्रति श्रीरामचन्द्रद्वारा कही गयी विजयदायिनी नीतिका निरूपण सुनो। यह धर्म आदिको बढ़ानेवाली है॥ १॥

श्रीराम कहते हैं—लक्ष्मण! न्याय (धान्यका छठा भाग लेने आदि)-के द्वारा धनका अर्जन करना, अर्जित किये हुए धनको व्यापार आदि द्वारा बढ़ाना, उसकी स्वजनों और परजनोंसे रक्षा करना तथा उसका सत्पात्रमें नियोजन करना (यज्ञादिमें तथा प्रजापालनमें लगाना एवं गुणवान् पुत्रको सौंपना)—ये राजाके चार प्रकारके व्यवहार बताये गये हैं। (राजा नय और पराक्रमसे सम्पन्न एवं भलीभाँति उद्योगशील होकर स्वमण्डल एवं परमण्डलकी लक्ष्मीका चिन्तन करे।) नयका मूल है विनय और विनयकी प्राप्ति होती है, शास्त्रके निश्चयसे। इन्द्रिय-जयका ही नाम विनय है जो उस विनयसे युक्त होता है, वही शास्त्रोंको प्राप्त करता है। (जो शास्त्रमें निष्ठा रखता है, उसीके हृदयमें शास्त्रके अर्थ (तत्त्व) स्पष्टतया प्रकाशित होते हैं। ऐसा होनेसे स्वमण्डल और परमण्डलकी 'श्री' प्रसन्न (निष्कण्टकरूपसे प्राप्त) होती है—उसके लिये लक्ष्मी अपना द्वार खोल देती हैं)॥ २-३॥

शास्त्रज्ञान, आठ[1] गुणोंसे युक्त बुद्धि, धृति (उद्वेगका अभाव), दक्षता (आलस्यका अभाव), प्रगल्भता (सभामें बोलने या कार्य करनेमें भय अथवा संकोचका न होना), धारणशीलता (जानी-सुनी बातको भूलने न देना), उत्साह (शौर्यादि गुण[2]), प्रवचन-शक्ति, दृढ़ता (आपत्तिकालमें क्लेश सहन करनेकी क्षमता), प्रभाव (प्रभु-शक्ति), शुचिता (विविध उपायोंद्वारा परीक्षा लेनेसे सिद्ध हुई आचार-विचारकी शुद्धि), मैत्री (दूसरोंको अपने प्रति आकृष्ट कर लेनेका गुण), त्याग (सत्पात्रको दान देना), सत्य (प्रतिज्ञापालन), कृतज्ञता (उपकारको न भूलना), कुल (कुलीनता), शील (अच्छा स्वभाव) और दम (इन्द्रियनिग्रह तथा क्लेशसहनकी क्षमता)—ये सम्पत्तिके हेतुभूत गुण हैं[3]॥ ४-५॥

विस्तृत विषयरूपी वनमें दौड़ते हुए तथा निरङ्कुश होनेके कारण विप्रमाथी (विनाशकारी) इन्द्रियरूपी हाथीको ज्ञानमय अङ्कुशसे वशमें करे। काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान और मद—ये 'षड्वर्ग' कहे गये हैं। राजा इनका सर्वथा त्याग कर दे। इन सबका त्याग हो जानेपर वह सुखी होता है॥ ६-७॥

राजाको चाहिये कि वह विनय-गुणसे सम्पन्न हो आन्वीक्षिकी (आत्मविद्या एवं तर्कविद्या), वेदत्रयी, वार्ता (कृषि, वाणिज्य और पशुपालन) तथा दण्डनीति—इन चार विद्याओंका उनके विद्वानों तथा उन विद्याओंके अनुसार अनुष्ठान करनेवाले कर्मठ पुरुषोंके साथ बैठकर चिन्तन करे (जिससे लोकमें इनका सम्यक् प्रचार और प्रसार हो)।

---

१. बुद्धिके आठ गुण ये हैं—सुननेकी इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, धारण करना (याद रखना), अर्थ-विज्ञान (विविध साध्य-साधनोंके स्वरूपका विवेक), ऊह (वितर्क), अपोह (अयुक्त-युक्तिका त्याग) तथा तत्त्वज्ञान (वस्तुके स्वभावका निर्णय)। जैसा कि कौटिल्यने कहा है—

'शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिवेशाः प्रज्ञागुणाः' (कौटि० अर्थ० १।१।९६)

२. उत्साहके सूचक चार गुण हैं—दक्षता (आलस्यका अभाव), शीघ्रकारिता, अमर्ष (अपमानको न सह सकना) तथा शौर्य।

३. यहाँ धारणशीलता बुद्धिसे और दक्षता उत्साहसे सम्बन्ध रखनेवाले गुण हैं; अतः इनका वहीं अन्तर्भाव हो सकता था; तथापि इनका जो पृथक् उपादान हुआ है, वह इन गुणोंकी प्रधानता सूचित करनेके लिये है।

'आन्वीक्षिकी'से आत्मज्ञान एवं वस्तुके यथार्थ स्वभावका बोध होता है। धर्म और अधर्मका ज्ञान 'वेदत्रयी'पर अवलम्बित है, अर्थ और अनर्थ 'वार्ता'के सम्यक् उपयोगपर निर्भर हैं तथा न्याय और अन्याय 'दण्डनीति'के समुचित प्रयोग और अप्रयोगपर आधारित हैं॥ ८-९॥

किसी भी प्राणीकी हिंसा न करना—कष्ट न पहुँचाना, मधुर वचन बोलना, सत्यभाषण करना, बाहर और भीतरसे पवित्र रहना एवं शौचाचारका पालन करना, दीनोंके प्रति दयाभाव रखना तथा क्षमा (निन्दा आदिको सह लेना)—ये चारों वर्णों तथा आश्रमोंके सामान्य धर्म कहे गये हैं। राजाको चाहिये कि वह प्रजापर अनुग्रह करे और सदाचारके पालनमें संलग्न रहे। मधुर वाणी, दीनोंपर दया, देश-कालकी अपेक्षासे सत्पात्रको दान, दीनों और शरणागतोंकी रक्षा* तथा सत्पुरुषोंका सङ्ग—ये सत्पुरुषोंके आचार हैं। यह आचार प्रजासंग्रहका उपाय है, जो लोकमें प्रशंसित होनेके कारण श्रेष्ठ है तथा भविष्यमें भी अभ्युदयरूप फल देनेवाला होनेके कारण हितकारक है। यह शरीर मानसिक चिन्ताओं तथा रोगोंसे घिरा हुआ है। आज या कल इसका विनाश निश्चित है। ऐसी दशामें इसके लिये कौन राजा धर्मके विपरीत आचरण करेगा?॥ १०—१२½॥

राजाको चाहिये कि वह अपने लिये सुखकी इच्छा रखकर दीन-दुखी लोगोंको पीड़ा न दे; क्योंकि सताया जानेवाला दीन-दुखी मनुष्य दुःखजनित क्रोधके द्वारा अत्याचारी राजाका विनाश कर डालता है। अपने पूजनीय पुरुषको जिस तरह सादर हाथ जोड़ा जाता है, कल्याणकामी राजा दुष्टजनको उससे भी अधिक आदर देते हुए हाथ जोड़े। (तात्पर्य यह है कि दुष्टको सामनीतिसे ही वशमें किया जा सकता है।) साधु सुहृदों तथा दुष्ट शत्रुओंके प्रति भी सदा प्रिय वचन ही बोलना चाहिये। प्रियवादी 'देवता' कहे गये हैं और कटुवादी 'पशु'॥ १३—१५½॥

बाहर और भीतरसे शुद्ध रहकर राजा आस्तिकता (ईश्वर तथा परलोकपर विश्वास)-द्वारा अन्तःकरणको पवित्र बनाये और सदा देवताओंका पूजन करे। गुरुजनोंका देवताओंके समान ही सम्मान करे तथा सुहृदोंको अपने तुल्य मानकर उनका भलीभाँति सत्कार करे। वह अपने ऐश्वर्यकी रक्षा एवं वृद्धिके लिये गुरुजनोंको प्रतिदिन प्रणामद्वारा अनुकूल बनाये। अनूचान (साङ्गवेदके अध्येता) की-सी चेष्टाओंद्वारा विद्यावृद्ध सत्पुरुषोंका साम्मुख्य प्राप्त करे। सुकृतकर्म (यज्ञादि पुण्यकर्म तथा गन्ध-पुष्पादि-समर्पण)-द्वारा देवताओंको अपने अनुकूल करे। सद्भाव (विश्वास)-द्वारा मित्रका हृदय जीते, सम्भ्रम (विशेष आदर)-से बान्धवों (पिता और माताके कुलोंके बड़े-बूढ़ों)-को अनुकूल बनाये। स्त्रीको प्रेमसे तथा भृत्यवर्गको दानसे वशमें करे। इनके अतिरिक्त जो बाहरी लोग हैं, उनके प्रति अनुकूलता दिखाकर उनका हृदय जीते॥ १६—१८½॥

दूसरे लोगोंके कृत्योंकी निन्दा या आलोचना न करना, अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुरूप धर्मका निरन्तर पालन, दीनोंके प्रति दया, सभी लोक-व्यवहारोंमें सबके प्रति मीठे वचन बोलना, अपने अनन्य मित्रका प्राण देकर भी उपकार करनेके लिये उद्यत रहना, घरपर आये हुए मित्र या अन्य सज्जनोंको भी हृदयसे लगाना—उनके प्रति अत्यन्त स्नेह एवं आदर प्रकट करना, आवश्यकता हो तो उनके लिये यथाशक्ति धन देना, लोगोंके कटु

* यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'शरणागतोंकी रक्षा तो दयाका ही कार्य है, अतः दयासे ही वह सिद्ध है, फिर उसका अलग कथन क्यों किया गया?' इसके उत्तरमें निवेदन है कि दयाके दो भेद हैं—'उत्कृष्टा' और 'अनुत्कृष्टा।' इनमें जो उत्कृष्टा दया है, उसके द्वारा दीनोंका उद्धार होता है और अनुत्कृष्टा दयासे उपगत या शरणागतकी रक्षा की जाती है—यही सूचित करनेके लिये उसका अलग प्रतिपादन किया गया है।